ISSN No : 2583-3855
anuswaar@gmail.com

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

सदस्यता आवेदन

सदस्यता आवेदक का नाम ______________________________

पूरा पता पिन कोड सहित ______________________________

ईमेल आईडी व ____________________ **फोन नम्बर** ____________________

तारीख ____________________

हस्ताक्षर

मूल्य :

सामान्य प्रति : **150 रुपये,**

वार्षिक मूल्य : **600 रुपये,**

द्विवार्षिक मूल्य : **1000 रुपये**

आजीवन सदस्यता : **6000 रुपये**

भुगतान के लिए :

IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191

ISSN No : 2583-3855

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष : 4 मूल्य : 150/- अंक : 13 जनवरी-मार्च 2024

सलाहकार मंडल

सलाहकार संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय
डॉ. एस.एस.मुद्गिल
डॉ. सुशील कुमार त्रिवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा

कार्यकारी संपादक
कामिनी

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार

अतिथि संपादक
गिरीश पंकज

प्रकाशक एवं स्वामी
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशकीय/संपादकीय कार्यालय : 'अनुस्वार', सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)
मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार :** मुख्य संपादक : डॉ. संजीव कुमार

आवरण चित्र : शुभ्रामणि
आवरण एवं पुस्तक सज्जा : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 150 रुपये
वार्षिक मूल्य : 600 रुपये
द्विवार्षिक मूल्य : 1000 रुपये
आजीवन सदस्यता : 6000 रुपये

भुगतान के लिए :
IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191
Paymtm No : 9893561826

नोट : भुगतान करने के उपरान्त रसीद के साथ अपना पता और फोन नं. हमें 9873561826/9810066431 पर व्हाट्सअप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित और बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032, से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

अनुक्रम

मुख्य संपादक की ओर से	डॉ. संजीव कुमार	7
एक दशक की यात्रा पर शुभकामनाएँ		9
आवरण कथा		10
कलाक्षेत्रे		11
चिंतनधारा		
प्रेम जनमेजय : व्यंग्य के युगपुरुष	डॉ. संजीव कुमार	13
व्यंग्य के प्रति निष्ठा	डॉ. कमल किशोर गोयनका	16
कनिष्ठ साहित्य सहयात्री	डॉ. रामदरश मिश्र	19
प्रेम जनमेजय के व्यंग्य नाटकों के बहाने	प्रताप सहगल	20
प्रेम जनमेजय और मैं	नरेन्द्र कोहली	25
परिस्थितियों और मानवीय विवशता का व्यंग्य	गोपाल चतुर्वेदी	37
विसंगतियों का स्वाभाविक व्यंग्यकार : प्रेम जनमेजय	तरसेम गुजराल	39
समय के अंतर्विरोधों को व्यक्त करते व्यंग्य	प्रेम विज	43
'व्यंग्य यात्रा' आरंभ से अब तक	प्रेम जनमेजय	45
व्यंग्य पुरोधा प्रेम जनमेजय : हर कदम नया सिखाने वाले	डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'	69
व्यंग्य को 'गंभीर' मानने वाले जनमेजय	एम.ए.समीर	51
व्यंग्य को समर्पित मेरा अपना प्रेम	कमलेश भारतीय	53
राजधानी में गंवार से सूबेदार तक का सफर	अरविंद तिवारी	55
व्यंग्य का नया ब्रैंड एम्बेसडर	बलदेव वंशी	60
एक साधारण-असाधारण व्यक्तित्व	दिविक रमेश	64
नवल-प्रेम एक लव स्टोरी	डॉ. हरीश नवल	69
सरापा व्यंग्यकार है प्रेम	महेश दर्पण	73
आगे निकलने में कैसी शर्म?	नासिरा शर्मा	76
यारों का यार	राजेश कुमार	78
सींग उग आने का डर	वीरेन्द्र नारायण झा	82
संवाद		
प्रेम जनमेजय से एक संवाद	संवादकर्ता : देवेंद्र गुप्त	84

कथा-कहानी

टूटते पहाड़ की लालसा	प्रेम जनमेजय	92
भैरवी	डॉ. रमाकांत शर्मा	97

मिर्ची के रंग

पढ़े-लिखे का कचरा	प्रेम जनमेजय	102
मन चंदा तो कठौती गंगा	अशोक गौतम	105

स्वास्थ्य साहित्य

कुण्डलिनी योग एवं मेडिकल साइंस—एक विवेचन	डॉ. श्याम सखा श्याम	107

विधि साहित्य

समान नागरिक संहिता की आवश्यकता	डॉ. संजीव कुमार	111

कविता/ग़ज़ल

प्रेम जनमेजय की कविताएँ, केशव दिव्य की कविताएँ,		114
डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ		116

पुस्तक समीक्षा

भ्रष्टाचार के सैनिकों से लड़ता एक व्यंग्य यात्री	डॉ. मंजुला उपाध्याय	117
डॉ. संजीव कुमार की अद्भुत कृति "इन्दुलेखा"	विजय कुमार तिवारी	119

साहित्य समाचार

इंडिया नेटबुक्स द्वारा साहित्य के महाकुंभ में विश्व के 154 साहित्यकार सम्मानित हुए		124
आचार्य राजेश कुमार ग्रंथावली के पहले छः खण्डों का अनावरण		126

अंततः

व्यंग्य के पारस पत्थर	गिरीश पंकज	127

मुख्य संपादक की ओर से

प्रिय पाठकों,

हमें अपार हर्ष के साथ आपको सूचित करना है कि आपकी पत्रिका 'अनुस्वार' ने प्रकाशन के तीन वर्ष पूरे कर लिए हैं और यह चौथे वर्ष का पहला अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। पिछले अंकों के बारे में आपसे प्राप्त सूचनाओं, संदेशों एवं पत्रों के माध्यम से हमें लगातार बधाइयाँ भी मिलती रहीं और सुझाव भी। आपके द्वारा अनुस्वार को जो दर्जा और मान्यता दी गई है, उसके लिए मैं अनुस्वार की संपादन टीम एवं पाठकों का आभारी हूँ।

जनवरी-मार्च 2024 की तिमाही बड़ी गहमागहमी के साथ बीती, जिसमें विश्व पुस्तक मेला जैसा आयोजन भी हुआ और बीपीए फाउंडेशन तथा इंडिया नेटबुक्स के द्वारा देश का सबसे बड़ा साहित्य सम्मान उत्सव भी मनाया गया।

वर्ष 2024 का विश्व पुस्तक मेला अनुस्वार समूह के लिए बड़ा ही शुभ रहा। मेले के दौरान इंडिया नेटबुक्स के स्टॉल पर किताबों का भारी विक्रय हुआ और साथ ही वरिष्ठ साहित्यकारों का आवागमन स्टॉल की प्रसिद्धि का कारण बना। स्टॉल पर एक काव्य गोष्ठी और कई लघुचर्चाएं भी आयोजित हुईं और साथ ही 34 पुस्तकों का विमोचन भी किया गया। साथ ही अनुस्वार के 12वें अंक का विमोचन भी वयोवृद्ध साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र द्वारा किया गया। इस अवसर पर वरिष्ठ साहित्यकार—गिरीश पंकज, चित्रा मुद्‌गल, ममता कालिया, प्रताप सहगल, प्रेम जनमेजय, राजेश कुमार, लालित्य ललित, रणविजय राव, स्वाति चौधरी, मीनू त्रिपाठी, तेजेन्द्र शर्मा, अनूप बंसल, प्रवीण त्रिपाठी, कुसुम पालीवाल, मनीषा चौगांवकर, आलोक शुक्ला, प्रताप सिंह, व्यास मणि त्रिपाठी, दिनेश कुमार माली, जगदीश डागर, अनीता कपूर, जय वर्मा, राहुल देव आदि पधारे। साथ ही जितेन्द्र श्रीवास्तव, सुरेश ऋतुपर्ण, उपेन्द्रनाथ रैणा आदि विभिन्न साहित्यकारों से भी भेंट हुई।

जैसा कि आप सबको मालूम है कि इंडिया नेटबुक्स बाल रचनाकारों को विशेष प्राथमिकता देती है। विश्व पुस्तक मेले में हमारा सबसे छोटा रचनाकार पलाश शुक्ला, जिसकी उम्र सिर्फ 6 वर्ष है, स्टॉल पर उपस्थित रहा और अपने लेखकीय हस्ताक्षरों से अपनी पुस्तक 'म्यूज़िंग' की जबर्दस्त बिक्री की। उल्लेखनीय है कि अबकी बार बाल साहित्य पर अतिथियों का विशेष ध्यान रहा।

इसी प्रकार 9 मार्च 2024 को समूह का 'आठवाँ साहित्यकार सम्मान महोत्सव' सम्पन्न हुआ, जो इस बार देश के सबसे बड़े साहित्यिक सम्मान उत्सव के रूप में जाना गया। अनेकों समाचार-पत्रों ने यह समाचार प्राथमिकता से प्रकाशित किया। इस बार कुल 166 पुरस्कारों का वितरण किया गया, जिसमें से 154 अलंकरण हिंदी साहित्यकारों को दिये गये। जिनमें कई वरिष्ठ साहित्यकार सम्मिलित हैं। इस बार के शिखर सम्मानों में वेदव्यास सम्मान प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमती सूर्यबाला लाल को प्रदान किया गया। अन्य शिखर सम्मानों में महाकवि कालिदास सम्मान श्री

संतोष चौबे को और वागेश्वरी सम्मान श्री प्रेम जनमेजय को प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त साहित्य विभूषण सम्मान श्री बी.एल.गौड़, मैत्रेयी पुष्पा, सरोजनी प्रीतम, सुरेश ऋतुपर्ण, लालित्य ललित, संतोष श्रीवास्तव, दिविक रमेश, इकराम राजस्थानी, हरीश पाठक, अनूप भार्गव, सुरेंद्र गंभीर, अशोक व्यास, जवाहर कर्णावत, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, वसंत कुमार परिहार, बुद्धिनाथ मिश्रा, सूरज प्रकाश, हरि सुमन बिष्ट, जितेन्द्र श्रीवास्तव, रमेश सैनी, संतोष खन्ना, अनंत विजय, संजीव पालीवाल, अभिषेक सक्सेना आदि को दिया गया। इसी प्रकार साहित्य भूषण एवं साहित्य रत्न सम्मान भी दिए गए जिनका विवरण समाचार स्तंभ के अंतर्गत देखा जा सकता है।

एक विशिष्ट साहित्यकार पर केंद्रित में प्रत्येक अंक में हम हमेशा किसी न किसी साहित्यकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उपयुक्त प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं। प्रस्तुत अंक में मशहूर व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय के बारे में सामग्री प्रस्तुत की गई है।

श्री प्रेम जनमेजय को व्यंग्य संसार के युगपुरुष के रूप में कहा जा सकता है। उनका रचना संसार वैविध्यपूर्ण है। जिसमें कविता, नाटक, कहानी एवं व्यंग्य आदि पर उन्होंने निरंतर लिखा है। उनके दूसरे मैराथन प्रयासों ने व्यंग्य पत्रिका, "व्यंग्य यात्रा" का उल्लेख किया जा सकता है। जिसमें लगभग 20 वर्षों से वह लगातार अभूतपूर्व एवं अतुलनीय कार्य कर रहे हैं। ऐसा ही उनका निरंतरतापूर्ण अभूतपूर्व प्रयास रहा व्यंग्यकार कार्यशालाओं का आयोजन। जिसके फलस्वरूप उन्होंने न केवल व्यंग्य को प्रचारित एवं प्रसारित किया, अपितु व्यंग्य को एक नई पहचान दिलाई। पत्रिका का यह अंक उन्हीं पर केंद्रित है। जिसमें विभिन्न वरिष्ठ साहित्यकारों द्वारा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आलेख हैं और साथ ही उनकी स्वयं की रचित रचनाओं की बानगी भी।

उपरोक्त के अतिरिक्त पत्रकारिता के स्थाई स्तंभ जैसे कविता, कहानी, लघुकथा, चिकित्सा साहित्य, विधि साहित्य, बाल साहित्य, साहित्य समाचार एवं समीक्षाएँ आदि यथावत प्रस्तुत की गई हैं।

इन्हीं शब्दों के साथ अनुस्वार का यह 13वाँ अंक पाठकों को समर्पित है।

आपकी टिप्पणियों और सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. संजीव कुमार

एक दशक की यात्रा पर शुभकामनाएँ

कन्हैयालाल नन्दन

व्यंग्य यात्रा का अंक मिला, देखा, परखा, पढ़ा और सोचता रहा कि तुमने संपादन की बारीकियां भी इसमें उकेरी हैं तो तुम्हें कितनी बधाई दी जाए। मेरा ख्याल है जितनी मैं दे सकता हूं उससे ज्यादा के तुम हक़दार हो।

निर्मला जैन

पत्रिका को इतने मनोयोग, दृढ़-संकल्प और निष्ठा से इतने लम्बे समय तक प्रकाशित किया, इसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं। इस संदर्भ में विशेष बात यह है कि इस यात्रा में आपने पत्रिका के स्तर को बनाए रखने में विवेक से काम लिया है।

प्रभाकर श्रोत्रिय

आप व्यंग्य-यात्रा इतनी सुंदर और इतनी निष्ठा से निकालते हैं कि उसके लिए केवल प्रशंसा के बोल ही फूटते हैं। मैं आशीर्वाद देने योग्य वयस्क तो नहीं, हां मेरी मंगलकामनाएं सदा आपके साथ हैं। निष्ठा और ईमानदारी आत्मोत्सर्ग और सर्जना की आहुति देने वाले सचमुच दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं।

अजित कुमार

'व्यंग्य यात्रा' के दस बरस पूरे होने पर जो चालीसवां अंक छपने को है, उसके लिये आपको और पत्रिका को हार्दिक बधाई देते और दोनों के सुदीर्घ-स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए मुझे लगभग चालीस साल पहले की वह गोष्ठियाँ याद आ रही हैं जो गोल मार्केट के आपके कॉलेज (कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज) में और अनंतर आपके पहले व्यंग्य-संग्रह 'राजधानी में गंवार' के छपने पर क्नॉट प्लेस में हुईं थीं और जिनमें भागीदारी का अवसर मुझे मिला था। इस तरह, व्यंग्य के साथ आपकी यात्रा दस वर्ष ही क्यों, लगभग आधी सदी पुरानी ठहरती है, और मुझे भरोसा है, आपके संग, साथ अभी आधी सदी और भी चलने को है।

नरेंद्र कोहली

प्रसन्नता का विषय है कि 'व्यंग्य यात्रा' अपने दस वर्ष की यात्रा पूरी कर आई है और प्रार्थना भी कि तुम्हारी ऊर्जा बनी रहे और 'व्यंग्य यात्रा' को दीर्घायु प्राप्त हो। वह दिन-प्रतिदिन संवरती चले और उसका प्रसार बढ़ता जाए। मुझे लगता है कि यह पत्रिका व्यंग्य रचनाओं और व्यंग्यकारों के लिए एक दृढ़ मंच का काम कर रही है। यह उन सबके केन्द्र में है। भय यही है कि यह एक नया गुट या खेमा न बने और इच्छा यह है कि यह व्यंग्य की कृतियों को इतनी उत्कृष्टता तक पहुंचाए कि समग्र साहित्य में व्यंग्य को भी वैसा ही महत्व प्राप्त हो, जैसा कविता और कथा साहित्य को प्राप्त है। मुझे विश्वास है कि तुम में वह सामर्थ्य है कि तुम यह ऐतिहासिक कार्य कर सको। मेरी शुभकामनाएँ और आशीर्वाद।

कमल किशोर गोयनका

मुझे यह कहने में भी कोई संकोच नहीं है कि व्यंग्य-परिवार भी आपके साथ कदम-कदम पर खड़ा रहा है और इस प्रेम के कारण इन वर्षों में वह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बन गई है। विश्वास करें, मुझे 'व्यंग्य-यात्रा' जैसी सम्पादकीय निष्ठा और पाठकों का अपनापन एवं लेखकों का साथीपन अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता, और इसका कारण है कि यह पत्रिका वाम या दक्षिण की पत्रिका नहीं है, यह व्यंग्य की एक पूर्वाग्रहरहित पत्रिका है।

शंकर पुणतांबेकर

जानकर प्रसन्नता हुई कि पत्रिका व्यंग्य की दस वर्ष की यात्रा पूर्ण कर 11वें वर्ष के पथ पर कदम रख रही है। मैं देख रहा हूं, देखता रहा हूं कि पत्रिका ने यह यात्रा पैदल की है। मिशन की यात्रा ऐसे पैदल ही करनी होती है। क्षेत्र कोई भी हो। मिशन तो जुनून होता है और खरा विक्रमादित्य ही इसे अपने कंधे पर लादे रहता है। मिशन के इस जुनून में अपनी एक-दो नहीं कितनी ही अस्थिशवों की बलि देनी होती है। यह केवल मैं नहीं व्यंग्य का दूर-दूर तक फैला पूरा परिवार जानता है कि आपने अपनी कितनी ही निजी आकांक्षाओं की बलि दी है।

आवरण-कथा

आवरण-कथा

प्रस्तुत आवरण का चित्रांकन वातावरण के सिद्धांत पर आधारित है। साहित्य में विधाओं के अनेकों वर्ग हैं जिनमें साहित्यकार सृजन करते हैं, किन्तु इनका विरचन निर्मित प्रक्रिया में होता है। यही बात चित्र में अंकित की गयी है।

शुभ्रामणि : एक परिचय

शुभ्रामणि एक अमूर्त कलाकार हैं। उनकी प्रेरणा किसी विचार, प्रकृति, वस्तु, भावना या किसी उद्देश्य में छिपी होती है। रंगों और आकारों के माध्यम से कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करना उसे एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है जो कई बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती है। अमूर्त कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार को रंगों के सहारे नए-नए आयाम, नए-नए चित्र बनाने का अवसर मिलता है और हर बार उसकी कला एक अनोखापन लेकर उभरती है। ऐसा ही कुछ नया करने का एहसास और प्रयास शुभ्रामणि की कला का आधार है। एक सलाहकार कम्पनी में काम करते हुए एक कुशल गृहिणी के साथ-साथ अपने खाली समय का सदुपयोग वह अपनी कलात्मक एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा करती हैं। वह जहाँ एक कलाकार हैं, वहीं एक कवयित्री भी हैं।

चित्र-कथा

सत्यम शिवम सुन्दरम

इष्ट शिव में सम्पूर्ण ब्रह्मांड समाहित है और वे स्वयं जीवन अमृत गंगा के अजर और अमर स्रोत हैं और यही शाश्वत सत्य है। उनकी नीली छवि अलौकिक है और अति सुन्दर दर्शन से हमें साक्षात्कार कराती है कि जीवन को यथार्थ रूप से जीने हेतु मंथन से निकले विष का आलिंगन एवं सेवन नियति है। यही है सत्यम शिवम सुन्दरम का सार।

आभा दीक्षित

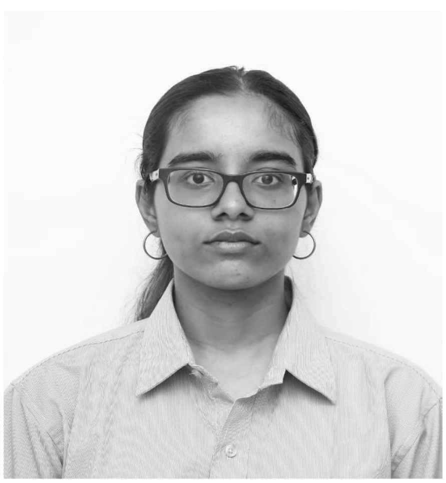

सुश्री आभा दीक्षित, 16 वर्षीय, 11 वीं कक्षा की छात्रा एवं बहुमुखी प्रतिभा की धनी उद्यमी बालिका है। आभा की रुचि चित्रकला, पाक कला, फैशन डिजाइन, प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता एवं वैज्ञानिक प्रयोग में है।

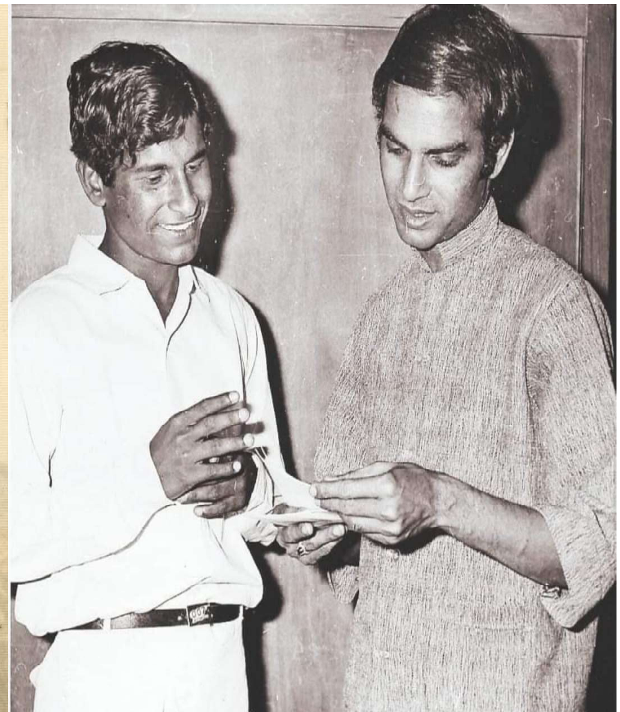

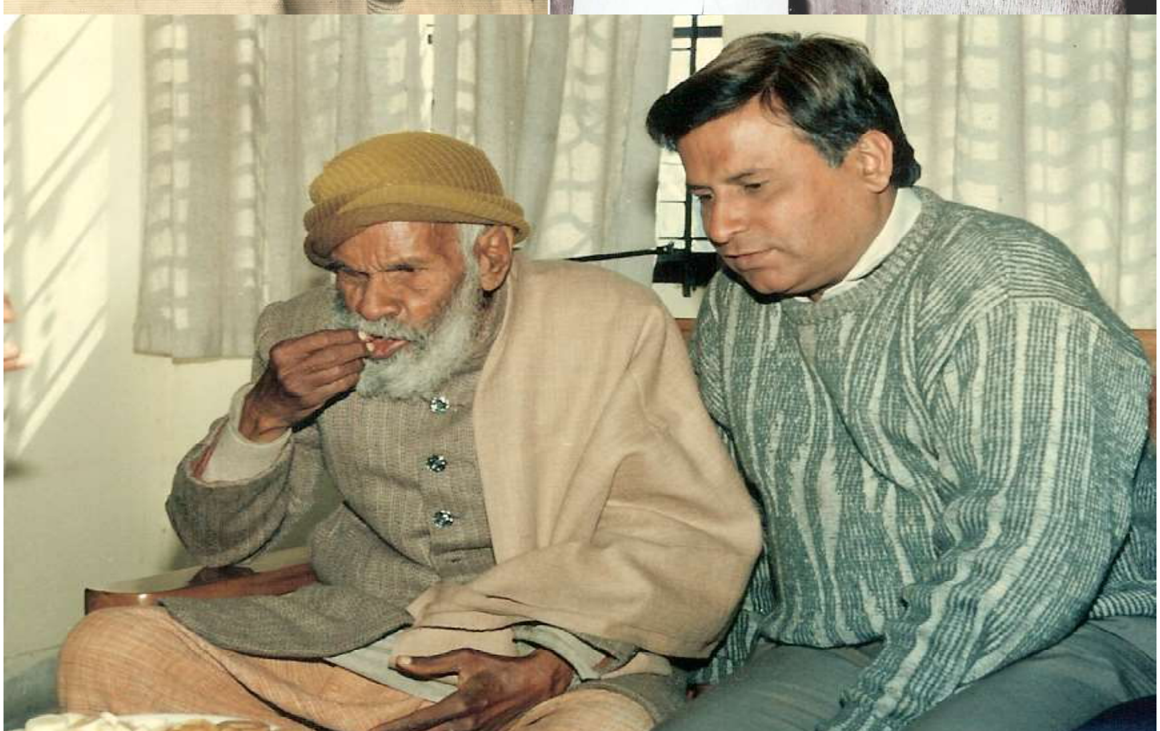

चिंतनधारा

प्रेम जनमेजय : व्यंग्य के युगपुरुष

डॉ. संजीव कुमार

प्रेम जनमेजय, व्यंग्य संसार के युग पुरुष कहे जा सकते हैं। संस्कृत से जन्मा व्यंग्य साहित्य आज अपने यौवन पर है और उसमें आधुनिक काल में प्रेम जनमेजय का समग्र, बहुमुखी, अभूतपूर्व एवं अतुलनीय योगदान रेखांकित किये जाने योग्य है। अतः उन्हें व्यंग्य का युगपुरुष कहना अतिशयोक्ति न होगी। व्यंग्य विधा संस्कृत साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य में एक स्वतंत्र अस्तित्व के साथ पुष्पित-पल्लवित हुई है।

व्यंग्य समाज के विस्तृत परिवेश में व्याप्त विसंगतियों, कुरीतियों, दुर्व्यवस्थाओं एवं दुर्व्यवहारों पर सशक्त प्रहार करते हैं और संबंधित दायित्वधारियों को जागृत करने की कोशिश करते हैं। इस संपुष्ट प्रयास करने वाले लेखक को भारी प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ सकता है। पर उसे जिगर तो रखना ही पड़ेगा।

व्यंग्य में कश्मीर के क्षेमेन्द्र (1025-1066) की 4 रचनायें हैं—कला विलास, नर्ममाला, देशोपदेश एवं समयमात्रिका। प्रशस्य मिश्र की 'व्यंग्यार्थ कौमुदी' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

व्यंग्यकार समस्या की खोज, उसके कारण, कारण का निवारण एवं निवारण के उपाय की प्रक्रिया पर काम करता है, जो एक दुष्कर कार्य है। शायद इसी कारण से धारदार व्यंग्य कम और कहीं-कहीं छिछले लेख व्यंग्य के नाम से ज्यादा लिखे जा रहे हैं। यह विडंबना है कि ऐसे लेखन से व्यंग्य के पाठक उसे रुचिकर नहीं पाते।

एक व्यंग्यकार को विसंगतियों को चिन्हित करने और उस पर काम करने के लिए PESTAnalysis यानी कि Political, Economic, Social and Technical ज्ञान का अर्जन एवं उसका प्रयोग करना चाहिए। व्यंग्य को समाज के परिष्कार के लिए विकसित करना चाहिए और उसकी महत्ता का संवर्धन करना चाहिए, ताकि वह क्रांतिकारी रचना रच सके।

कबीर को हिंदी व्यंग्य का पितामह कहा जा सकता है। आधुनिक युग में हिंदी साहित्य में व्यंग्य का प्रवर्तन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कर कमलों से हुआ देखा जा सकता है। उन्हें व्यंग्य का प्रथम युगपुरुष कहा जाना चाहिए।

कालांतर में जो परंपरा हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के क्षेत्र में प्रारंभ की वो कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद द्वारा प्रारंभ की गई परंपरा के समकक्ष कही जा सकती है और इसलिए उनके व्यंग्य को भुलाया नहीं जा सकता। परसाई के व्यंग्य पढ़ते हुए पाठक यह महसूस करते हैं कि इंसान का विवेक और वैज्ञानिक चेतना बहुत महत्वपूर्ण हैं जिनका इस्तेमाल करना चाहिए। वे अपनी बात को इतने अपनेपन के साथ कहते हैं कि उनका पाठक से रिश्ता कायम हो जाता है।

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को नई धार दी और पहले से चली आ रही परंपरा को श्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। फलस्वरूप व्यंग्य के प्रति जो उपेक्षा का भाव था वह व्यंग्य के प्रति प्रेम में परिवर्तित हो गया। उन्होंने न केवल व्यंग्य लिखे, बल्कि ऐसी व्यंग्य सूक्तियाँ गढ़ दीं जो कालजयी हो गईं। उनके इस बहुमूल्य एवं अभूतपूर्व योगदान के फलस्वरूप उन्हें द्वितीय युगपुरुष कहना समीचीन होगा। इसका आशय यह कदापि नहीं कि शरद जोशी, रवींद्र त्यागी, नरेंद्र कोहली, मनोहर श्याम जोशी, श्री लाल शुक्ला, जैसी शख्सियतों के योगदान को कमतर आँका जायेगा।

वर्तमान शताब्दी को व्यंग्य साहित्य के सृजन का स्वर्ण काल कहा जा सकता है। इस काल में प्रेम जनमेजय के अलावा ज्ञान चतुर्वेदी, सूर्यबाला लाल, गिरीश पंकज, हरीश नवल, आलोक पुराणिक, पिलकेंद्र अरोड़ा, फारुक आफ़रीदी, लालित्य ललित, रमेश सैनी, प्रभात गोस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेम जनमेजय का जन्म 18 मार्च 1949 को प्रयाग में हुआ था। उनका सनदी नाम प्रेम प्रकाश कुंद्रा है। लेखन कार्य प्रारंभ करते समय उन्होंने पहले अपना नाम प्रेम प्रकाश शैल एवं बाद में प्रेम जनमेजय रख लिया। उनके पिता सी ए जी कार्यालय में थे।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा इलाहाबाद में हुई। तदुपरांत उन्होंने बीए ऑनर्स, एमए हिंदी और पीएचडी दिल्ली विश्वविद्यालय से की। उन्होंने नरेंद्र कोहली के निर्देशन में “स्वतंत्र हिंदी साहित्य में व्यंग्य” विषय पर पीएचडी की। बाद में वहीं पढ़ाया भी। 1998 में वह वेस्टइंडीज में प्राध्यापक नियुक्त हुए और 2002 तक वहाँ रहे।

प्रेम जी से मेरा परिचय सात-आठ साल पुराना है, किंतु उनसे ऐसी प्रगाढ़ मित्रता है जैसे दशकों का साथ हो। वह मित्रजीवी व्यक्ति हैं, सदैव सहायता के लिए तैयार, सहृदय एवं संवेदनशील गाइड। मेरी रचनाओं के बारे में उनसे प्रायः सुझाव मिलते हैं और हम उन पर अमल भी करते हैं। अनुस्वार पत्रिका को निकालने के समय उनका मार्गदर्शन बहुत मूल्यवान रहा, जो आज भी सतत् उपलब्ध है।

प्रेम जनमेजय के रचनाकर्म का प्रारंभ कविता से हुआ। भले ही उनका पहला कविता-संग्रह “नादान अभिव्यक्तियाँ” 2022 में इंडिया नेटबुक्स से प्रकाशित हुआ। उन्होंने कहानियाँ और नाटक भी लिखे, किंतु अंततः व्यंग्य में ही रम गये। व्यंग्य में उनकी पहली पुस्तक “राजधानी में गँवार” थी। उसके बाद उनकी पुस्तकें बेशर्ममेव जयते, कौन कुटिल खल कामी, कोई मैं झूठ बोल्या, हँसो हँसो मेरे यार हँसो तथा बिना सींग वाले गधे प्रकाशित हुईं। उनके नाटकों में क्यों चुप तेरी महफ़िल में व तीन नाटक और संस्मरणों में इर्दम-गिर्दम अहं स्मरामि व स्मृतियन के घाट पर जनमेजय चंदन घिसें प्रमुख हैं। उन्होंने अनेकों ग्रंथों का संपादन भी किया है। अतः उनका रचना संसार व्यापक भी है और गहन भी।

किसी रचनाकार को युगपुरुष कहने के लिये केवल उसकी रचनाधर्मिता ही पर्याप्त नहीं होती, अपितु उसके साहित्य के लिए समग्र योगदान पर भी विचार आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रेम जी के रचना संसार पर विहंगम दृष्टि डालें तो उनका विषय वैविध्य एवं भाव वैशिष्ट्य मन पर गंभीर प्रभाव डालता है? उद्वेलित करता है। उन्होंने सतही व्यंग्य नहीं लिखे। उनका शब्द चयन प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण है। उन्होंने अपशब्दों या बेवड़ी भाषा का

प्रयोग नहीं किया और व्यंग्य में विसंगतियों पर भारी प्रहार करते हुये भी शालीनता बनाये रखी। अतः लेखन के क्षेत्र में गुणवत्ता के आधार पर उन्हें निर्विवाद उचित स्थान मिलना उचित है। यह स्थान न केवल उनकी मूल रचनाओं, अपितु शरद जोशी, धर्मवीर भारती, रवींद्र त्यागी, नरेंद्र कोहली और परसाई आदि पर उनके संपादित ग्रंथ उनके विशद ज्ञान, शोध एवं संपादन कौशल का उत्कृष्ट नमूना है। जो उनके रचनाकर्म को और सुदृढ़ तथा भव्य बनाता है।

नरेन्द्र कोहली ने प्रेम जनमेजय के लेखन के संबंध में कहा है कि प्रेम रचनाओं में एक सजग नागरिक के साथ-साथ एक मौलिक सर्जक के दर्शन सहज ही हो जाते हैं, व्यंग्यकार के लिए प्रखर भाषा ही नहीं, सूक्ष्म दृष्टि भी आवश्यक है।...रचनाकार सामाजिक घटनाओं का रडार होता है, इसे प्रेम ने अपने लेखन से बखूबी प्रमाणित किया है। प्रेम जनमेजय के व्यंग्य लेखन को हिंदी साहित्य के सभी महत्वपूर्ण रचनाकारों एवं आलोचकों ने सराहा है और उन्हें अनेकों पुरस्कारों से नवाजा गया है।

यह उल्लेखनीय है कि उनके साहित्यिक कौशल का प्रभाव उनकी अगली पीढ़ी पर भी पड़ा है। उनके पौत्र हिमांक कुन्द्रा और पौत्री तन्वी कुन्द्रा की पुस्तकें 10 साल की उम्र में ही प्रकाशित हो चुकी हैं। तन्वी को तो राजीव अवस्थी बाल रचनाकार पुरस्कार भी मिल चुका है। वह अपने दादा के साथ 2023 की राही रैंकिंग में भी स्थान पा चुकी है। बच्चे दादा की तरह प्रतिभावान हैं।

रचना कर्म से इतर व्यंग्य के प्रचार-प्रसार एवं विकास के लिए उन्होंने व्यंग्य विमर्श को अपना तन, मन और धन सौंप दिया है।

उनका पहला मैराथन प्रयास था व्यंग्य की कार्यशालाओं का आयोजन; जो उन्होंने 2002 में परसाई की नगरी जबलपुर से प्रारंभ किया था। इन कार्यशालाओं ने दर्जनों शहरों में व्यंग्य की बेलि बोई। फलस्वरूप व्यंग्य के लेखकों में बेजोड़ रहा और लेखकों-पाठकों दोनों की संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

अपने दूसरे प्रयास में 2004 में प्रेम जी ने व्यंग्य को समर्पित पत्रिका "व्यंग्य यात्रा" का शुभारंभ किया, जिसमें व्यंग्य की इंद्रधनुषी प्रस्तुति से उन्होंने पाठकों को मोह लिया है और शनैः-शनैः जुड़ते जा रहे हैं। व्यंग्य यात्रा ने व्यंग्य की नींव भी मज़बूत की है और व्यंग्य रचनाओं के अलावा व्यंग्य समालोचना व शोध पर ध्यान केंद्रित किया है। पत्रिका "व्यंग्य यात्रा" उनके लगभग 20 वर्षों की अथक साधना का सफल परिणाम है। पत्रिका अपने स्वरूप एवं सामग्री से व्यंग्य विधा को अभूतपूर्व समृद्धि प्रदान करती है। उसे स्पंदन जैसे अनेकों पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

व्यंग्य यात्रा पत्रिका को उनके द्वारा किया गया अतुलनीय रचनात्मक कर्म यूँ ही नहीं मानते हैं। प्रेम जनमेजय के श्रम के कारण इन वर्षों में वह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बन गई है। यही नहीं कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, रामदरश मिश्र, निर्मला जैन, ममता कालिया, पुष्पा भारती, सूर्यबाला आदि विविध विधाओं के शीर्ष रचनाकारों ने 'व्यंग्य यात्रा' की व्यंग्य विमर्श में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को लेकर उसके योगदान को समय-समय पर रेखांकित किया है।

और अब तो यह पत्रिका नए कलेवर में 'व्यंग्य यात्रा यूट्यूब मासिकी' के द्वारा पाठकों को दृश्य व श्रव्य सामग्री प्रस्तुत करती है।

इन सीमाचिन्हों के अतिरिक्त विश्व हिंदी सम्मेलन, संवादों, सेमिनारों एवं कार्यक्रमों आदि में उनके सारगर्भित वक्तव्यों की शृंखलाएँ उनको अन्य व्यंग्यकारों से भिन्न एवं उच्च स्तर पर स्थापित करती हैं।

यही बातें प्रेम जनमेजय को एक व्यंग्यकार से अधिक व्यंग्य का युग पुरुष सिद्ध करती हैं "तीसरा युगपुरुष"॥

व्यंग्य के प्रति निष्ठा

डॉ. कमल किशोर गोयनका

प्रेम जनमेजय की 'व्यंग्य-यात्रा' की दस वर्षीय यात्रा, यह सच है कि उतार-चढ़ाव भरी है, किन्तु यह भी सच है कि ऐसी स्थिति सभी के जीवन में आती है, परन्तु महत्वपूर्ण यह है कि सारी कठिनाइयों को जीतकर वह किस प्रकार आगे बढ़ते हैं। प्रेम जनमेजय की निष्ठा और दृढ़ निश्चय ने इसे सम्भव बनाया है और मुझे यह कहने में भी कोई संकोच नहीं है कि पूरा व्यंग्य-परिवार भी उनके साथ

कदम-कदम पर खड़ा रहा है और इस प्रेम के कारण इन वर्षों में 'व्यंग्य यात्रा' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बन गई है। विश्वास करें, मुझे 'व्यंग्य-यात्रा' जैसी सम्पादकीय निष्ठा और पाठकों का अपनापन एवं लेखकों का साथीपन अन्यत्र नहीं दिखाई नहीं पड़ता, और इसका कारण है कि यह पत्रिका वाम या दक्षिण की पत्रिका नहीं है, यह व्यंग्य की एक पूर्वाग्रहरहित पत्रिका है। आप जानते हैं, मैं न तो व्यंग्य लेखक हूँ और न व्यंग्य आलोचक, परन्तु व्यंग्य-पाठक की हैसियत से मैंने सदैव इसका स्वागत किया है और स्वयं को हिंदी व्यंग्य के साथ जोड़े रखा है। प्रेम जनमेजय ने इसके प्रवेशांक से ही, मुझे रचनात्मक सहयोग देने के लिए अनेक बार विवश किया है और मैंने इस विवशता को सहृदय मन से स्वीकार किया है। व्यंग्य एक ऐसा शस्त्र है जिसका निशाना ठीक पाठक के मन-मस्तिष्क पर लगता है और वह बिलबिला उठता है। पाठक को जागृत रखने की अद्भुत शक्ति व्यंग्य में है। इसलिए व्यंग्य सार्वकालिक है और प्रत्येक युग और प्रत्येक समाज में इसकी उपयोगिता बनी रहेगी। व्यंग्य, पाठक को एक अच्छा मनुष्य बनाता है और उसके मन का परिष्कार करता चलता है। ऐसे साहित्य को कोई भी शक्ति नष्ट नहीं कर सकती।

प्रेम जनमेजय के लेखन का मैं आरंभ से साक्षी रहा हूँ। दिल्ली विश्वविद्यालय में विद्यार्थी के रूप में प्रविष्ट हुए प्रेम प्रकाश, यहीं प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हुए, 'राजधानी के गंवार' प्रेम जनमेजय के रूप में रचनाकर्म में सक्रिय हुए और 2014 में शिक्षण कर्म से निवृत्त हुए। सेवा निवृत्ति पर, उनके पुत्रों-पुत्रवधुओं द्वारा आयोजित

भव्य कार्यक्रम में मुझे भी ससम्मान निमंत्रित किया गया।

मुझे याद है कि जब उनका व्यंग्य संकलन 'पुलिस पुलिस' आया और उस पर आयोजित गोष्ठी में मुझे भी वक्ता के रूप में निमंत्रित किया तो मैंने व्यंग्य को लेकर कुछ प्रश्न उठाये थे। अपने विचारों को मैंने एक आलेख में बद्ध किया था, जो बाद में 'सारिका' में प्रकाशित हुआ था। उस आलेख को मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ।

हिंदी में व्यंग्य साहित्य की जो स्थिति है, उससे हम सभी परिचित हैं। हिंदी के नये व्यंग्यकार व्यंग्य को एक विधा बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु वे ऐसी कृति नहीं दे पा रहे हैं जो उनके दावे के अनुरूप हो। इसके मूल में यह है कि इस संबंध में घोषणाएँ तथा आत्मप्रचार अधिक हुआ है, ठोस प्रतिभाएँ कम ही सामने आयी हैं, यही कारण है कि हिंदी व्यंग्य में परसाई-जोशी-त्यागी की त्रयी के बाद आने वाली व्यंग्यकारों की पीढ़ियों में कोई त्रयी दिखाई नहीं देती। इसका यह अर्थ नहीं कि नयी पीढ़ी प्रतिभाशून्य है, हिंदी के नये व्यंग्यकारों में—प्रेम जनमेजय, लतीफ घोंघी, विनोद कुमार शुक्ल, बालेंदुशेखर तिवारी, ज्ञान चतुर्वेदी, सुरेश कांत, हरीश नवल आदि ने पर्याप्त संभावनाएँ दिखाई हैं। लेकिन यह बात बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए कि सशक्त व्यंग्य की रचना वही कर सकता है जिसने विसंगतियों के तनाव को भोगा है, जिसने ऐसी परिस्थितियों को झेला है जो मनुष्य के मानसिक तंतुओं को उद्वेलित करती हैं, वहाँ तूफान उत्पन्न करती हैं, जीवन के विसंगतिपूर्ण तथा तीखे रास्ते पर चलकर ही प्रहारक व्यंग्य-रचना की सृष्टि हो सकती है।

प्रेम जनमेजय का नया व्यंग्य-संग्रह 'पुलिस पुलिस' अभी प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व जनमेजय के दो व्यंग्य-संग्रह 'राजधानी में गंवार' तथा 'बेशर्ममेव जयते' प्रकाशित हो चुके हैं, जनमेजय के इस तीसरे व्यंग्य-संग्रह में कुल बाइस व्यंग्य रचनाएँ हैं जिनमें जीवन की विभिन्न प्रकार की विसंगतियों को व्यंग्य का आधार बनाया गया है। पुलिस से संबद्ध पाँच व्यंग्य लेख हैं, जिनके आधार पर पुस्तक का नामकरण हुआ है। पुस्तक के शेष सत्रह व्यंग्य लेख—प्रजातंत्र, पति-पत्नी, प्रेमिका-लेखक, गुरु-क्रिकेट, महँगाई भत्ता, अफसर, वैश्या, धर्म आदि से संबद्ध है। इस प्रकार विषय की दृष्टि से वैविध्य है जो किसी भी व्यंग्यकार के लिए आवश्यक शर्त है। व्यंग्य की प्रहार शक्ति तभी तीव्र होती है जब विसंगति का सभी दिशाओं से निरावरण किया जाता है। अतः व्यंग्यकार का केवल विसंगति से ही नहीं, बल्कि उसके संपूर्ण जीवन चक्र तथा उसके विविध रूपों से, सीधा साक्षात्कार होना चाहिए।

प्रेम जनमेजय के इस संग्रह की कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं, जैसे विषय की पकड़, जीवन के यथार्थ को निरावरण करना, विसंगतिमय स्थितियों को कचोटने वाली शब्दावली में प्रस्तुत करना तथा हास्य का हाथ थामे चलना। मुझे बराबर लगता है कि हिंदी व्यंग्यकारों को हास्य के साथ अपने रिश्ते तय करने चाहिए। कठिनाई यह है कि हमारे व्यंग्यकार स्वयं तो शुद्ध व्यंग्यकार मानते हुए हास्य का तिरस्कार करते हैं, लेकिन रचना में कदम-कदम पर हास्य को पकड़े चलते हैं, इस कारण व्यंग्य के झीने पर्दे में हास्य छिप नहीं पाता और अपना रहस्य खोल देता है। कहीं-कहीं यह हास्य इतना भौंडा तथा अश्लील हो जाता है कि पाठक न तो हँस पाता है और न विसंगति पर क्रुद्ध हो पाता है। असल में व्यंग्य, हास्य को समृद्ध करता है और हास्य, व्यंग्य को जीवंत एवं प्रेषणीय बनाता है। एक कुशल व्यंग्यकार रचना में व्यंग्य और हास्य का ऐसा संतुलन करता है कि व्यंग्य की तेज धार और हास्य का उल्लास दोनों ही अपनी छटा दिखाते रहे। प्रेम जनमेजय की कई व्यंग्य-रचनाओं में यह छटा देखी जा सकती है।

प्रेम जनमेजय ने इस पुस्तक में संग्रहीत व्यंग्य लेख 'सीता-अपहरण केस' में जिस प्रकार राम-सीता के मिथक का प्रयोग किया है, उसके संबंध में कुछ बातें विचारणीय हैं। भारत की आधी से अधिक जनता राम-सीता को ईश्वर का अवतार मानती है और उन्हें उसी रूप में श्रद्धा सुमन अर्पित करती है। ऐसी स्थिति में राम-सीता के

मिथक को व्यंग्य रचना का आधार बनाते समय यह देखना चाहिए कि इन व्यक्तियों की भावना को आघात तो नहीं लग रहा है। प्रेम जनमेजय ने 'सीता अपहरण केस' में दिखाया है कि राम-लक्ष्मण, सीता अपहरण के बाद पुलिस थाने जाते हैं और थानेदार से सीता का पता लगाने का आग्रह करते हैं। थानेदार धूर्त, लंपट, मद्यपी और भोगी प्रवृत्ति का है। वह एक बार राम को 'स्मगलर' कहता है। मानव का 'मर्डर' करने के कारण हथकड़ी मँगाता है, सीता के सौंदर्य का वर्णन सुनकर सिपाही से कहता है कि—''इतनी सुँदर नारी हमारे इलाके में थी और तूने हमें बताया नहीं।'' क्योंकि ''पुलिस जनता की सेवा नहीं करेगी, और वह भी सुँदर जनता की सेवा, तो किसकी सेवा करेगी।'' इसके बाद राम लक्ष्मण की उपस्थिति में 'सुनयना अपहरण केस' की औरत पकड़कर लायी जाती है और थानेदार कामुक रूप में उसे अपने प्राइवेट रूम में ले जाने की आज्ञा देता है, जिससे वह उसके शरीर के सारे हिस्से देख सके कि वह 'सबूती' आयी है अथवा नहीं।

इस विवरण से स्पष्ट है कि प्रेम जनमेजय ने राम-सीता के मिथक को हद दर्जे तक विकृत किया है और असंख्य लोगों की भावनाओं को ठेस पहुँचायी है, यदि प्रेम जनमेजय पुलिस की 'महानता' का वर्णन करना चाहते थे, जैसा कि उन्होंने लिखा है, तो उन्हें राम-सीता के मिथक को लेने की क्या आवश्यकता थी? यही बात वे किसी कल्पित प्रसंग से भी कह सकते थे, लेकिन यदि वे 'रामकथा को आधुनिक संदर्भों में व्याख्यायित' करना चाहते थे, तो वे बतायें कि आधुनिकता का अर्थ मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं सती सीता को विकृत रूप में प्रस्तुत करने में है, अथवा आधुनिक जीवन के तनावों तथा विसंगतियों का हल ढूँढ़ने में है? कामुक थानेदार की सीता के प्रति कही गयी उक्तियाँ तथा पकड़ी गयी औरत के प्रति बलात्कार की व्यक्त इच्छा सारे मिथक प्रसंग को अश्लील, विकृत तथा गंदा बनाती है, जो किसी भी व्यंग्यकार के लिए शोभाजनक नहीं है। व्यंग्य में विकृति अशोभनीय है। मिथक को विकृत एवं भ्रष्ट करके आप अपने अतीत तथा दूसरों के दिलों पर आघात कर रहे हैं और दूसरी ओर अपनी कलम को ही अधोमुखी कर रहे हैं। प्रेम जनमेजय ने यदि राम के स्थान पर स्वयं को रखा होता और आत्म-व्यंग्य से पुलिस के भ्रष्टाचारी स्वरूप को उद्घाटित किया होता तो यही रचना मारक और यथार्थ हो जाती। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर व्यंग्यकारों की इस प्रवृत्ति को देखकर मन में बार-बार यही प्रश्न उठता है कि व्यंग्य की क्या कोई सीमा नहीं होती? हिंदी के नये व्यंग्यकारों को इस प्रश्न पर अवश्य ही विचार करना चाहिए।

कनिष्ठ साहित्य सहयात्री

डॉ. रामदरश मिश्र

प्रेम जनमेजय मेरे अध्यापन काल के दौरान एम. ए. और एम. लिट् के छात्र रहे हैं। उन्हीं दिनों उन्होंने व्यंग्य लेखन शुरू किया था। उनके व्यंग्य के कथ्य और शैली में कुछ ऐसी बात थी कि इस ओर हमारा ध्यान बरबस खिंच रहा था। रचनाशील छात्रों का एक समुदाय था जो उस समय अपनी सृजनात्मकता की पहचान के दौर से गुजर रहा था। हरीश नवल, दिविक रमेश, सुरेश ऋतुपर्ण और सुखवीर सिंह आदि कई छात्र थे जो अपनी रचनाशीलता के तहत एक-दूसरे से जुड़े हुए थे और अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग तलाश रहे थे। इन सबों में मुझे अच्छी संभावनाएँ दिखाई दे रही थीं। इसलिए मैं इनके साथ था और ये मेरे साथ थे।

प्रेम में जिस व्यंग्यात्मक रचना की संभावना दिखाई दे रही थी वह निरंतर सघन और संश्लिष्ट होती गई। इसका कारण ये है कि उन्होंने व्यंग्य रचना देखा-देखी या फैशन के तौर पर नहीं शुरू की। वे शायद उनके भीतर से फूटी थी, इसलिए वह उनके लेखन का स्वधर्म बन गई। दूसरी बात ये है कि उन्होंने व्यंग्य को कथन शैली तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि सामाजिक बिवडम्बना, विद्रूपता, यानी कि समाज में स्थित व्यंग्यात्मक स्थितियाँ उनके व्यंग्य लेखन की प्रेरणा आधार और वस्तु बनती रहीं।

उनके पहले व्यंग्य-संग्रह 'राजधानी में गंवार' जो नाम से संकेत मिल रहा है कि इसमें लेखक ने राजधानी के आधुनिक अभिजनीय दुनिया के बीच फँसे हुए गाँव के एक आदमी की दुर्दशा का विधान किया है। लेकिन ये विधान वर्णनात्मक नहीं है। लेखक महानगर की स्थितियों और व्यवहारों से गाँव के आदमी की मानसिकता को तानकर व्यंग्यात्मक शैली में, एक तरह से महानगर पर ही चोट करता है। सामाजिक व्यंग्यात्मक स्थितियों को प्रेम सहज ढंग से व्यंग्य में परिवर्तित कर देते हैं। ऐसा नहीं लगता है कि उसकी तारीफ ही कर रहे हैं, लेकिन उस तारीफ के नीचे प्रच्छन्न भाव से उनकी कुरूपताओं और अमानवीयता का उपचस तैरता रहता है।

प्रेम के व्यंग्य की भाषा शैली में बोलचाल की भाषा है। बड़ी सादगी के साथ वे अपने कथ्य को उजागर करते रहते हैं। मैंने इधर उनके कुछ व्यंग्य लेख देखे और पढ़े हैं। मुझे विश्वास है कि प्रेम के नये संग्रह 'शर्म मुझको क्यों आती' से प्रेम को नयी उपलब्धि प्राप्त होगी।

हम लोगों को शिष्य बहुत मिलते हैं, किन्तु अच्छे शिष्यों का मिलना हमारे लिए भी उपलब्धि होता है और अच्छे शिष्यों में रचनाशील शिष्य मिलें तो क्या कहने! रचनाशील शिष्य में भी ऐसे शिष्य मिल जायें तो शिष्य और गुरु के बीच बने संबंध को न पूरे मन से निभाते रहे, बल्कि उत्तरोत्तर सघनता बढ़ाते रहें तो फिर क्या कहने! प्रेम जनमेजय भी ऐसे ही शिष्यों में हैं। मैं उसे अपना कनिष्ठ साहित्यकार सहयात्री मानता हूँ, किन्तु वे मुझे पूरी श्रद्धा के साथ गुरु ही मानते हैं। समय-समय पर इसकी अभिव्यक्ति भी करते रहते हैं।

प्रेम बड़े ही विनम्र व मृदु स्वभाव के हैं। अपने साथियों को भी आवश्यकता अनुसार प्यार व सहयोग देने वाले मनुष्य हैं। मुझे याद है जब मैं सेवानिवृत्त हुआ था तो प्रेम जनमेजय ने और वोकेशनल कॉलेज के अन्य शिष्यों के सहयोग से अपने कॉलेज में बुलाकर सम्मानित किया था। इसका सीधा प्रसंग नहीं था, किन्तु उनके मन में मेरे प्रति जो भाव है इसकी यह अभिव्यक्ति थी। उसमें एक और बड़ी खूबी ये है कि वे गोष्ठियों और सभाओं के अच्छे वक्ता के साथ-साथ संचालक भी अच्छे हैं।

मैं उन्हें हार्दिक बधाइयाँ और शुभकामनाएँ देता हूं कि वे दीर्घायु होकर रचनात्मक उपलब्धियों की नई-नई मंजिलों को प्राप्त करते रहें।

प्रेम जनमेजय के व्यंग्य नाटकों के बहाने

प्रताप सहगल

हिन्दी में 'अच्छे' नाटकों की कमी को लेकर हाय-तौबा मची रहती है। यह बात उतनी सच नहीं है, जितनी यह कि हिन्दी रंगमंच के अधिकतर रंग-निर्देशक नए मौलिक हिन्दी नाटकों पर काम करने से कतराते हैं। जब बने-बनाए विदेशी भाषाओं के नाटक अंग्रेजी में उपलब्ध हों और उन्हें अनूदित या रूपांतरित करके खेला जा सकता है तो फिर नए मौलिक हिन्दी नाटकों पर माथा-पच्ची क्यों की जाए? नाटकों की कमी की बात जितनी हिन्दी के लिए सच है, उतनी ही सच वह दूसरी भाषाओं के लिए भी है। अब यह बात दीगर है कि अनेक विदेशी भाषाओं के नाटक अंग्रेजी में उपलब्ध हैं और उन्हें जल्दी से हिन्दी में उथला किया जा सकता है। हम जब अच्छे नाटकों की बात करते हैं तो हमारा मन्तव्य ऐसे नाटकों से होता है, जिन्हें सफलतापूर्वक मंच पर उतारा जा सके। अगर आँशिक रूप से यह मान भी लिया जाए कि हिन्दी में मौलिक नाटकों की कमी है तो यह बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती है कि हिन्दी में व्यंग्य नाटक लेखन का इलाका एकदम खाली पड़ा हुआ है।

शरद जोशी के दो व्यंग्य-नाटकों (अंधों का हाथी और एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ) के बाद अजय गुप्ता का व्यंग्य नाटक 'ताजमहल का टेंडर' ही नजर आता है। यूँ गिनवाने लगें तो बहुत से व्यंग्य नाटकों का नाम लिया जाएगा, लेकिन वे सभी नाटक व्यंग्य कम और हास्य की सृष्टि ज्यादा करते नजर आते हैं। कहीं-कहीं तो यह नाटक इतने फूहड़ हास्य का सबब बनते हैं कि उन्हें हास्य नाटकों की जगह हास्यास्पद नाटक कहना सही लगता है। अपनी परंपरा की बात करें तो हमारे आचार्यों ने जिन आठ और फिर नौ रसों की स्थापना और उनकी विशद व्याख्या की है, उनमें एक रस हास्य-रस भी है और नाट्य-शास्त्र में ही नाटक (रूपक) के भेदों की चर्चा करते हुए प्रहसन को भी एक रूप माना गया है। प्रहसन में ही व्यंग्य निहित है। जाहिर है कि वहाँ व्यंग्य को उस रूप में देखा-समझा नहीं गया, जिस रूप में उसे हम आज देखने या समझने का उपक्रम करते हैं। भारतेन्दु युग का व्यंग्य कहीं वक्रोक्ति तो कहीं आधुनिक अर्थ में समझे जाने वाले व्यंग्य के रूप में मिलता है। 'कहै बात और कछु, अर्थ करै कछु और। वक्र उक्ति ताको कहैं, श्लेष काकु द्वै ठौर' ('साहित्यदर्पण' के अनुसार कुलपति की परिभाषा।) आज न सिर्फ व्यंग्यकार जानता है कि वह कहाँ और किस विकृति या विद्रूप पर व्यंग्य कर रहा है, वरन् व्यंग्य-रचना पढ़ने या देखने वाला भी जानता-समझता है कि व्यंग्य कहाँ और किस पर किया जा रहा है। यही शायद एक सूक्ष्म अंतर पहले के व्यंग्य-लेखन को परसाई और उनके बाद के व्यंग्य लेखन को अलग करता है।

संस्कृत नाटकों में भरत-वाक्य के साथ नाटक का अंत करने का सबब भी सुखांत नाटकों का सृजन ही नजर आता है। कौमुदी और त्रासदी की कल्पना प्राचीन यूनान और पश्चिम की देन है। हालाँकि राधावल्लभ त्रिपाठी और कई अन्य विद्वान् भारतीय संस्कृत साहित्य में त्रासदी की अलग तरह की कल्पना की स्थापना करते नजर आते हैं। भवभूति और कालिदास के नाटकों या फिर उनके नाटयकांशों का आधार उनके पास है। लेकिन अंततः त्रासदी की कल्पना है तो यूरोप की ही। कुछ लोग संस्कृत आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त के साथ व्यंग्य को जोड़ कर देखने की कोशिश करते हैं, जो सही नहीं है।

दरअसल अंग्रेजी के स्टायर का असर भी हिंदी पर नजर आता है और हास्य-व्यंग्य को अलग-अलग करके देखने की कोशिश शुरू होती हैं। शुरू में हास्य-व्यंग्य की बात एक साथ की जाती थी, न कि सिर्फ व्यंग्य की, और

इस तरह के सारे लेखन को हास्य-रस के लेखन की कोटि में ही डाल दिया जाता था। भारतेन्दु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा ना भवति' एक ऐसा प्रहसन है जिसे आधुनिक हिन्दी का पहला व्यंग्य नाटक माना जा सकता है और फिर 'अंधेर नगरी' तो उनका एक क्लासिक व्यंग्य नाटक है, तब व्यंग्य-नाटक की अवधारणा स्पष्ट न होने के कारण इन दोनों व्यंग्य नाटकों को प्रहसन ही माना गया। भारतेन्दु स्वयं उन्हें प्रहसन की श्रेणी में ही रखते हैं, लेकिन आज जब हम व्यंग्य नाटकों की बात करते हैं तो संभवतः हम उसकी शुरुआत इन दो नाटकों से ही कर सकते हैं।

प्रश्न यह है कि क्या व्यंग्य नाटक नाटक से कोई अलग विधा है या उसे नाटकों का विभाजन करते हुए नाटक का एक रूप ही मानना चाहिए? इसी के साथ प्रश्न यह भी जुड़ा हुआ है कि व्यंग्य-लेखन कोई एक अलग विधा है, या कि मात्र एक लेखन शैली। हिन्दी के अब तक के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई व्यंग्य को कोई अलग विधा नहीं मानते। उनका तर्क है कि क्योंकि व्यंग्य के पास अपना वैसा कोई स्ट्रक्चर नहीं है, जैसा कि कविता, नाटक या कथा-लेखन के पास है, इसलिए व्यंग्य को एक अलग विधा नहीं माना जा सकता। व्यंग्य-लेख, व्यंग्य-निबंध, व्यंग्य-नाटक या व्यंग्य-उपन्यास आदि अन्ततः इन्हीं विधाओं के खाते में ही दर्ज किए जाएँगे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'व्यंग्य' लेखन की एक शैली है न कि कोई अलग विधा। इस तर्क के बरक्स यह तर्क खड़ा नजर आता है कि जब हम व्यंग्य को लेखन की मात्र एक शैली मानते हैं तो फिर व्यंग्य लेखक या व्यंग्य-लेखन क्या होता है? हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी आदि और बाद में हरीश नवल, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी आदि को हम व्यंग्य-लेखक क्यों कहते हैं? इससे साबित यह होता है कि व्यंग्य-लेखन को लेकर अभी भी कोई साफ और बेबाक एप्रोच या समझ नहीं बनी है। मैं स्वयं उन लोगों में हूँ जो यह मानते हैं कि अब व्यंग्य मात्र एक लेखन शैली नहीं रही, बल्कि वह एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो चुकी है। यानी उपन्यास, उपन्यास तो होता है, लेकिन वह व्यंग्य-उपन्यास नहीं होता, व्यंग्य-उपन्यास में व्यंग्य का पुट इतना ज्यादा होता है कि वह उपन्यास निरा उपन्यास न होकर व्यंग्य-उपन्यास हो जाता है। और जब हम व्यंग्य को एक अलग विधा के रूप में रेखांकित करें तो इस तरह के उपन्यासों को व्यंग्य की कोटि में ही रखा जाना चाहिए ना कि निरे उपन्यास लेखन की कोटि में। ठीक इसी तरह से व्यंग्य नाटक भी निरा नाटक नहीं होता, बल्कि अपने भेदक व्यंग्य रूप के कारण वह व्यंग्य नाटक होता है और उसे व्यंग्य लेखन के नाट्य-रूप में समाहित करना चाहिए। तर्क यह भी दिया जा सकता है कि कोई भी नाटक बिना 'ड्रामेटिक आयरेनी' के नाटक नहीं बनता। इस तर्क के जवाब में यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य नाटक की 'ड्रामेटिक आयरनी' न सिर्फ उसके नाट्य-व्यापार में, बल्कि उसमें दृश्यों के हर फ्रेम में और उससे भी ज्यादा उसके संवादों में होती है। यह दो बातें हमें निरे नाटकों में नहीं मिलतीं और यही दो बातें मुख्यतः व्यंग्य नाटक को व्यंग्य लेखन विधा में प्रवेश दिलवाती हैं।

प्रेम जनमेजय के दो नाटक 'सोते रहो' और 'सीता अपहरण केस' इसी कोटि के नाटक हैं।

इन नाटकों पर बात करने से पहले दो-एक शब्द व्यंग्य पर भी करना जरूरी है। समय-समय पर अनेक लेखकों, विचारकों ने व्यंग्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। किसी ने इसे हास्य के साथ जोड़ा है, किसी ने अलगाया है। मेरी समझ से व्यंग्य कहीं कशाघात करता है तो कहीं कुशाघात। कहीं व्यंग्य हँसी का वह आलोक पैदा करता है, जिस आलोक के पीछे टीस का साम्राज्य होता है। एक ऐसी स्थिति जहाँ व्यक्ति हँस तो रहा है, लेकिन अंदर ही अंदर कहीं विचलित हो रहा है। रोना चाहता है, लेकिन रोने के बजाय हँसता है और उस हँसी के पार्श्व में कहीं आँसुओं की एक हल्की-सी लीक दिखाई दे जाती है। कहीं व्यंग्य मारक होते-होते मार्मिक

हो जाता है, तो कहीं त्रासद। ऐसा त्रासद कि वह कहीं अंदर तक छील देता है। प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य-लेखन में एक लंबी यात्रा तय की है। शुरू के दिनों में इन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखीं, जिनमें व्यंग्य-लेखन की आहट सुनाई देती है, लेकिन शुरू के दिनों में किसी भी लेखक के लिए यह तय करना मुश्किल होता है कि वह थोड़ा आगे चल कर लेखन की कौन-कौन-सी पगडंडी पर चलेगा। प्रेम ने अपनी राह और अपनी सामर्थ्य जल्दी ही पहचान ली और व्यंग्य की राह पकड़ ली। यह वह समय था जब हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी और रविन्द्रनाथ त्यागी व्यंग्य-लेखन की नई परिभाषा गढ़ रहे थे।

अनेक अन्य लेखक भी थे जो अन्य विधाओं में लिखते-लिखते कभी-कभी व्यंग्य में भी हाथ आजमा लेते। धीरे-धीरे प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी और हरीश नवल की त्रयी व्यंग्य लेखन में रेखांकित होने लगी और आज तीनों ने अपनी-अपनी जगह बनाई है। ज्ञान ने व्यंग्य उपन्यास की राह पकड़ी और 'बारहमासी' तथा 'नरक यात्रा'-जैसे व्यंग्य उपन्यास हमें दिए। हरीश, व्यंग्य में ही जमे रहे। यूँ वे कभी-कभी कविता या नाटक में हाथ आजमाते रहते हैं।

प्रेम ने पहली बार व्यंग्य नाटक के इलाके में उतरने की जुर्रत की है। और मुझे कहा है कि मैं इन नाटकों के साथ दो-दो हाथ करूँ। प्रेम के यह दोनों व्यंग्य नाटक पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर मंचित भी हो चुके हैं। मुझे मंचित होते देखने का अवसर तो नहीं मिला, लेकिन इन्हें पहले भी उन्हीं की पत्रिका इन्हें 'व्यंग्य-यात्रा' में पढ़ने का अवसर जरूर मिला है। 'सोते रहो' और 'सीता अपहरण केस', यह दोनों ही नाटक व्यंग्य नाटकों की दुनिया में नया दखल है। 'सोते रहो' का लोकेल और उसकी वस्तु दोनों ही बहुत पहचाने हुए हैं। इन्हें पढ़ते-पढ़ते यह भी ध्यान आया कि प्रेम की नजर में सम्भवतः नाटक सिर्फ दिखाने की चीज नहीं, बल्कि पढ़ने की चीज भी है। इन नाटकों में दिए गए 'रंग-संकेत' दिखाने की बजाय पढ़ाने के लिए लिखे गए ज्यादा नजर आते हैं। मैं अपनी बात एक उदाहरण देकर समझाना चाहता हूँ। 'सोते रहो' में एक रंग-संकेत इस तरह से है-

(सतवंत अचानक हुए इस वाणी प्रहार से धक्-सी रह जाती है। हाथ में गिलास गिर कर टूट जाता है। डार्लिंग शब्द है ही खतरनाक, जवानी में दिल तोड़ता है और प्रौढ़ होने पर गिलास। मनजीत सिंह का प्रवेश।)

इस रंग-संकेत पर जरा गौर फरमाइए। 'सतवंत अचानक हुए इस वाणी प्रहार से धक्-सी रह जाती है। हाथ में (वैसे यहाँ 'में' की जगह 'से' होना चाहिए) गिलास गिर कर टूट जाता है' यहाँ तक का रंग-संकेत दृश्य बनाता है, लेकिन आगे 'डार्लिंग शब्द है ही खतरनाक, जवानी में दिल तोड़ता है और प्रौढ़ होने पर गिलास' मात्र एक पाठ्य नाट्य-संकेत है। इसे अगर दिखाना हो तो यह सतवंत के पति मनजीत सिंह के संवाद का हिस्सा होना चाहिए था या फिर व्यंग्य नाटककार को कोई ऐसी नाट्य-युक्ति निकालनी चाहिए थी कि यह संवाद मंच के माध्यम से ही दर्शक तक संप्रेषित हो सकता है। क्या हमें यह मान लेना चाहिए कि व्यंग्य नाट्य-लेखन का एक स्वरूप यह भी हो सकता है कि आप इसे पढ़ें तो नाटक के आनंद के साथ-साथ व्यंग्य का आनंद भी लेते चलें या यह मानना चाहिए कि लेखक पर व्यंग्य-लेखन का भूत इतना सवार है कि वह किसी भी स्थिति पर व्यंग्य करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। मुझे लगता है कि यहाँ या ऐसी ही दूसरी जगहों पर रंग-संकेत देते हुए लेखक को सावधान रहने की जरूरत है।

'सोते रहो' व्यंग्य नाटक के मंतव्य बहुत स्पष्ट हैं। अपने इन्हीं मंतव्यों को दर्शक तक पहुँचाने के लिए प्रेम ने देश के विभिन्न राज्यों से पात्र चुने हैं। मनजीत सिंह और सतवंत तथा रमा आहूजा और आहूजा पंजाबी हैं, बैनर्जी और जयश्री बंगाली, महादेवन और कल्याणी दक्षिण भारतीय (यानी चैन्नई) के हैं। ये पात्र भारत के दूसरे प्रांतों से होते तो भी नाटक के संप्रेष्य मंतव्यों में

कोई फर्क नहीं पड़ता। इन पात्रों के साथ ही बंसल, चौकीदार, कवि कौंचू और कवि भौंक, शराबी सब-इंस्पेक्टर और कुछ पुलिस वाले, सभी मिल कर नाटक का ताना-बाना बुनते हैं।

नाटक के पहले अंक में मनजीत सिंह और सतवंत अपने घर में एक पार्टी की तैयारी करते नजर आते हैं और शेष जोड़े अपने-अपने घरों में उस पार्टी में जाने के लिए तैयार हो रहे हैं। मनजीत सिंह एक ठेकेदार है और शेष लोग इस तरह के नौकरीपेशा हैं जो मनजीत सिंह की ठेकेदारी को बढ़ाने और फलने-फूलने में मदद कर सकते हैं। बीच में मनजीत सिंह के बेटे बंटी का प्रवेश यह साफ कर देता है कि पैसे की अतिशयता बच्चों को किस कदर बिगाड़ देती है। पहले अंक में पार्टी की तैयारी और फिर पार्टी के माहौल का रंग है।

यहाँ मौजूद सभी पात्रों के माध्यम से ही एक-दूसरे के प्रति और सामाजिक विद्रूपताओं के प्रति व्यंग्य उभरता नजर आता है। दूसरे अंक में एक शराबी के प्रवेश से नाटक उसी दिशा में जाता है, जिस दिशा में नाटककार उसे ले जाना चाहता है। शराबी और महादेवन में ठन जाती है। सभी पात्र क्योंकि एक ही मोहल्ले में रहते हैं, बाहर आ जाते हैं। पंजाबी क्या करेगा? सीधे भिड़ेगा या फिर दूसरे की लड़ाई में मजा लेगा और करेगा कुछ नहीं। मनजीत सिंह सीधे भिड़ने को तैयार है तो बंसल बीच-बीच में 'सही कै रये हो, सही कै रये हो' कहकर ही लड़ाई का मजा लेते हुए अपना दायित्व निभाता रहता है। जयश्री का बंगाली चरित्र सामने आता है और महादेवन का अपने इलाके का। सब-इंस्पेक्टर शराफत सिंह हो या चौकीदार सभी परिचित अंदाज में ही सामने आते हैं। इस प्रकार के चरित्रों के साथ नाटक लिखने का एक लाभ यह होता है कि दर्शक जल्दी ही उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, लेकिन खतरा भी है कि कहीं चरित्र चरित्र न रह कर एक कैरिकेचर बन कर ही न रह जाए। इसके लिए कहीं-कहीं तो प्रेम सावधान नजर आता है। सावधान वहाँ है जहाँ वह प्रतिनिधि चरित्रों, किसी व्यैक्तिक पक्ष को उभार कर उसे एक अलग रूप दे देता है। जैसा कि मनजीत सिंह के चरित्र के साथ हुआ है। और कहीं उसने अपने पात्रों को मात्र एक प्रतिनिधि चरित्र बना कर छोड़ दिया है। कवि कौंचू और कवि भौंक के माध्यम से उसने आज हास्य के नाम पर चल रही मंचीय चुटकुलानुमा कविता का वैसा ही मखौल उड़ाया है, जिस मखौल के काबिल यह चुटकलिया तुकबंदियाँ हैं।

नाटक के अंत में जब पुलिस वाला शराबी से पैसे और महादेवन से शराब की तीन बोतलें ले जाने लगता है और जाते-जाते चौकीदार को कह जाता है कि तुम 'सोते रहो' की आवाज लगाते रहो तो वहाँ दारुण व्यंग्य की स्थिति उत्पन्न होती है। मेरी राय में तो चौकीदार की इस आवाज में पुलिस की आवाज भी मिला दी जाती, तो व्यंग्य और धारदार हो जाता। नाटक के नाम 'सोते रहो' में ही व्यंग्य की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। नाटक की पूरी बुनावट में जिस तरह से स्थितियों और संवादों का संसार खड़ा किया गया है, उसमें हास्य का पुट बहुत गहरे तक घुला हुआ है।

यही बात प्रेम के दूसरे व्यंग्य नाटक 'सीता अपहरण केस' के बारे में नहीं कही जा सकती है। 'सीता अपहरण केस' का मंचन भी कई जगह हो चुका है। संभवतः 'सोते रहो' की अपेक्षा अधिक जगहों पर। भोपाल में हुए मंचन को सीडी के माध्यम से देखने का सुयोग हुआ। इस समय मध्यप्रदेश में भाजपा की सरकार है। इस नाटक का मंचन करने वाले ग्रुप के सदस्य इतना साहस नहीं बटोर पाए कि नाटक का शीर्षक न बदलते। शासन के या भाजपाई शक्तियों के संभावित दबाव में उन्होंने इस नाटक का मंचन न सिर्फ 'मुकदमा' नाम से किया, बल्कि नाट्य-युक्ति का सहारा लेकर थानेदार एवं राम-लक्ष्मण के एनकाउंटर वाले सीन को एक ड्रीम सीक्वेन्स में बदल दिया। किसी रचना का इस तरह का असर कि कुछ शक्तियाँ उससे डरने लगें, यह उस रचना की ही बड़ी सफलता है। 'सीता अपहरण केस' भी दो अंकीय

व्यंग्य-नाटक है। पहले अंक में थानेदार, थानेदार की पत्नी, नेता जी और पत्रकार सिन्हा के माध्यम से यह स्थापित किया गया है कि पूरी तरह से भ्रष्ट हो गई व्यवस्था के तार किसी न किसी रूप में इन सबसे जुड़ते हैं। आज हालत यह हो गई है कि कहीं ईमानदार नेता या पत्रकार हो भी तो यकीन नहीं आता कि वे ईमानदार होंगे।

लगता है कि उनकी कथित ईमानदारी वास्तविक न होकर उनकी किसी स्ट्रेटजी का हिस्सा है, हालाँकि पहला अंक थोड़ा खिंच गया लगता है, लेकिन उसमें दूसरे अंक में हुए घटना-क्रम का तर्क स्थापित हो जाता है कि ऐसे घोर 'कलियुग' में सीता का अपहरण होता तो क्या होता? हमारी पौराणिक, ऐतिहासिक रामकथा ही इस नाटक के थीम का आधार है। नाटककार के साथ आप भी कल्पना कीजिए कि आज अगर सीता का अपहरण होता तो आज का थानेदार क्या कहता।

''थानेदार-साला किड़शन सिंह...हमें तिया नंदन समझता है.. कहता है रामायण देखो...अबे क्या देखो उसमें? महादेव जी का.... (नशे में स्वर धीमा होता है) अब क्या है उसमें... पुलिस कहाँ है.... इतने मर्डर और पुलिस गायब... सीता गायब हुई और राम-लक्ष्मण हमारे थाने नहीं आए... मैं ढूँढ़कर देता सीता को... मैं बिना पैसे के ढूँढ़ कर देता.... पर हम पुलिसवालों पर तो कॉन्फीडेन्स ही नहीं है. .. नो कॉन्फीडेन्स रामा.... ऑन पुलिस, व्हाई... पुलिस नाट देयर...व्हाई...''

इस तरह से इस अंक में एक से एक हार्ड-हिटिंग संवाद भरे पड़े हैं। इन संवादों की अदायगी के अंदाज से दर्शकों को लाफ्टर तो मिलेगा ही, वह अंदर ही अंदर कहीं कसमसाता भी रहेगा कि आखिर ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था और ऐसी भ्रष्ट पुलिस का वह करे तो क्या करे? हार झख मार कर फिर उसे इसी भ्रष्ट पुलिस का सहारा ही गाहे-बगाहे लेना पड़ता है। हमारे मौजूदा जीवन का यही विरोधाभास व्यंग्यकार के निशाने पर है। थानेदार का यह संवाद, 'इसने रावण से पंगा लिया है... तू तो गया काम से। शासन से पंगा लेना बड़ा महँगा पड़ता है' या फिर 'पुलिस सहायता' शब्द की नई व्याख्या कि 'पुलिस सहायता' मतलब ''पुलिस की सहायता करो।''

और जब राम सीता के अपहरण की बात करते हुए थानेदार को बताता है कि वह सोने के एक मृग के पीछे गया था। बस इतना सुनते ही थानेदार का कहना '... यानी हमारे इलाके में सोने के हिरण बन रहे हैं...अरे भाई वाह....सोने के हिरण भी बनने लगे और हमें पता ही नहीं' और फिर राम को यह मशविरा 'भइए, अगर ऊपर के आदेश से तुम्हारी सीता गायब हुई है तो समझ लो उसे गायब होना ही था। तुम सात तालों में सीता बंद करके रख लेते, तब भी तुम्हारी सीता गायब हो जाती।''

इस तरह के व्यंग्यात्मक संवादों की इस नाटक और विशेषतः दूसरे अंक में भरमार है। कुछ संवाद अनावश्यक रूप से लंबे किए गए लगते हैं। उनमें प्रासंगिक व्यंग्य तो है, लेकिन वे नाटक की मूलधारा से इधर-उधर भटक गए लगते हैं।

यह तो मानना ही होगा कि इस नाटक में प्रेम जनमेजय की कारयत्री प्रतिभा अपने उत्कर्ष पर है।

मंच की दृष्टि से इन नाटकों को परखने का लोभ भी संवरण नहीं कर पा रहा, हालाँकि यह अधिकार उस निर्देशक को देना होगा, जो इन नाटकों का मंचन करेगा। लेकिन नाटक को पढ़ने के साथ-साथ ही एक मंच पाठक के अंदर भी खुलने लगता है। पढ़ने में यह नाटक कहीं मजेदार, कहीं मारक, कहीं चुटीले, तो कहीं विरेचक हैं, लेकिन मंच पर आते ही इन्हीं संवादों के साथ नाटकीय त्वरा कम होने के आसार नजर आते हैं। या तो इनके लिए निर्देशक को कुछ नाट्य-युक्तियों का सहारा लेना होगा या फिर इनकी शब्द-बहुलता कम करनी होगी या उन्हें तोड़ कर नया रूप देना होगा। बिल्कुल इसी तरह से पेश करने में नाटक के ड्रैग होने की पूरी-पूरी संभावनाएँ हैं। कहने को तो हम यह भी कह सकते हैं कि ऐसे ही नाटक तो निर्देशक के लिए एक चुनौती होते हैं। खेल के देखिए!

प्रेम जनमेजय और मैं

नरेन्द्र कोहली

पंद्रह वर्षों से अधिक का समय हो गया है, जब मैंने प्रेम के विषय में एक संस्मरण लिखा था, ''पचास के प्रेम जनमेजय''। तब मैंने लिखा था...

''प्रेम भी पचास वर्ष के हो गए हैं, यह बात सहज ही मेरे गले से नहीं उतरती। चाहे मैं अपने विषय में कितना ही ढिंढोरा पीटता रहा हूं कि मैं षष्टि प्रवेश कर चुका हूं और प्रतिदिन षष्टिपूर्ति की ओर बढ़ता जा रहा हूं; किंतु प्रेम का पचास का होना भी कुछ अद्‌भुत लगता है। अपने भीतरी और बाहरी विकास का बोध सब को होता है; किंतु दूसरे व्यक्ति को हम अपने मन में बने हुए, उसके प्रथम बिंब से आगे बढ़ने ही नहीं देते। जैसे पुत्र के प्रति पिता का भाव, या फिर शिष्य के प्रति गुरु का भाव ... इससे कई बार हम दूसरे के गुणों अथवा गुणों के विकास की अनदेखी भी कर जाते हैं। यह बात मेरे और प्रेम के संबंधों के संदर्भ में भी पूर्णतः सत्य है।

जिसे पहली बार कॉलेज के प्रथम वर्ष के विद्यार्थी के रूप में जाना हो, उसका विकास देखते हुए भी, उसकी उन्नति की यात्रा के साक्षी होते हुए भी, उसके प्रति अपना व्यवहार और दृष्टिकोण बदलना बड़ा कठिन होता है। बच्चा इतना बड़ा हो जाए कि उसे गोद में न उठाना पड़े, तो हम इस बात से तो प्रसन्न होते हैं कि अब बोझ नहीं उठाना पड़ेगा; किंतु उसके चलने की क्षमता का सम्मान करना हमें स्मरण नहीं रहता। अब कोई कहे कि मंच पर बैठे हुए प्रेम जनमेजय को मैं 'आदरणीय डॉ. जनमेजय' कह कर संबोधित करूँ, तो मुझे कठिनाई होगी। मैं क्षमा मांग लूंगा; किंतु उसे 'प्रेम' ही कहूंगा। कोई कहे कि अब मैं प्रेम को कोई साधारण-सा काम करने को न कहा करूँ, क्योंकि प्रेम बड़ा हो गया है, साहित्य और समाज में अपना स्थान बना चुका है, तो मैं सैद्धांतिक रूप से सहमत हो जाऊंगा; किंतु अपने व्यवहार को बदलना मेरे लिए संकट का विषय हो जाएगा, या फिर मैं उस सारी स्थिति पर हँस ही सकूंगा।

कई बार यह भी लगता है कि उसकी पत्नी और बेटों को, उसके प्रति मेरा व्यवहार बहुत सम्मानजनक नहीं भी लग सकता। उनके लिए वह प्रौढ़, परिपक्व और आदरणीय व्यक्तित्व है, पति है, पिता है, गृहस्वामी है; और मैं उससे ऐसा व्यवहार कर रहा हूं, जैसे वह अभी कोई किशोर ही हो।... यह सब समझता हूं मैं; किंतु उससे मैं अपना भाव नहीं बदल सकता। यदि मैं अपना भाव बदलने का प्रयत्न करूंगा, तो बहुत कुछ अस्वाभाविक हो जाएगा और हमारे संबंधों का नैसर्गिक सौंदर्य विकृत हो जाएगा। प्रेम के व्यवहार और लेखन के संदर्भ में कोई उसकी निन्दा करेगा तो मैं भरसक उसका बचाव करूंगा; किंतु जब मैं उसकी कोई रचना अथवा पुस्तक पढ़ूँगा तो आज भी मेरा मन होगा कि मैं लाल पेन से उसकी गलतियां निकाल कर उसके सामने रख दूं। उसे बताऊं कि इसमें यह त्रुटि है। उसे बताऊं कि तुम्हें उस व्यक्ति से यह नहीं कहना चाहिए था। मैं उससे लड़ सकता हूं, उसे डांट सकता हूं; किंतु मैं उसके लिए पराया नहीं हो सकता। इसलिए मैं उसके प्रति न अपना भाव बदलना चाहता हूं, न व्यवहार।

गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, मोती बाग (अब मोतीलाल नेहरू कॉलेज) में मेरे भी वे आरंभिक वर्ष ही थे। प्रेम अपनी कक्षा का सबसे मेधावी छात्र था। ऑनर्स में 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र' की कक्षा में वह अकेला ही छात्र था। उसके साथ एक और छात्र था तो, किंतु न होने जैसा। प्रेम कक्षा में ही नहीं, मेरी अन्य सारी गतिविधियों में भी मेरे साथ था। वह लेखक-मंडल में मेरे साथ था। कॉलेज की पत्रिका में साथ था। साहित्य परिषद्‌ में साथ था। जब मैंने व्यक्तिगत रूप से 'अतिमर्श' का प्रकाशन आरंभ किया था, तब भी वह मेरे साथ था। कम खर्च में पत्रिका को डाक से भेजने की अनुमति न होने के कारण

हमें उस पर लगाई जाने वाली डाक टिकट काफी खर्चीली लगती थी, इसलिए एक-एक अंक को दिल्ली के किसी कोने में उसके ग्राहक तक पहुंचाने के लिए मैं और प्रेम अपने स्कूटर पर सारे नगर में घूमते फिरते थे। मैं स्कूटर चलाता था और वह पत्रिका के अंक ले कर पीछे बैठता था।... वह कितना-कितना मेरे साथ था, इसका कुछ अहसास तो तब होता है, जब स्मरण करता हूं कि मेरे नाटक 'शंबूक की हत्या' का मंचन उज्जैन में हो रहा था। उन लोगों ने मुझे बुलाया था। मैं जाना चाहता था, किंतु अकेले जाने का संकोच और यात्रा की ऊब। ... बात पुरानी है, अतः अब याद नहीं कि वह सब कैसे तय हुआ, किंतु प्रेम मेरे साथ गया था। मेरा बड़ा बेटा कार्तिकेय तब पाँच-सात वर्षों का रहा होगा, वह भी हमारे साथ था। वह मेरी आज तक की अपने प्रकार की एक ही साहित्यिक यात्रा है। हम लोग भोपाल गए। रात वहां काटनी थी। अतः बहुत घनिष्ठता न होने पर भी लक्ष्मीकांत वैष्णव को यह लिखने का दुस्साहस किया कि वह हमें भोपाल स्टेशन पर मिले और रात को अपने घर पर ठहराए। उसने वैसा ही किया। रात का भोजन भी उसके घर किया और सोए भी वहीं। प्रातः उज्जैन के लिए चल पड़े। उसी यात्रा में हम इंदौर, खंडवा और हरदा भी गए। प्रेम की इच्छा थी कि हम लोग जबलपुर भी जाएं। वहां हरिशंकर परसाई थे; और श्रीराम आयंगार भी था। वह प्रेम का मित्र था, यद्यपि परिचय मेरा भी था। श्रीराम के अन्य मित्र भी थे। प्रेम को उनका आकर्षण खींच रहा था। कार्तिकेय इस निरंतर यात्रा से ऊब चुका था और वापस लौटना चाहता था। वह प्रेम से काफी छोटा था; किंतु वे दोनों एक-दूसरे के विरोध में आमने-सामने खड़े हो गए थे। अंततः उनमें समझौता हुआ कि कार्तिकेय जबलपुर जाने से मना नहीं करेगा। इसके बदले में अब प्रेम-मार्ग में ग्वालियर, आगरा और मथुरा घूमने की इच्छा का त्याग करेगा। प्रेम को यात्रा प्रिय है। पर उसने उस समझौते का पालन किया।

यात्राएं मैंने प्रेम के साथ और भी की हैं। अनेक-अनेक आयोजनों में हम एक साथ गए हैं - रायपुर, भोपाल, लखनऊ, झांसी, सोलन ... पहली यात्रा में तो मैं अभिभावक की स्थिति में था, किंतु क्रमशः यह क्रम उलट गया। अनेक यात्राओं में वह मुझे मेरे घर से ले गया और यात्रा की अवधि में सारी व्यवस्था करते हुए, अंततः मुझे मेरे घर तक पहुंचा गया। ... फिर भी वह पहली यात्रा अद्भुत थी। न हमारे पास पर्याप्त धन था, न ज्ञान, न साधन। बहुत कम साधनों में ही हम काफी लंबी यात्रा कर आए थे।

प्रेम के साथ अपने संबंध को किसी रिश्ते में बांधने में मुझे कठिनाई का अनुभव होता है। मुझे तो वह आज तक 'सर' कह कर ही संबोधित करता है। मेरी पत्नी को उसने पहले कुछ अन्य छात्रों के अनुकरण में 'आंटी' कहना आरंभ किया था; किंतु अपने विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी के ही अनुरोध पर (अथवा पत्नी के प्रभाव/दबाव में) उसने इस संबोधन को 'भाभी' में बदल दिया। बहुत बाद में जब मैं अपने समधी से उसका परिचय करा रहा था और उसकी विशेषताओं और गुणों की चर्चा कर रहा था तो उसने स्वयं ही अपने परिचय को यह कह कर विराम दे दिया था, ''जी! और क्या कहना है, मैं इनका छोटा भाई हूं।''

इस प्रकार सोचता हूं तो वह मुझे अपने पुत्र कार्तिकेय और अपनी पीढ़ी के बीच की पीढ़ी का लगता है। भाव में वह पुत्रवत् भी हो सकता है और सामर्थ्य में छोटे भाई के समान। यही कारण है कि उसका संबंध केवल मुझसे ही नहीं है, यह एकल संबंध नहीं है, यह पारिवारिक संबंध है। यह प्रेम की विशेषता है कि उसका संबंध परिवार के प्रत्येक व्यक्ति से होता है। हमें आज भी स्मरण है कि जब कार्तिकेय छोटा-सा था और लेखक-मंडल की गोष्ठी के संदर्भ में बहुत सारे मित्र और छात्र मेरे घर पर आते थे तो गोष्ठी के पश्चात् सब को विदा कर कार्तिकेय प्रेम को रोकने की हठ करता था और कपाट बंद कर उनके सम्मुख खड़ा हो जाता था, ''प्रेम अंकल अभी नहीं जाएंगे।''

कार्तिकेय के शैशव के उस संबंध की गहराई का कुछ परिचय मुझे तब मिला, जब उसकी सगाई हो रही थी। निमंत्रण हेतु एक अत्यन्त संक्षिप्त सूची बन रही थी, जिसमें से नगर में रहने वाले, मेरे सगे भाई भी बाहर थे। तब कार्तिकेय ने कहा था कि 'प्रेम अंकल को अवश्य निमंत्रित किया जाएगा।' तब तक यही माना था कि प्रेम से मेरे अपने संबंध हैं। चाहे वे कॉलेज के कारण हों, चाहे साहित्य के कारण, किंतु कार्तिकेय के इस वाक्य से यह बात रेखांकित हो कर मेरे सामने आई कि यह संबंध मुझ तक ही सीमित नहीं है।

प्रेम के विषय में सामान्यतः कहा जाता है कि वह संबंधों का पूरी तरह से निर्वहन करता है, यद्यपि मैंने कुछ लोगों से उसके संबंध टूटते हुए भी देखे हैं। साहित्य के माध्यम से बने हुए, बहुत सारे संबंध स्वार्थ के आधार पर बनते हैं; और फिर प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्यावश टूट जाते हैं। साहित्य की राह से होकर ही प्रेम के बहुत सारे ऐसे मित्र भी बने, जो किसी कारण मुझे सहन नहीं कर सकते थे, अथवा मेरे साथ उनकी पटरी नहीं बैठती थी। (भगवद्‌गीता के अनुसार हमारा व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए, जो न किसी को देख कर उद्विग्न हो और न लोग हमें देख कर उद्विग्न हों; किंतु अपने विषय में बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि मैं ऐसा नहीं हूं। मैं उद्विग्न होता भी हूं और उद्विग्न करता भी हूं।) मुझे अनेक बार लगा कि प्रेम के कुछ मित्रों की संगति प्रेम को मुझ से दूर ले जा रही है; और वह इस बात को समझ नहीं रहा है। वे प्रायः उसके कान में डालते रहे कि प्रेम अपने गुरु की परछाईं ही न बना रहे। उसे मेरे प्रभाव से मुक्त होना चाहिए। वे मुझे बरगद मानते रहे हों या न मानते हों, किंतु उन्होंने मेरे शिष्यों से यह अवश्य कहा कि मेरी छाया में वे लोग स्वतंत्र रूप से पनप नहीं पाएंगे। कई बार लगा भी कि प्रेम यह प्रमाणित करने के लिए प्रयत्नशील है कि वह मेरे प्रभाव से सर्वथा मुक्त, एक स्वतंत्र अस्तित्व है। मुझे किसी की भी स्वतंत्रता में कोई आपत्ति नहीं है। क्यों हो? किंतु कोई अपनी स्वतंत्रता प्रमाणित करने के लिए, अपने इतिहास के साथ तोड़-मरोड़ करे, यह मुझे तो कभी अच्छा नहीं लगा। अपनी स्वतंत्रता को स्थापित करने के इस प्रयत्न का प्रभाव मुझ पर भी पड़ा और हमारे संबंधों पर भी, किंतु संबंधों की यह शिथिलता बहुत दीर्घकालीन सिद्ध नहीं हुई। वह सामयिक दुर्घटना बन कर ही रह गई। हमारे संबंधों का नैसर्गिक रंग पुनः-पुनः लौट कर आया।

पर मैं उन संबंधों की बात नहीं कर रहा, जिनके आधार पर प्रेम को 'यारों का यार' कहा गया। 'यारी' और 'आत्मीय संबंधों' में बहुत अंतर होता है। वर्षों पहले जब प्रेम का वैवाहिक संबंध तय हो रहा था, उसने एक दिन आ कर मुझे चकित कर दिया। बोला : उसके माता-पिता ने एक लड़की पसंद कर ली है। अब पूर्ण स्वीकृति देने से पहले वह चाहता है कि मैं और मेरी पत्नी उस लड़की को देख लें और अपना निर्णय बताएं।

"और यदि वह लड़की हमें पसंद न आई तो?" मैंने पूछा।

"तो यहां विवाह नहीं होगा।" उसने कहा, "आपकी सहमति के बिना विवाह नहीं होगा।"

किसी के लिए लड़की या लड़का देखना मेरे लिए कोई बहुत कठिन काम नहीं था। अपनी राय भी मैं बड़ी सुविधा से दे सकता था। ऐसे काम मैं पहले अपने मित्रों के लिए भी कई बार कर चुका था। पर यहां, जहां प्रेम के माता-पिता लड़की को पसंद कर अपनी स्वीकृति दे चुके थे, मामला जटिल था। यदि हमें लड़की पसंद न आई तो? अच्छा-खासा जुड़ता हुआ रिश्ता टूट जाएगा और फिर लगेगा कि प्रेम के माता-पिता के किए हुए संबंध को हमने तुड़वा दिया है। भांजी मारना किसी भी रूप में शोभनीय नहीं होता।

हम दोनों पर्याप्त संकोच कर रहे थे, किंतु प्रेम नहीं माना। हमें जाना ही पड़ा। सौभाग्य से लड़की हमें भी पसंद आ गई, और किसी प्रकार का कोई संकट खड़ा नहीं हुआ। ... पर बात तो संबंधों के निर्वाह की थी। प्रेम ने अपने जीवन के इस महत्वपूर्ण मोड़ पर जो सम्मान

हम दोनों को दिया था, उससे संबंधों को उनकी पूर्णता में ग्रहण करने और निभाने का प्रमाण मिला।

अपने संबंधों के लिए मैं स्वयं को श्रेय नहीं देता। मैं नए संबंध बनाने और पुराने संबंधों के निर्वहन में बहुत पटु नहीं हूं। इस संदर्भ में मेरी ओर से सक्रियता बहुत कम होती है। छात्र हों या शिष्य, उनके प्रति मेरा समान भाव ही रहता है। अब यह उनका ही गुण होता है कि कौन इस संबंध को कितनी दूर ले चलने को प्रस्तुत है। कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होने पर प्रेम के सामने भी पारिवारिक और साहित्यिक संबंधों के लिए विस्तृत क्षेत्र था। अधिकांश छात्र कॉलेज छोड़ने के पश्चात् अपने अध्यापकों को भी छोड़ जाते हैं। वे मानते हैं कि हमारा संबंध कॉलेज के माध्यम से था, और कॉलेज तक ही था। मैं मानता हूं कि वास्तविक संबंध तो कॉलेज छोड़ देने के बाद ही विकसित होते हैं। प्रेम ने अपने संबंधों को न तो काल की दृष्टि से सीमित किया और न ही साहित्य की सीमाओं में बांधा। वह उसे पारिवारिक क्षेत्र में भी ले आया। मेरे परिवार के प्रत्येक सदस्य को पूरे स्नेह और सम्मान के साथ स्वीकार किया और अपने परिवार में हम लोगों को पूरा अधिकार दिया।

दो वर्ष पूर्व मेरे पुत्र का विवाह था। विभिन्न कामों के लिए मुझे सहायता और सहारे की आवश्यकता थी। अनेक मित्र और (पूर्व) छात्र पूरी तरह से मेरे साथ लगे हुए थे। प्रेम भी उनमें था और सबसे पहले था। उसी अवसर पर काम के आधिक्य के कारण मेरी परेशानी देख कर उसने एक वाक्य कहा था, जो मुझे स्मरण है और रहेगा। उसने कहा था, ''सर! आप आज्ञा तो दीजिए। हम खड़े हैं। जो कहिएगा, हो जाएगा।'' मैं जानता हूं कि यह केवल औपचारिक वाक्य नहीं था। इसमें सच्चाई है। उसके मन में भी वही भाव था, जो शब्दों से प्रकट हो रहा था। वह अपनी क्षमता भर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम करने को तैयार था।

लेखक-मंडल में हम प्रत्येक लेखक की रचना बड़े धैर्य से सुनते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं। यह क्रम सन् 1965 ई. से चल रहा है। प्रेम इस लेखक-मंडल का मेरे बाद सबसे पुराना और सबसे नियमित सदस्य है। मुझे वे दिन भी याद हैं, जब अनेक कारणों से हमारे सदस्य इधर-उधर बिखर जाते थे और अकेला प्रेम ही गोष्ठी के लिए आता था। प्रेम, मैं और मेरी पत्नी मधुरिमा हम तीन व्यक्ति बैठ कर रचना पढ़ते और सुनते थे। पर लेखक-मंडल चलता रहा था। इस प्रकार मैंने प्रेम की उन दिनों लिखी गई, प्रायः सारी ही रचनाएं सुनी हैं। आरंभ में वह कहानियां भी लिखता था। कविताएं भी लिखता था। अब भी कभी-कभी कविता की कुछ पंक्तियां-व्यंग्यात्मक ही सही, लिख लेता है, किंतु मूलतः विकास उसके व्यंग्यकार का ही हुआ है। मुझे अपने मित्रों का स्वयं को किसी भी प्रकार सीमित कर लेना पसंद नहीं है - न पढ़ने के क्षेत्र में और न ही लिखने के क्षेत्र में। संकीर्णता अच्छी नहीं होती, किंतु उसी प्रकार विक्षेप भी अच्छा नहीं होता। प्रेम का लिखना व्यंग्य तक ही सीमित हो गया। उसने एम. फिल. और पी.एच.डी. के शोध के लिए भी व्यंग्य संबंधी विषय ही लिए। इससे उसकी व्यंग्य के प्रति निष्ठा प्रकट होती है। उसने स्वयं को बिखरने नहीं दिया। अपनी सीमा को पहचान कर, अतिरिक्त बोझ को छांट दिया।

मैंने प्रेम की (एक समय तक) सभी रचनाएं सुनी हैं। इसलिए जब उसकी पुस्तकें आईं तो उसकी सहज ही यह इच्छा रही होगी कि मैं उनकी समीक्षा करूं। उसके पहले व्यंग्य-संग्रह 'राजधानी में गंवार' के प्रकाशन पर तो मेरी पूरी तैयारी ही थी। उस पुस्तक की पंक्तियों के नीचे खिंची रेखाएं और मेरे पुराने कागजों में रखी हुई टिप्पणियां इसका प्रमाण हैं, किंतु शायद समीक्षाएं लिखना मेरी प्रवृत्ति ही नहीं है। रचना को सुन कर तत्काल अपनी प्रतिक्रिया देना मुझे कभी कठिन नहीं लगा, किंतु जब बात लिखने की आती है तो सदा ही मैं समीक्षा, आलोचना, चिंतनपरक निबंध इत्यादि के स्थान पर कथा या व्यंग्य लिखने बैठ जाता हूं। इसीलिए उस पुस्तक की समीक्षा नहीं लिखी गई। शायद उसकी पुस्तकों पर मैंने पहली

समीक्षा उसकी नवीनतम पुस्तक 'शर्म तुमको मगर क्यों आती' पर लिखी है। उसका निमित्त उस पुस्तक पर हुई वह गोष्ठी बनी, जिसकी मुझे अध्यक्षता करनी थी। उसी संदर्भ में पुस्तक पढ़ी, उसे स्थान-स्थान पर चिन्हित किया और गोष्ठी में बोल आया। बाद में स्वयं को स्मरण दिलाता रहा कि यदि मैंने सप्ताह भर में ही कुछ लिख नहीं दिया तो कहने योग्य बातें विस्मृत हो जाएंगी और फिर कभी यह समीक्षा नहीं लिखी जाएगी। परिणामतः यह समीक्षा किसी प्रकार लिखी गई। मैंने वह प्रेम को भेज भी दी, किंतु मुझे लगा कि मैं एक तटस्थ समीक्षक के रूप में उसकी समीक्षा नहीं कर पाता हूं; आलोचना तो करना ही नहीं चाहता हूं। मैं यह भूल नहीं पाता हूं कि यह समीक्षा प्रेम की रचनाओं पर लिखी गई है; और यह छप कर सबके सामने जाएगी। इसलिए यह हम दोनों के बीच न रह कर सार्वजनिक घोषणा होगी। जो कुछ और जितना कुछ मैं कहना चाहता हूं, वह केवल उससे कहना चाहता हूं। जो कहना चाहता हूं, वह कभी अध्यापक के रूप में कहना चाहता हूं, कभी बड़े भाई के रूप में, कभी उसके प्रशंसक और मित्र के रूप में। इसमें यह दोष तो है ही कि एक ओर जहां मैं उसको उसके दोष बताना चाहते हुए भी उसका आत्मबल क्षीण नहीं करना चाहता, वहीं मैं एक अपरिचित अथवा तटस्थ आलोचक के रूप में उसकी मुक्त रूप से प्रशंसा भी नहीं कर पाता। सार्वजनिकता का संकोच मुझे बांधता है, मेरी मर्यादा मुझे बांधती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया अपनी नैसर्गिकता की रक्षा नहीं कर पाती। मैं उसके साथ बैठ कर उसकी रचनाओं पर कहीं अच्छी तरह चर्चा कर सकता हूं।

प्रेम के विषय में माना जाता है कि वह बहुधंधी व्यक्ति है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह दस प्रकार के व्यवसाय करता है, अथवा कई प्रकार के उद्योग-धंधे और व्यापार करता है; किंतु वह मित्रों, संबंधियों, कॉलेज, मुहल्ले और अन्य प्रकार की संबंधित संस्थाओं की जिम्मेदारी ले सकता है। ले लेता है। वह कॉलेज, विश्वविद्यालय और अपने मुहल्ले की निवासी परिषद् के चुनाव में स्वयं कूद सकता है, अथवा किसी को चुनाव लड़वा सकता है, फिर उसके लिए वोट बटोरने में अपना समय लगा सकता है और तब उसे भी अनुभव होता है और मुझे भी कि इन कारणों से उसका लेखन पिछड़ रहा है। पिछले दिनों उसने रूसी सांस्कृतिक केन्द्र में साहित्यिक गतिविधियों का दायित्व संभाल लिया। उसकी बाहरी गतिविधि बढ़ गई। उसके आस पास लेखकों का जमघट हो गया। उसके जनसंपर्क और लोकप्रियता में वृद्धि हुई, किंतु लेखन मार खाता रहा। ... फिर उसने अनेक प्रकार के संपादन का कार्य स्वीकार कर लिया। सहसा ही मुझे लगा कि शायद प्रेम अपने समय का सबसे अधिक लोकप्रिय संपादक हो उठा है। अनेक व्यंग्य-संग्रहों, पत्रिकाओं और विशेषांकों के अतिथि संपादक के रूप में उसका नाम दिखाई देने लगा।

मेरा ही नहीं, सारे हिंदी जगत् का अनुभव है कि हमारे जितने भी लेखक संपादन की ओर बढ़े, उनके सृजन ने उसका भारी शुल्क चुकाया है। मैं संपादन का विरोधी नहीं हूं, किंतु यदि लेखन और संपादन में से किसी एक को चुनना हो तो व्यक्तिगत रूप से मैं लेखन को ही चुनूंगा। मैं मानता हूं कि चुनाव तो प्रेम का भी वही होगा, किंतु वह संपादन के लोभ का भी संवरण नहीं कर पाया है, इसलिए उसने संपादन के वे दायित्व भी स्वीकार किए हैं।

पर तब मेरा मन दूसरी दिशा से भी सोचने लगता है। ... अनेक बार प्रेम की कोई रचना सुन या पढ़ कर लगा कि—अरे, प्रेम को इस क्षेत्र का ज्ञान कैसे हुआ? और कोई व्यंग्यकार तो भारत की अर्थव्यवस्था के विषय में इस प्रकार चिंतन नहीं कर पा रहा। प्रेम शेयर बाजार को भी समझता है। निर्यात और आयात को भी समझता है। उत्पादन और विक्रय को भी समझता है। मुद्रा-स्फीति और मुद्रा-विनिमय की स्थिति और परिस्थिति को भी समझता है। ... तो कैसे समझता है? क्योंकि वह बहुधंधी है। विभिन्न क्षेत्रों के संपर्क में आता है और वहां की सामग्री से अपना साहित्य रचता है, तो सतही रूप से जो

गतिविधियां उसके लेखन के लिए घातक प्रतीत हो रही हैं, भीतर से कहीं वे उसे लिखने की ऊर्जा भी दे रही हैं। यदि वह साहित्य से असंबद्ध उन सारी गतिविधियों को अपने साहित्य की उपजीव्य सामग्री बना लेता है तो फिर उसमें हानि ही क्या है।

2

इस संस्मरण को लिखे हुए बहुत समय बीत गया है। आज लेकर बैठा हूं तो लगा कि इसके पश्चात् तो गंगा-यमुना में बहुत सारा पानी बह चुका है।... प्रेम अपने कॉलेज की नौकरी में रहते हुए ही, सांस्कृतिक संबंध परिषद् के माध्यम से सांस्कृतिक सचिव बन कर ट्रिनिडाड और टोबैगो में 'पोर्ट ऑफ स्पेन' में रह रहा था। तभी एक दिन उसका फोन आया कि वे लोग वहां एक अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन कर रहे हैं और वह चाहता है कि मैं उसमें सम्मिलित होने के लिए पोर्ट ऑफ स्पेन में उसका अतिथि बन कर वहां पहुंचूं।...तब तक विदेश-यात्रा के नाम पर मैं नेपाल तक ही गया था, जहां न पासपोर्ट चाहिए था, न वीजा। मैं ऐसा घरघुस्सू आदमी हूं कि गाजियाबाद तक जाना भी मुझे कष्टकर लगता है; और वह मुझे पोर्ट ऑफ स्पेन बुला रहा था।

''सर, हम आपको यात्रा व्यय के लिए एक हजार डॉलर देंगे।...'' उसने मुझे सम्मेलन में चर्चा के लिए विषय आदि भी बताए। अधिकांश विषय तो विदेशों में हिंदी पढ़ाने के संबंध में ही थे।

इतनी लंबी यात्रा के नाम से ही मैं घबरा गया था। मैंने कहा, ''देखो प्रेम, न तो ये विषय मेरी रुचि के हैं और न मेरी रुचि ऐसी यात्राओं में है।''

''हम आपको आपकी पसंद का विषय देंगे और आपको सत्र का अध्यक्ष भी बना देंगे।'' उसने कहा। और इससे पहले कि मैं कुछ कह पाता, उसने कहा, ''सर, आपके मन में मेरे लिए यदि थोड़ा-सा भी स्नेह है तो मेरे यहां से जाने से पहले एक बार आप मेरे घर में पदार्पण अवश्य करें।...''

यह किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का निमंत्रण नहीं रह गया था। बात स्नेह पर ही आ गई थी, मेरे पास कोई विकल्प नहीं रह गया था। मैंने 'हां' कर दी।

''यदि भाभी जी मान जाएं तो उनको भी लेते आइए, हम उनका भी आधा खर्च दे देंगे।''

''वे तो मनी-मनाई हैं। यात्रा-प्रिय हैं। आ जाएंगी।''

वहां से पत्र आ गया और हम लोग तैयारी में लग गए। संयोग ही था कि उन दिनों मेरा छोटा पुत्र अगस्त्य, सिएटल से घर (दिल्ली) आया हुआ था। मेरी यात्रा की घबराहट को उसने संभाल लिया। वह वीजा के लिए फॉर्म भर देगा। वह मेरी टिकट बुक करा देगा।...

''ट्रिनिडाड जाएंगे और अमरीका नहीं जाएंगे?'' उसने चकित हो कर पूछा, ''अमरीका आएंगे और सिएटल नहीं आएंगे?''

होते-होते बात यहां तक पहुंची कि हम लंदन और न्यूयॉर्क के मार्ग से पोर्ट ऑफ स्पेन जाएंगे, ताकि लौटते हुए न्यूयॉर्क में अपने छोटे भाई और अन्य मित्रों से मिल सकें। न्यूयॉर्क से पंद्रह दिनों के लिए सिएटल जाएंगे। वह स्वतंत्र यात्रा होगी। सिएटल से वापस न्यूयॉर्क और न्यूयॉर्क से लंदन में मधुरिमा की बहन के पास होते हुए दिल्ली लौटेंगे। पहली बार विदेश जा रहा था और उसी में आधे संसार की इतनी भारी यात्रा बन गई थी।...

दिल्ली से पोर्ट ऑफ स्पेन तक पहुंचते-पहुंचते हम दोनों ही ध्वस्त हो चुके थे। और ऊपर से पता लगा कि हमारा सारा सामान भी नहीं पहुंचा है। हम इमिग्रेशन अफसर से सिर मार रहे थे कि प्रेम वहीं आ गया। उसने भारतीय दूतावास वाला अपना पहचान-पत्र उस इमिग्रेशन अधिकारी को दिखाया और सारा दायित्व अपने सिर ले लिया। हवाई अड्डे की सारी औपचारिकताएं पूरी कर, हम बाहर निकले। उसने हमारा सामान अपनी गाड़ी में रखा और मेरी ओर मुड़ा, ''सर, इस अफरातफरी में मैं प्रणाम करना तो भूल ही गया।''

उसने हम दोनों के पांव छुए।

वह किसी होटल या गेस्ट हाउस के स्थान पर हमें अपने घर ले आया था। पता चला कि कन्हैयालाल नंदन

भी उसी के घर पर ठहरे हुए थे और वे स्वस्थ नहीं थे। घर सुंदर और हरा-भरा था। आशा ने बड़ी आत्मीयता से स्वागत किया और अपने स्वभाव के अनुसार सत्कार आरंभ कर दिया। उसने बताया कि प्रेम की नियुक्ति का समय पूरा हो रहा था और वह उसे बढ़वाना नहीं चाहता था। वह दिल्ली लौट जाना चाहता था; किंतु उसकी बहुत इच्छा थी कि उसके यहाँ से जाने से पहले एक बार हम लोग उसके इस घर में उसका आतिथ्य अवश्य स्वीकार करें। कौन पुत्र और शिष्य नहीं चाहता कि उसके माता-पिता और गुरु उसका साम्राज्य न देखें। हम उसका भाव समझ रहे थे और उसे स्वीकार कर रहे थे।

रात को तो हम भोजन कर सो गए; प्रातः पता चला कि वहां तो मेला लगा हुआ था। विश्व के अनेक देशों से लोग आए थे। भारत से भी अनेक लोग पधारे थे; और वे सब प्रेम के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे। ऐसे में वह हमारा सत्कार अपने व्यक्तिगत अतिथियों के रूप में नहीं कर सकता था। हमें अपनी देखभाल स्वयं ही करनी थी। तीन दिन वह आधिकारिक और औपचारिक कामों में व्यस्त रहा। हम भी प्रयत्न करते रहे कि अपना प्यार और महत्व दिखा कर किसी भी प्रकार उसके लिए कोई कठिनाई उत्पन्न न करें। यह उसका मेला था। हम मेले के सामान्य प्रतिभागी बने रहें। हमारा प्रयत्न था कि मेला सफलतापूर्वक पूरा हो। सब लोग प्रसन्न मन रहें और प्रसन्न हो कर ही लौटें।

मेला समाप्त हो गया तब प्रेम ने बताया कि एक दिन हम लोगों को ट्रिनिडाड के कुछ सुंदर स्थल दिखाए जाएंगे और अगले दिन वह हम कुछ लोगों को टोबैगो द्वीप की सैर कराने ले जाएगा। उसका सारा खर्च वह अपनी ओर से कर रहा था। हमने कहा भी कि उसका हमें साथ ले जाना ही काफी है, अपने हिस्से का खर्च हम स्वयं करेंगे, किंतु हम जानते थे कि प्रेम इस प्रकार के प्रस्ताव नहीं मानता।

टोबैगो की वह यात्रा सचमुच जीवन भर स्मरण रह जाने वाली है। छोटी-सी, लगभग आधे घंटे की हवाई यात्रा, फिर एक स्थानीय मित्र के होटल में नहाना-धोना और दोपहर का भोजन और फिर एक मोटर बोट में समुद्र की यात्रा। था तो वह समुद्र ही, किंतु फिर कैसे इतना उथला था कि बीच-बीच में लोग नाव से उतर कर तैरने लगते थे और फिर वह 'नायलन पूल'। उसमें तो हम सब ही पानी में उतर कर रेत पर खड़े थे। जिनको तैरना आता था, वे भी और जिनको तैरना नहीं आता था, वे भी। साफ-स्वच्छ रेत दिखाई पड़ती थी और भी बहुत कुछ ....

यदि प्रेम ने वह सब न दिखाया होता तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि संसार में ऐसा भी कोई स्थान है। मन में एक दंश था तो यह ही कि सारे पैसे प्रेम ने अपनी जेब से खर्च किए थे, और वह हम से कुछ भी नहीं ले रहा था।

प्रेम ने 'हनुमान चालीसा' की ही शैली में एक रचना, 'जहाजी चालीसा' रची थी। उसमें भारतीय प्रवासियों की पीड़ा का चित्रण था। भारत छोड़ कर जहाज में सागर पर तैर कर, एक अपरिचित भूमि के निकट जाते हुए उन लोगों के मन में क्या-क्या भाव रहे होंगे - प्रेम ने उन भावों का चित्रण किया था। पुस्तिका छप चुकी थी और दो-चार दिनों में उसका लोकार्पण होना था।

उस दिन उसने घर पर रवि महाराज को बुला रखा था। रवि महाराज (सत महाराज के ही समान) ट्रिनिडाड के हिंदुओं के धार्मिक-सामाजिक नेता थे। वे भारत में आकर काशी में रह कर संस्कृत तथा हिंदी की शिक्षा ग्रहण कर के लौटे थे। वे हिंदी अच्छी तरह बोल लेते थे। धार्मिक कर्मकांड की भी शिक्षा उन्होंने ली थी। 'जहाजी चालीसा' के लोकार्पण में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने फोन कर एक कन्या को बुला लिया था। उसने शुद्ध उच्चारण में भारतीय संगीत में बांधा गया वह चालीसा गाया। मुझे अच्छा लगा, मैंने उसकी प्रशंसा में दो-एक वाक्य कहे, किंतु उस कन्या ने न तो मेरी ओर देखा और न ही मेरी बात का उत्तर दिया। वह रवि महाराज की ओर देख रही थी।

''यह हिंदी नहीं समझती?'' मैंने पूछा।

''नहीं।''

''तो वह हिंदी की रचना को शुद्ध उच्चारण में गा कैसे लेती है?''

''ओह।'' प्रेम ने कहा, ''आपने ध्यान नहीं दिया कि यहाँ के भारतवंशी, हिंदी फिल्मों के गाने कितने मजे से गाते फिरते हैं, किंतु वे समझते एक शब्द भी नहीं हैं।''

''ओह...''

तो प्रेम के 'जहाजी चालीसा' के लोकार्पण की तैयारी थी; और वह प्रेम के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर था। वह चाहता था कि हम दोनों भी उस अवसर पर उपस्थित रहें।

एक ओर मुझे लगता था कि हमें ऐसे महत्वपूर्ण अवसर के लिए रुकना चाहिए और प्रेम के उस उत्सव का अंग बनना चाहिए, दूसरी ओर लग रहा था कि प्रेम ने हमें निमंत्रित करते समय इस प्रकार का कोई संकेत क्यों नहीं दिया? हमने अपना कार्यक्रम बनाते हुए और टिकट खरीदते हुए, 'जहाजी चालीसा' के लिए कोई अवकाश ही नहीं रखा था। टिकट के हिसाब से हमें अगले ही दिन चल पड़ना था। ... वह टिकट तो शायद बदलवाई जा सकती थी। तिथि आगे बढ़वाई जा सकती थी ... किंतु फिर न्यूयॉर्क से सिएटल की टिकट ... वे पंद्रह दिन, जो अगस्त्य ने हमारे लिए रखे थे। सिएटल से वापसी की टिकट ... न्यूयॉर्क से लंदन की टिकट ... लंदन में रुकने की अवधि। लंदन से दिल्ली की टिकट ... एक बड़ा झमेला हो जाता। भारी मन से यही कहना पड़ा, ''प्रेम, यह संभव नहीं होगा।''

प्रेम को अच्छा तो नहीं लगा होगा। हो सकता है कि उसके मन में कहीं एक शिकायत भी उभरी हो कि हम उसके जीवन के एक महत्वपूर्ण उत्सव के अवसर को अनदेखा कर रहे हैं, पर ऐसी कोई शिकायत उसने कभी की नहीं।

उसने मेरे विषय में जो एक पूरा-अधूरा निबंध लिखा है—''मेरे हिस्से के नरेन्द्र कोहली'', उसमें अनेक शिकायतें उभर कर आई हैं। वे शिकायतें नहीं हैं, मेरे व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए, उसे कुछ आत्मविरोधी तत्व दिखाई दिए हैं। उसी निबंध से मुझे स्मरण हो आता है कि उसका मेरे विषय में एक बहुत पुराना निबंध है, 'खाकी निकर, लाल सलाम'। वह 'बात तो चुभेगी' (संपादक : डॉ. सुरेश कांत, अंशुमान प्रकाशन, मूर्ति भवन, जयपुर।) के अगस्त-सितंबर 1981 ई. के अंक में प्रकाशित हुआ था। तो वह आज से तीस वर्ष पूर्व लिखा गया था। उसे तब भी लगा था और आज भी लगता है कि मेरा झुकाव 'खाकी निकर' की ओर भी है, और मैं 'लाल सलाम' भी करता हूं। अर्थात् मेरा झुकाव भारतीयता की ओर भी है और मैं मार्क्सवाद की चर्चा भी कर लेता हूं। प्रेम के द्वारा किए गए विश्लेषण के पश्चात् मैंने भी अपना जीवित रहते पोस्टमार्टम किया है। मैं किसी राजनीतिक संस्था का तो क्या, किसी साहित्यिक संगठन का भी पूरा सदस्य नहीं बन पाया। मैं आज तक अपनी बुद्धि को छोड़ कर, अन्य किसी भी घोषणा-पत्र पर पूरा ईमान नहीं ला सका। मैंने यह भी नहीं कहा कि मैं किसी की बात इतनी पूर्णता में स्वीकार कर लूंगा कि अपने विवेक के द्वार बंद कर दूंगा। इसलिए न तो पूरी तरह से 'खाकी निकर' हो पाया, न ही मेरा 'लाल सलाम' ही पूरा हुआ। जब प्रेम ने वह निबंध लिखा था तो शायद उसकी भी बुद्धि इतनी परिपक्व नहीं हो पाई थी कि वह समझ सकता कि मुझमें किस प्रकार का सामंजस्य है और मैं कितना-कितना किसका समर्थन करता हूं।

प्रेम को कभी इसमें आत्मविरोध दिखा होगा, किंतु वर्षों के इस साहचर्य, लेखन, अध्ययन और मनन से अब वह मेरी मानसिकता और सोच को समझता है। फिर भी उसकी कठिनाई तो दूर नहीं हो जाती न। उसकी कठिनाई यह है कि उसके आसपास का सारा साहित्यिक जगत् अपने आप को मार्क्सवादी मानता है। मैं जानता हूं कि यह मार्क्सवाद नारा मात्र है। पर वह एक कट्टरवादी बिरादरी तो है ही, जो अपने लेखन में से भारतीय मूल्य-मानकों को ही नहीं, भारतीय हितों को भी बाहर

रखती है। उनके लिए नरेन्द्र कोहली की भारतीयता और हिंदुत्व, अस्पृश्य हैं। ऐसे में यदि प्रेम जनमेजय, नरेन्द्र कोहली के साथ खड़ा होगा तो वे उसको अपनी बिरादरी से बाहर कर देंगे और यह प्रेम ही क्या, कोई भी लेखक सहन नहीं कर सकता। मैं अपने अनेक प्रशंसकों को जानता हूं, जो यह स्वीकार करते हैं कि रहना तो उसी लेखक-बिरादरी में है, जो गलत या सही स्वयं को मार्क्सवादी मानती है, तो उसकी प्रियता-अप्रियता के विरुद्ध वे कैसे जा सकते हैं। यह भी संभव है कि प्रेम के अपने मन में भी भारतीयता के कुछ तत्वों के प्रति परहेज हो। वह स्वयं भी उन्हें ग्रहण न कर पाता हो।

ऐसे में प्रेम, मेरे साथ व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंधों का भी निर्वाह करता है, मेरे साहित्य के पक्ष में लिखना हो, तो वह लिखता भी है; और यदि वह किसी ऐसे आयोजन में है, जहां मेरे विरोधी मंच का अधिग्रहण किए हुए हैं, तो वह मुझे निमंत्रित नहीं करता। हो सकता है कि उसका आरंभ मेरी ओर से ही हुआ हो। मुझे स्मरण है कि उसकी एक महत्वाकांक्षी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उसके लोकार्पण का पूरा प्रबंध कर, वह मुझे निमंत्रित करने आया था। समारोह के अध्यक्ष और पुस्तक के लोकार्पणकर्ता डॉ. नामवर सिंह थे।

मैं हँसा था, ''तुम जानते हो कि इस आयोजन में मैं नहीं आऊंगा।''

उसने सिर झुका लिया। उसका अर्थ था, ''आपकी मर्जी।'' किंतु बोला, ''आप आते तो मुझे अच्छा लगता।''

मैंने कहा, ''मुझे भी वही अच्छा लगता, किंतु चयन तुमने पहले कर लिया है। तुमने निश्चय किया है कि नामवर सिंह तो आएंगे ही, नरेन्द्र कोहली आए या न आए, तो मैं अपना निश्चय सुना रहा हूं कि मैं नहीं आऊंगा।''

मैं उसके उस आयोजन में सम्मिलित नहीं हुआ।

हमारे जीवन में कुछ ऐसे अवसर भी आए हैं, जो हमें कटुता की ओर ले गए; या कहूं कि जिन के कारण मेरे मन में कटुता जन्मी। वे व्यक्तिगत भी हैं और साहित्यिक भी।

प्रेम के साले का संबंध मेरे एक सहयोगी अध्यापक डॉ. सेठी की पुत्री से हमारे माध्यम से हुआ। वैसे तो वे अध्यापक, प्रेम के भी शिक्षक रह चुके थे, फिर भी इस संबंध के केन्द्र में हम या प्रमुखतः मेरी पत्नी मधुरिमा थी। यह संबंध केवल वचन तक ही सीमित नहीं रहा था। सामाजिक धरातल पर बड़ी धूम धाम से उनका ठाका हुआ। लड़का और लड़की सैर-सपाटा करने निकले। लड़के ने लड़की को धूप का एक चश्मा खरीद कर देना चाहा तो लड़की ने बता दिया कि उसे तो पॉवर्ड ग्लास चाहिएं। लड़के ने और पूछताछ की तो लड़की ने यह भी बता दिया कि वह कांटेक्ट लेंस का प्रयोग करती है। ...

यह समाचार तो हमारे लिए भी नया था, पर आपत्तिजनक नहीं था; किंतु लड़के और उसके परिवार वालों को चश्मे वाली लड़की तनिक भी स्वीकार्य नहीं थी। उन्होंने तत्काल निर्णय ले लिया कि उन्हें रिश्ता तोड़ देना है और इसी आशय का एक फोन डॉ. सेठी को कर दिया। बात हम तक आई। प्रेम से संवाद हुआ। उसका कहना था कि यदि लड़के वालों को संबंध स्वीकार्य नहीं था तो वह क्या कर सकता था। हम भी लड़के वालों को संबंध के लिए बाध्य नहीं कर सकते थे, किंतु हमारी आपत्ति दो धरातलों पर थी। पहली तो यही कि संबंध तोड़ने के लिए यह कारण पर्याप्त नहीं था। हम सब ऐनक का प्रयोग करने वाले लोग थे। ऐसे तो हम में से किसी का विवाह ही नहीं होना चाहिए था। दूसरे, यदि संबंध नहीं ही करना था तो संबंध तोड़ने की यह कोई शिष्ट शैली नहीं थी। जैसे संबंध करते समय अनेक लोग आए थे, विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन हुआ था, वैसे ही संबंध तोड़ते हुए भी समाज के कुछ समझदार लोगों को आकर सेठी परिवार से मिलना चाहिए था और ढंग से बात कर संबंध तोड़ना चाहिए था। संबंध करते समय जो भेंट-उपहार लिए गए थे, वे सब वापस करने चाहिए थे। इत्यादि...

प्रेम ने हाथ खड़े कर दिए कि वह कुछ नहीं कर सकता। इधर सेठी साहब हम से अपनी नाराजगी प्रकट कर रहे थे। मेरे मन में काफी कटुता थी। संबंध करते समय उसने भी कहा था कि सेठी साहब की बेटी उसकी बहन के समान थी।

प्रेम को ऐसे गलत व्यवहार के लिए, अपने ससुराल वालों का समर्थन नहीं करना चाहिए था। उसे उनके व्यवहार की भर्त्सना करनी चाहिए थी।... आज सोचता हूं तो लगता है कि संबंध आदर्शों के मार्ग में दीवार होते हैं। प्रेम अपने ससुराल वालों का विरोध करता तो अपनी पत्नी के माता-पिता और भाई का विरोध करता। उसकी पत्नी, सेठी साहब की बेटी के लिए अपने मायके का विरोध क्यों करती? किंतु मैं उस समय मन ही मन प्रेम से बहुत दूर चला गया था।

ऐसा नहीं है कि प्रेम मेरे रोष और अप्रसन्नता को देख न रहा हो या समझ न रहा हो; किंतु वह उस सबको अनदेखा कर मेरे साथ पुराना-सा ही व्यवहार करता रहा, जैसे हम दोनों के मध्य कुछ घटा ही न हो।

समय बीतता गया। सेठी साहब की पुत्री का विवाह अन्यत्र हो गया। वह वहां प्रसन्न है और दो स्वस्थ बच्चों की माँ है। प्रेम के साले का भी विवाह हो गया। वह भी अपनी गृहस्थी में प्रसन्न है। प्रेम का व्यवहार मेरे साथ पहले जैसा ही स्नेहपूर्ण था।

अब मेरी कटुता का कोई अर्थ नहीं था। हमारे संबंध पहले जैसे ही सामान्य हो गए, किंतु मैं आज भी मानता हूं कि यह प्रेम का ही गुण था कि वह मेरी सारी कटुता को पी गया और पूर्णतः संतुलित बना रहा। अन्यथा मैं तो मान ही चुका था कि हमारे संबंधों का अंत आ चुका है। ... ऐसा ही तब हुआ था, जब जोशी दंपती में कलह हुई थी। झगड़ा बढ़ा और पता चला कि जोशी साहब ने पत्नी को पीटा है। मैं चकित था कि ऐसी स्थिति आ जाने पर भी प्रेम का झुकाव जोशी साहब की ओर ही था। वह उनका ही पक्ष ले रहा है। मैं समझ नहीं पा रहा था कि पत्नी को पीटने वाले पुरुष को प्रेम कैसे समर्थन दे रहा था? उसने कई प्रकार से मुझे समझाने का प्रयत्न किया कि दोष श्रीमती जोशी का भी था।

किंतु मेरा मन तो यह मानता था कि कुछ भी हो जाए, पति द्वारा बल-प्रयोग किसी भी रूप में उचित नहीं था। मैं और प्रेम, विरोधी पक्ष लिए खड़े थे। प्रेम के मन में क्या था, मैं नहीं जानता, किंतु मेरा मन प्रेम को भी दोषी मान रहा था; और उसके विरुद्ध रोष पाल रहा था। तब भी वही हुआ। प्रेम मेरी कटुता को सहन करता रहा। न उसने अपना पक्ष बदला, न विचारों में परिवर्तन किया और न ही मेरे प्रति अपने व्यवहार में किसी प्रकार का विरोध आने दिया। जोशी दंपती का झगड़ा बढ़ गया। वे पृथक हो गए। मैं और प्रेम अपने-अपने पक्षों और तर्कों के साथ विरोधी स्थिति में खड़े रहे; किंतु प्रेम ने मेरे प्रति अपनी आत्मीयता में कमी नहीं आने दी। मैं भी कितने दिन ऐंठा रहता। अंततः सब कुछ सामान्य हो गया।

मेरे विषय में प्रेम का पहला निबंध था, 'खाकी निकर लाल सलाम'। उसे मुझमें ये दोनों चीजें आरंभ से ही दिख रही थीं। संभवतः वह संभ्रम की स्थिति में था, कि वस्तुतः वह मुझे क्या समझे और अपने जीवन में कहां रखे। उसके जीवन में मेरा क्या स्थान हो। तब न वह समझता था और न मैं इस बात को जानता था कि जीवन न केवल 'खाकी' हो सकता है, न केवल 'लाल'। जीवन अनेक रंगों का सामंजस्य है। जो यह नहीं मानता और केवल एक रंग का झंडा लहराता है, वह न अपने प्रति ईमानदार है और न समाज के प्रति।

फिर भी प्रेम को आरंभ से ही मुझ में 'लाल सलाम' भी दिखाई पड़ रही थी। अपने देश की राजनीति और साहित्य में हमारा परिवेश अत्यधिक सांप्रदायिक है। एक विशेष संप्रदाय के माफिया-राज ने हमें जकड़ रखा है। यदि उस संप्रदाय की इच्छानुसार नहीं लिखा जाएगा तो तत्काल आपको अस्पृश्य घोषित कर, साहित्यिक-मृत्युदंड दे दिया जाता है।

जैसे-जैसे जीवन आगे बढ़ता गया, मेरी अपनी

समझ में आता गया कि मानवीय समता और मानवीय न्याय में पूरा विश्वास करते हुए भी मैं लाल सलाम को अपने समाज, देश, संस्कृति, अपनी भाषा और अपने धर्म के लिए बहुत अनुकूल नहीं पाता हूं। इसलिए खाकी निकर मैंने चाहे कभी न पहनी हो, (वस्तुतः किसी भी एक पार्टी, दल अथवा संगठन से बंध कर रहना मेरे स्वभाव के अनुकूल नहीं पड़ता। शायद अतिक्रमण ही मेरा स्वभाव है।); किंतु भारतीयता और भारतीय संस्कृति की ओर अधिक से अधिक प्रवृत्त होता गया हूं। परिणामतः 'तथाकथित साहित्यिक समाज' में मेरी अस्पृश्यता गहरी होती गई। मेरे पाठकों की संख्या भी बढ़ी और उनका प्रेम भी। भारत के विश्वविद्यालयों में मेरे साहित्य पर शोध भी पहले से अधिक होने लगा है। प्रकाशकों का आग्रह भी बल पकड़ने लगा है।

एक पाँडुलिपि किसी एक ही प्रकाशक को दी जा सकती है। मैं वही करता हूं; किंतु उसके पश्चात् मीठे ढंग से अन्य प्रकाशकों की शिकायतें आने लगती हैं कि मैंने वह पाँडुलिपि किसी और को क्यों दे दी? उन्हें क्यों नहीं दी?

यह सब होने पर भी 'सांप्रदायिक साहित्यिक समाज' मुझसे तो अपनी दूरी बनाए ही हुए है, जो कोई मेरे साथ खड़ा दिखाई देता है, उसे भी बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। इसलिए मेरे साथ खड़ा होना भी संकट का काम है। उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। मेरे जीवन में अनेक लोग आए हैं, जो व्यक्तिगत रूप से तो मेरे बहुत आत्मीय हैं; किंतु साहित्य के मंच पर सार्वजनिक रूप से वे मेरे साथ दिखाई पड़ना नहीं चाहते। उन्हें भय है कि ऐसा होने पर वे भी सांप्रदायिक साहित्यकारों द्वारा मेरे ही समान अपनी काली सूची में पहुंचा दिए जाएंगे।

प्रेम सबसे अपना संबंध बनाए रखना चाहता है। उसने बनाए भी रखा है। ऐसे में यह आशंका तो रहती ही है कि किसी एक संबंध के कारण शेष संबंधों पर आँच न आए। प्रेम के व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित होने लगे तो मैं देखता रहा कि वे संबंधों और लेखकीय महत्व के नाम पर समर्पित होते थे।

मेरा संबंध सब से पुराना था, किंतु कोई भी व्यंग्य संकलन मुझे अथवा मेरी पत्नी को समर्पित नहीं हुआ। कारण मैं समझता था। मेरे संदर्भ में जितनी भी खाकी निकर उसे दिखाई देती थीं, वह संकट का कारण थीं। मेरे प्रति उसकी आत्मीयता कुछ अन्य लोगों को अखर सकती थी। इसी संदर्भ में मुझे नरेन्द्र मौर्य का स्मरण हो आता है।

वह अपनी मित्र-मंडली के साथ दिल्ली आया था और वे लोग एक साहित्यिक आयोजन कर रहे थे। वह मुझसे मिलने आया, किंतु उसने मुझे उस आयोजन का निमंत्रण-पत्र नहीं दिया। वह अपना रहस्य छिपा भी नहीं पाया, बातों ही बातों में कह गया। आपको निमंत्रित करूंगा तो मंच पर बैठाऊंगा; किंतु मेरे संगी-साथी उसके लिए तैयार नहीं हैं। एक पूरा का पूरा गुट रुष्ट हो जाएगा, इसलिए आपको निमंत्रित ही नहीं कर रहा। आप को बुला कर हॉल में तो नहीं बैठा सकता। उसी दिन बुलाऊंगा, जिस दिन मंच पर बैठा पाऊंगा।

यही संकट प्रेम के साथ भी था। मैं उसकी स्थिति समझता था और नहीं चाहता था कि उसके लिए कोई संकट खड़ा करूं। हां अपने धरातल पर उसे परामर्श अवश्य देता था।

उसने सीता के अपहरण को ले कर एक व्यंग्य नाटक लिखा, जिसमें राम और लक्ष्मण दंडक वन के थाने में अपहरण की प्राथमिकी (एफ.आई.आर.) लिखाने जाते हैं। मैंने उससे कहा था कि व्यंग्य में ही सही, किंतु वह पौराणिक प्रसंगों को इस प्रकार के विवादों में न घसीटे। राम-लक्ष्मण जैसे चरित्रों को थाने में गिड़गिड़ाते और धक्के खाते देख, किसी भी आस्थावान हिंदू को अच्छा नहीं लगेगा। भावनाओं के धरातल पर मैं स्वयं उससे आहत होता हूं, किंतु उसने न मेरा परामर्श माना, न भावनाओं की चिंता की। वह रचना काफी दिनों तक विकसनशील रही। उसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे। उसका मानना है कि वह पर्याप्त लोकप्रिय हुई; और

उसके विरोध में कोई शिकायत उसे नहीं मिली। अनेक नगरों में उसका मंचन हुआ और समाचार-पत्रों में उसकी रपट छपी। रपटें प्रशंसात्मक ही थीं।

और फिर प्रेम ने 'व्यंग्य-यात्रा' का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया। मेरा समर्थन मिलना स्वाभाविक ही था। मैं देख रहा था कि उसमें मेरे पक्ष-विपक्ष के सारे व्यंग्यकार छप रहे थे। निश्चित रूप से वह एक उदार और सफल संपादक सिद्ध हो रहा था। मुझे प्रसन्नता थी कि उसे सब ओर से समर्थन मिल रहा था। ऐसे में यदि व्यक्तिगत रूप से मेरे प्रतिकूल लेखकों, मेरे अकारण विरोधियों को भी उसमें महत्व मिल रहा था, तो मुझे तटस्थ भाव से वह सब स्वीकार करना था। मेरी अपनी सीमाएं हैं।

मैंने कभी नहीं चाहा कि मेरे पुत्र अथवा मेरे शिष्य मेरी उन सीमाओं के बंदी बनें। वे स्वतंत्र रह कर सफल हों, मेरी यही कामना रही है। ... और एक दिन प्रेम ने मुझे सूचित किया कि वह मुझ पर केन्द्रित 'व्यंग्य-यात्रा' का विशेषांक प्रकाशित करना चाहता है।

उसके संदर्भ में सामग्री उपलब्ध करा कर मैं उसकी सहायता करूं। सत्य तो यह है कि मैं इस सूचना से डर गया। क्या वह जानता है कि मुझ पर विशेषांक प्रकाशित कर वह कितने लोगों को रुष्ट कर लेगा? कविता सुरभि ने मेरे साहित्य पर एम. फिल. और पी.एच.डी. कर दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को इतना रुष्ट कर लिया कि उसको न आज तक किसी कॉलेज में नौकरी मिली, न कोई संभावना है।

उसे भी मैंने सचेत किया था, किंतु वह अड़ी रही थी। वह गुरु भक्ति पर शहीद हो जाने की मुद्रा में थी और वह हुई भी।

अब प्रेम का क्षेत्र चाहे कोई और है, किंतु संकट तो वैसा ही है, किंतु प्रेम ने चिंता नहीं की। जैसी-तैसी सामग्री मैं दे सकता था, मैंने दी, शेष उसने स्वयं जुटाई; और अंततः एक वृहदाकार विशेषांक प्रकाशित किया, जिसमें मेरे जीवन और व्यंग्य-लेखन संबंधी सामग्री का भंडार एकत्रित कर दिया। ऐसा विशेषांक उससे पहले मेरे विषय में कभी प्रकाशित नहीं हुआ था। इस प्रकार खुल कर तो वह कभी मेरे साथ खड़ा नहीं हुआ था।

इस संदर्भ में हमने परस्पर कभी कोई चर्चा नहीं की, किंतु मेरे मन में स्पष्ट हो गया कि प्रेम अब कुछ बदल ही नहीं गया है, पर्याप्त प्रौढ़ भी हो गया है। उसने अपने मन के अनेक जाले साफ कर लिए हैं। वह अब मुझे लेकर अपने साहित्यिक विरोधियों से आशंकित नहीं है।

उसके अपने मन में भी मुझे लेकर आशंकाएं नहीं थीं। वह इतना सबल और परिपक्व हो चुका था कि विरोध की गर्म हवा के झोंकों को झेल सके और अपने पुष्ट पगों पर खड़ा होकर कह सके कि—''यह सत्य है।'' ... उसके सहपाठी

और तभी उसने 'गगनांचल' के अगले अंक के लिए मुझसे रचना माँगी। मैंने अपनी रचना तो दी ही, (मार्क्सवादी) रूसी प्रो. यूजीनिया वानिना का मेरे विषय में लिखा हुआ निबंध—''नरेन्द्र कोहली का पौराणिक आधुनिकतावाद।'' भी पढ़ने को दे दिया। प्रेम ने उसे पढ़ा और मुझे सूचित किया कि वह उसे मेरी रचना के साथ ही 'गगनांचल' के अगले अंक में प्रकाशित कर रहा है। भ्रमित पाठकों और आलोचकों को भी सत्य का ज्ञान होना चाहिए।''

मैं क्या कहता, किंतु मेरा मन उस वृद्ध व्यक्ति का-सा अनुभव कर रहा था, जिसका पुत्र युवा और शक्तिशाली हो गया हो। अपने पिता के विषय में अपनी धारणा बना चुका हो और उसके दुर्बल होते हुए शरीर को आश्वासन दे रहा हो कि उसे अपने क्षरण की चिंता नहीं करनी है। उसे ऊर्जा की कभी कमी नहीं रहेगी। मेरे पिता प्रायः कहा करते थे कि वे वृद्ध होकर अपने पाँच पुत्रों के भरोसे पहले से पाँच गुना शक्तिशाली हो गए हैं।

परिस्थितियों और मानवीय विवशता का व्यंग्य

गोपाल चतुर्वेदी

हमारी सदी समाज का मूर्तिभंजक समय है। श्रद्धा विकलांग हो चुकी है और आस्था के राजपथ अविश्वास की पगडंडियों में बदल चुके हैं। कथनी-करनी का भेद, विसंगतियाँ, व्यवस्था से मोहभंग आदि में, थोक में कच्चा माल उपलब्ध हो। हर अखबार में व्यंग्य का कॉलम है और बची-खुची पत्रिकाएँ एक-दो व्यंग्य तो खपाती ही खपाती हैं। भारतीय बाजार में अगर माल चल निकलता है, तो उसमें मिलावट भी लोकप्रियता के अनुपात में बढ़ जाती है। साहित्य में भी यह मिलावट-असूल लागू है। व्यंग्य के साथ भी ऐसा हो रहा है। इस प्रकार के तुरंता व्यंग्य का जन्म समाचार की कतरनों से होता है और बीते हुए कल के अखबार-सा रद्दी बन जाता है। अच्छी कविता, कहानी, उपन्यास की अकाल मृत्यु की ऐसी संभावनाएँ कम हैं। व्यंग्य का जन्म तात्कालिकता से होता है और उसकी सफलता उस शाश्वत बाधा को पार करना है। यही उसकी सबसे बड़ी चुनौती है। विरोधाभास की उस परीक्षा में पास होना कोई आसान नहीं है।

व्यंग्य की एक और आदि दिक्कत है। आजादी के बाद परसाई और जोशी ने व्यंग्य लेखन को जिस साहित्यिक और लोकप्रियता स्तर पर स्थापित किया, व्यंग्यकार उससे आज भी आतंकित है। व्यंग्य के क्षेत्र में परसाई और जोशी का योगदान अविस्मरणीय है। नया रास्ता बनाना कठिन है। जोशी और परसाई ने यही किया। बजाय उस रास्ते पर अपने तरीके से आगे बढ़ने और मुश्किलों से जूझने के कुछ व्यंग्यकारों ने सफलता का आसान फॉर्मूला खोज निकाला। कुछ परसाई स्कूल के छात्र बन गए और कुछ जोशी मठ के अनुयायी। सफलता के शॉर्टकट खोजना हमारी राष्ट्रीय तलाश है। कठिनाई यह है कि साहित्य में नकल कभी असल नहीं बन पाती और उस प्रयास में अपनी रही-सही पहचान भी गँवा देती है, सिर्फ परसाई और जोशी की भाषा-शैली के अनुकरण में न कोई जोशी और परसाई बनता है, न व्यंग्य की परम्परा आगे बढ़ती है।

प्रसन्नता का विषय है कि व्यंग्य के इस संकटकाल में, जबकि व्यंग्यकार ज्यादा हैं और व्यंग्य कम है, प्रेम जनमेजय-जैसे गंभीर और जिम्मेदार लेखक व्यंग्य की परम्परा को सुदृढ़ कर रहे हैं। अच्छा व्यंग्य लेखन एक कठिन कर्म है। व्यंग्य लेखक का काम आँख पर पर्दा बांधे धृतराष्ट्र के संजय की तरह सिर्फ महाभारत का आँखों देखा विवरण ही नहीं सुनाना है, बल्कि उसका दायित्व सच और झूठ, अमलियत और आदर्श, उसूल और फिजूल में फर्क करना भी है। वह संजय की तरह सुरक्षित बैठकर आँखों देखा हाल ही नहीं सुनाता है, बल्कि संवेदना, सिद्धांत और सम्प्रेषण के स्तर पर इस जंग में शरीक भी होता है, हालाँकि व्यंग्य व्यक्तियों की नहीं, विचार और अविचार की लड़ाई है। सच से साक्षात्कार करने वाले के खरोंचें लगना लाजिमी है। व्यंग्यकार की नियति बंदर को आईना दिखाने वाले की है। उसका सही-सलामत रहना एक अजूबा है। शायद इसलिए परसाई की सिफारिश है कि जो लेखक परिवर्तन और विद्रोह की बात करता है और प्रतिष्ठित अन्यायी वर्ग पर प्रहार करता है, उसे गुंडों और दादाओं से दोस्ती रखनी चाहिए। ये वफादार होते हैं और जिसे मानते हैं, उसके लिए जान देते हैं। मैं परसाई जी का सम्मान करता हूँ, पर उनसे असहमत हूँ। साँप शायद सताने पर भी नहीं डसे, नेता तो स्वभाववश डसता है। अब कोई दादा के भरोसे रहा तो उसकी पिटाई निश्चित है। व्यंग्यकार इन हालात में कतई असुरक्षित हैं। यही वजह है कि प्रेम जनमेजय ने राधेलाल को पकड़ा है। वह आम आदमी है। जब भारतीय लड़कियाँ विश्व सुँदरियाँ बनती हैं, तो शामत राधेलाल की आती है। सौंदर्य प्रसाधन की बेटियों की माँग पूरी करे या घर के रसद-पानी की। बेटा सी.डी. लाने

की फरमाइश कर उसे पड़ोसियों के आगे नीचा दिखाता है। वह नक्कारखाने की तूती है। उसके गले में साइलेंसर लगा हुआ है। कभी वह नया-नया थानेदार बनकर ऊपर से होली मनाने के ऑर्डर झेलता है। उसकी चारपाई मानवीय मूल्यों-सी टूटी-फूटी है। उसके चेहरे पर गरीबी की अनेक रेखाएँ हैं, वह मानता है कि आजकल जो जितना बेशर्म है, उतना ही प्रगतिशील और सुखी है। बेशर्म होकर ही व्यक्ति मंत्री, थानेदार और सेंसरबोर्ड का चेयरमैन बनता है। फिल्मी गानों में शर्म कैसी? राधेलाल व्यंग्यकार को प्रेरित करता है कि—''उठ अर्जुन, सत्य, नैतिकता-परोपकार और करुणा के कारण उपजी शर्म का त्याग कर तथा बेशर्मी के बाण चला।''

अपने विशिष्ट अंदाज में प्रेम जनमेजय कभी व्यंग्य के बाण खुद चलाते हैं और कभी राधेलाल। आयातित आधुनिकता की उपभोक्तावादी संस्कृति और मानवीय सरोकारों का संघर्ष, प्रेम के व्यंग्यों की ऊर्वर भूमि है। राधेलाल इस लड़ाई के घायल नायक हैं। प्रेम के व्यंग्य के राधेलाल के प्रभावी माध्यम के अलावा भी और कई उल्लेखनीय पक्ष हैं। वह एक तीर से कई शिकार करते हैं। 'सुँदरता बेचो, सुँदरता खरीदो' जैसा व्यंग्य मानवीय मूल्यों से शुरू होकर, उपभोक्तावाद, आधुनिक शिक्षा, घाटे और उधार पर आधारित अर्थव्यवस्था, आम आदमी के अर्थाभाव जैसी विसंगतियों पर गहरा प्रहार करता है। यह छोटे-छोटे नाविक के तीर पर इतना गंभीर घाव कर जाते हैं कि पाठक तिलमिला उठे।

प्रेम जनमेजय के व्यंग्य का एक और पक्ष रेखांकित करना चाहूँगा। यह उनके व्यंग्य लेखों की विट है। बुढ़ापे के प्रेम को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं, ''उन्नीस की उम्र में दिल में दर्द हो, तो उसे इश्क कहते हैं और पचास की उम्र में दिल में दर्द उठे, तो उसे हार्ट अटैक कहते हैं।'' एक और स्थल पर लेखक का कथन है कि पैंतालिस का होकर व्यक्ति धोबी का कुत्ता हो जाता है या फिर दो-मुँहे साँप के बारे में सब जानते हैं कि बेचारा साँप होकर भी साँप नहीं होता।'' पूरा संग्रह इस तरह के वाक्यों से भरा पड़ा है।

मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता, विसंगतियों की गहरी पकड़ और सशक्त अभिव्यक्ति एक अच्छे व्यंग्यकार की पहचान हैं। प्रेम के पास एक व्यापक जीवन दृष्टि है, जो राधेलाल के दर्द को समझती है और प्राँजल भाषा में उसे पाठक के पास लाती है। राधेलाल प्रेम के सृजन का एक बेहतरीन नमूना है और उसके व्यंग्य की सफलता का सबसे सशक्त उदाहरण। कभी-कभी तो मेरा मन होता है कि प्रेम जनमेजय से पूछ ही लिया जाए कि, ''प्रेम जी, राधेलाल कहाँ हैं!'' मुझे यकीन है उनके कई पाठक ऐसा सोचते होंगे। राधेलाल की सबसे बड़ी ताकत यह है कि उसे कोई भी नहीं मार सकता। नेता भी नहीं। उसे किसी दादा या गुँडे के सरंक्षण की जरूरत नहीं है। हाँ, यह दीगर बात है कि राधेलाल के सृजनकर्ता को शायद ऐसी जरूरत पड़ सकती है, पर अपने बचाव के लिए उनके पास राधेलाल का कवच है।

विसंगतियों का स्वाभाविक व्यंग्यकार : प्रेम जनमेजय

तरसेम गुजराल

प्रेम जनमेजय को हम हिंदी साहित्य जगत के व्यंग्य के बड़े पक्षधर्मियों के बीच पाते हैं। एक ऐसे रचनाकार के रूप में उनकी शिनाख्त बड़ी आसान है, क्योंकि वह सोच और व्यवहार में जितने सरल और सादा नजर आते हैं व्यंग्य की रचनात्मकता में उतने ही गहरे, सजग और सृजनात्मक। उनमें सांस्कृतिक व्यक्तित्व के निर्माण की एक छटपटाहट है। एक ऐसा आत्मबोध जो जीवन की सतही व्याख्या में नहीं रमता। विद्रोह के धरातल को छूते हुए जीवन संघर्ष या आत्म संघर्ष का हिस्सा बन जाता है। सामाजिक विसंगतियों की तीखी आलोचना करते हुए वह मनुष्य मनुष्यता की लयबद्धता को खण्डित करने वाले, तोड़ने वाले पाखंड पर जबरदस्त प्रहार कर जाते हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने बड़ी सहजता से कहा—कोई विधा किसी रचना को श्रेष्ठ नहीं बनाती है। और लेखक की भूमिका के सवाल पर कहा कि चिंतन और कर्म का समन्वय बहुत कम देखने को मिलता है। अधिकांश भूमिकाएं एकांगी होती हैं। बहुत कम चिंतक होते हैं, जो अपने विचारों को कर्मरूप में परिणित कर सकते हैं। मेरा प्रयत्न रहता है कि जिन मानवीय जीवन मूल्यों में मैं विश्वास करता हूं, उनको अपने जीवन में भी धारण कर सकूं। (51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं/ डायमण्ड) मार्क्सवादियों का मत है कि केवल मनुष्य का सामाजिक व्यवहार ही बाह्य जगत के द्वारे में मानव ज्ञान की सच्चाई की कसौटी है। वास्तव में मानव ज्ञान को सिर्फ तभी सिद्ध किया जाता है जब सामाजिक व्यवहार (भौतिक उत्पादन, वर्ग-संघर्ष या वैज्ञानिक प्रयोग) की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य प्रत्याशित परिणाम प्राप्त कर लेता है। माओ व्यवहार के बारे में सुनिश्चित होते हुए लेनिन की उस बात को जरूर सामने रखते हैं—व्यवहार (सैद्धांतिक) ज्ञान से बढ़कर है, क्योंकि उसमें न सिर्फ सार्वभौमिकता का गुण होता है, बल्कि प्रत्यक्ष वास्तविकता का गुण भी होता है (माओत्सेतु की संकलित रचनाएं/ग्रंथ/पृ.531)।

'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना' का संपादन करते हुए उन्होंने 'इक श्मशान बने न्यारा' व्यंग्य रचना चुनी। इसको चुने जाने का आधार था—'आपकी जिस संतान की जितनी उपेक्षा हो वह उतनी ही आपको अच्छी लगती है। अच्छी रचनाएं, (भी) क्यों उपेक्षित रह जाती हैं? इसके जवाब बीज रूप में आत्ममुग्धता, सांस्कृतिक प्रदूषण / विचलन तथा उपनिवेशवाद की जबरदस्त साजिशों की अनके पर्तों में बीजों की तरह पड़े हुए हैं। इस व्यंग्य रचना की शुरुआत प्रेम जनमेजय कुछ इस तरह करते हैं—

'बढ़ते बाजारवाद, उपभोक्तावाद और बहुगुणीय निगमवाद के कारण हमारे पारिवारिक एवं मानवीय संबंध स्वच्छंद विवादों में पड़ गए हैं। पैसे के बल पर सब कुछ संभव हो गया है। अचानक दूसरों का कबाड़ हमारी सुँदरता और हमारी सुँदरता दूसरों का कबाड़ बन रही है।

धन के बल पर आप किसी भी राष्ट्र को श्मशान में बदलने और अपने श्मशान को माल की तरह चमकाकर बेचने की ताकत रखते हो। आपके द्वारा बेचा गया जहर भी लाख विरोधों के बावजूद बिक सकता है और विरोध के स्वर खरीद लिए जाते हैं।'

(मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना) संपादक प्रेम जनमेजय/पृ. सं.176

जब-जब वियतनाम युद्ध की बात होती है, तो हर कोई कहता है कि अमरीका बिना मतलब ही इस युद्ध में कूद गया था। उसने हिंद-चीन के तीनों देशों—वियतनाम, लोंजिस और कंबोडिया की एक-एक इंच जमीन पर बम गिराकर तबाह कर दिया। अफगानिस्तान से अभी फौज की वापसी नहीं हुई और आए दिन अमरीकी जवानों की मौत ताबूत में बंद कर वापिस भेजी जा रही है। सो यह किसी भी राष्ट्र का श्मशान में बदलने का

पूंजीवादी/साम्राज्यवादी तरीका हमारे सामने है। दूसरी तरफ भूमि के दलाल भूमाफिया के रूप में बर्बर होते हुए श्मशान के आसपास की पूरी जमीन हड़पने/बेचने को तैयार हैं। सिद्धहस्ता के साथ व्यंग्य-बाण चलाते हुए लिखते हैं—जैसे कभी-कभी न्यायालय में भी न्याय मिल जाता है, जैसे प्रौढ़ा होती लड़की को वर मिल जाता है, जैसे बिना रिश्वत दिए कभी-कभी ईमानदार का काम बन जाता है, जैसे कभी-कभी गरीब का नसीब जाग जाता है, वैसे ही श्रीमान श्मशान भी ताजमहल हो जाता है, समय के गाल पर आँसू बन चमकता है।

(वही, पृ.सं. 178)

इसी लेख में उन्होंने दर्ज किया है—आज ये न सोचें कि हमारे श्मशान का सौंदर्यकरण बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्यार, मानवता और सेवा भावना का परिणाम है। सेवा भावना और प्यार के लिए तो हमारे समाज में अनेक जिंदा इंसान तरस रहे हैं।

इतिहास के पन्ने उतारें तो समझ आता है कि जर्मनी की हिटलरकालीन विज्ञान की प्रगति का मकसद क्या था? विज्ञान का मकसद हिटलरिया तूफान को रास्ता देना, हिटलर के लिए रास्ता बनाना था। आज का सौंदर्यकरण, टैक्नोलॉजिकल इंकलाब या मानवता आर्थिक उपनिवेशवाद के हथियार ही हैं। शिक्षा प्रणाली में, राजनीतिक आजादी/गुलामी में समाज के कंधों पर बोझ के रूप में या सांस्कृतिक मूल्यों में जहरीले हथियार की तरह घुसते हुए प्रेम जनमेजय भारत के वर्तमान और भविष्य के मूल्यों से खिलवाड़ करते दुष्कर आयोजनों पर पैनी नजर रखते हैं और जगह-जगह इनका उद्घाटन करते हैं।

बाजार के प्रभाव से शिक्षा की सूरत और सीरत बदल चुकी है। आविष्कार की धुन का निरंतर पीछा करने वाले वैज्ञानिकों को लोगों ने अदा सनकी अथवा पागल का नाम दिया था। जितेन्द्र भाटिया का मानना है कि, 'आज इस स्थिति में आमूल परिवर्तन आ चुका है, पिछले जमाने के 'जीनियस' और अक्सर सनकी या भुलक्कड़ वैज्ञानिक का स्थान अब एक दक्ष, कम्प्यूटर प्रभाव एवं सिद्धहस्त वैज्ञानिक कार्यकर्ता ने ले लिया है। यानी देखते ही देखते क्लासिकी वैज्ञानिक की उस पवित्र आत्मा, उसकी उस सनकी किस्म को रचनाशीलता की जगह अब हर तरफ कम्प्यूटरों और उपकरणों पर आश्रित एक चमकदार, भव्य यांत्रिकता दिखाई देने लगती है और यह परिवर्तन इतना गहरा है कि हमें उस वैज्ञानिक का नाम तक बदलकर उसे वैज्ञानिक कार्यकर्ता नाम से पुकारना पड़ता रहा है।' (सदी के प्रश्न/जितेन्द्र भाटिया) वह इस नाम परिवर्तन में महज शब्दावली की नफासत नहीं, बल्कि वैज्ञानिक कार्य की सत्ता के वैज्ञानिक हाथ से निकलकर बड़ी पूँजी के मालिकों के पास चले जाने की प्रक्रिया का द्योतक मान रहे हैं।

इस बात को प्रेम जनमेजय के व्यंग्य 'राम, पढ़ मत, मत पढ़' के माध्यम से देख सकते हैं। राधेलाल, सरकार के विश्वास पर मुग्ध है कि शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। इससे उनको (राधेलाल को) आस है कि जिस देश में भ्रष्टाचार, बेईमानी, महँगाई और अन्याय के अवसर बढ़ रहे हैं, वहां शायद रोजगार के भी अवसर बढ़ जाएं। इन्हीं राधेलाल की सैद्धांतिक समझ है कि—

अच्छे स्कूल का मतलब अच्छी पढ़ाई नहीं, उसका अच्छा दिखना जरूरी है, अच्छी-अच्छी मैडमें हों, अच्छी-अच्छी स्कूल बसें हों तो स्कूल अच्छा दिखता ही है और जितना अच्छा स्कूल होता है, उतनी अच्छी डोनेशन देनी पड़ती है।

(51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं)

एक प्रश्न के उत्तर में प्रेम जनमेजय ने कहा—अब का समय विसंगतियों से भरा हुआ है, चकाचौंध में सामाजिक सरोकार तथा मानवीय मूल्य धुँधलाते जा रहे हैं। अस्मिता पर लुके-छिपे हमले हो रहे हैं। सब ईमानदार मस्तिष्क पर निरंतर अपने प्रभाव छोड़ते रहते हैं। आपका अवचेतन कभी सोता नहीं, यह दीगर बात है कि कुछ महानुभाव उसके जागरण को महत्व ही नहीं देते हैं।

(51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं) राधेलाल, नरेटर को समझा रहा है—'मुझे तो सरस्वती का शाप है कि तू जिंदगी भर सोचता ही रहे।' कबीर हकीकत जान गए थे—'सुखिया सब संसार है खावे और सोवे। दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।'

प्रेम जनमेजय, हरिशंकर परसाई को बहुत सम्मान देते हैं। उन्होंने कहा—'असल में आजादी के बाद से मूल्यों में लगातार गिरावट आती गई है। मूल्य पद्धति बहुत बदल गई है। इस मूल्य पद्धति के केंद्र से मनुष्यता हार रही है।' अध्यापकों के बारे में कहा कि लोग अभी भी अध्यापकों से उच्चतर नैतिक मूल्यों की अपेक्षा करते हैं। (कहते हैं) सरस्वती के पवित्र मंदिर में तो ऐसा अनैतिक कृत्य नहीं होना चाहिए। तो अनैतिक कृत्य कहां शोभा देते हैं? हमने क्या मान लिया कि इन-इन जगहों में अनैतिक कृत्य होंगे, भ्रष्टाचार होगा? (हम इक उम्र से वाकिफ हैं, पृ.सं. 30)

'आत्मा महाठगिनी हम जानी' व्यंग्य रचना में प्रेम जनमेजय ने आत्मा से संबोधित होकर दर्ज किया—'हे आत्मा! मैं तुझे प्रणाम करता हूं, क्योंकि तू है भी और नहीं भी है। इस संसार में जो होते हुए भी नहीं होता और नहीं होते हुए भी होता है, वही वंदनीय एवं पूज्य है। तेरे साथ ही मैं बनारस के उन ठगों को प्रणाम करता हूं जो जैसे हैं, वैसे नहीं हैं, वैसे हैं तो जैसे नहीं हैं। इसके पश्चात मैं राजनेता, पुलिस, उद्योगपति, नौकरशाही, पंडित, मुल्ला और पादरी आदि को प्रणाम करता हूँ, जहां तू अपने स्वर्ग गुणों के साथ विद्यमान है।'

(51 श्रेष्ठ व्यंग्य, पृ.सं. 56)

व्यंग्य रचना का ऐसा प्रवाह, ऐसी धार और इसके पीछे मानवीय संवेदना का गहरा स्पर्श प्रेम जनमेजय को अनायास ही हिन्दुस्तान में और बाहर हिंदी का बड़ा व्यंग्यकार घोषित कर देते हैं और उन्हें हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल-जैसे बड़े व्यंग्य लेखकों के पास खड़ा करते हैं।

इसी व्यंग्य रचना में वे कहते हैं—'हे आत्मा! तुझे तलवार काट नहीं सकती, परंतु तू काला कोट पहनकर न्याय का गला काट सकती है। तुझे अग्नि जला नहीं सकती, परंतु तू धर्म की दंगई चादर पहनकर सब कुछ स्वाहा कर सकती है। तुझे पवन उड़ा नहीं सकती, परंतु तू निर्धनों के झोंपड़े उड़ा सकती है। जैसे हम नित्य-प्रति कपड़े बदलते हैं वैसे ही तू शरीर बदलती है। कभी तू शासक दल का नेता बन जाती है, कभी विपक्ष का, कभी तू हिस्ट्रीशीटर बन जाती है, तो कभी मुख्यमंत्री।'

(वही, पृ. 57)

ऐसा पैनापन, ऐसी सौद्देश्यता, ऐसी गुणवत्ता जल्दी कहीं उपलब्ध नहीं होती। उनका अनुभव अमीर नजर आता है, अध्ययन गहरा है और दृष्टि साफ है; इसके साथ शक्तिशाली है उनकी प्रहारक क्षमता, जिसे शंकर पुणतांबेकर-जैसे व्यंग्यकार विसंगतियों की वैद्धपूर्ण तीखी अभिव्यक्ति मानते हैं। 'युग की विसंगतियां हमारे चारों ओर से यथार्थ जगत से, वैदग्ध इन विसंगतियों को वहन करने वाले शैली-सौष्ठव से और तीखापन विसंगति एवं वैदग्ध की चेतना पर पड़ने वाले मिले-जुले प्रभाव से संबंधित है।' (व्यंग्य यात्रा, पृ. 23-24)

शिक्षा-जगत, साहित्य और संस्कृति उनके मनपसंद विषय हैं। 'चारा और बेचारा' व्यंग्य रचना में वे कहते हैं—अक्सर देश का भविष्य बनाने और संवारने वालों का अपना भविष्य बिगड़ैल ही होता है। अब माली को ही देख लें, पौंछे वह लगाता है, उन्हें सजाता-संवारता वह है, पर उसके फल का आनंद उठाता है उसे बेचने की तरकीब जानने वाला। मास्टर लोग भी इसी श्रेणी में आते हैं। वर्षों से, कछुए की तरह अपरिवर्तनशील इन बेचारे मास्टर लोगों की ब्लैकबोर्ड, चॉक, डस्टर आदि की दुनिया जस-की-तस है। वही क्लासरूम, वही शरारत करते, इज्जत उछालते विद्यार्थी हैं और वह ही किताबें हैं। इन सबके चेहरे बदलते रहते हैं, पर ढर्रा वही रहता है।'

(51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ. 46)

क्योंकि हम अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष को पूर्ण परिणाम तक नहीं ले जा पाए था, ले जा पाने

में पूरी तरह असफल रहे हैं, इसलिए शिक्षा का ढाँचा उसी अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अपरिवर्तित हिस्सा बना रहा। शिक्षाशास्त्री पॉलो फ्रेश ने कहा कि सच्ची उदारता का उपयोग शोषण करने वाले कारणों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। मिथ्या दानशीलता, दबे-कुचले और डरे हुए लोगों को, 'जिंदगी से खारिज' लोगों को अपने काँपते हुए हाथ फैलाने के लिए मजबूर करती है। फ्रेश आधुनिक दुनिया की विभीषिका को विषमता के परिणामस्वरूप देखते रहे। (उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र अनु.–रमेश उपाध्याय) हरिशंकर परसाई ने कहा कि अगर कोई यह भ्रम पाले है कि ये आचार्यगण प्रकाश देते हैं, हमें पिछलेपन से खींचकर बाहर निकालते हैं, आधुनिक बनाते हैं और वैज्ञानिक दृष्टि देते हैं, तो इस भ्रम को निकाल दें। 'एक अनार के कई बीमार' व्यंग्य रचना में सत्य की हालत देखें–'राधेलाल ने सच ही कहा, 'आजकल सत्य भाड़ में ही रहता और सच कहने वाले भाड़ झोंकते हैं, सत्य के पास आजकल न तो न्यायालय में रहने के लिए जगह है और न संसद में। लोगों के दिल ईर्ष्या, द्वेष और आकांक्षाओं से भरे हुए हैं, बेचारा रहे तो रहे कहां? 'शर्म मुझको मगर क्यों आती' में खुला बाजार है, खुली अर्थव्यवस्था है। जो जितना बेशर्म है उतना ही अधिक प्रगतिशील और सुखी है।

एक अन्य रचना में गांधी जी की बकरी टू-इन-वन हो गई है। बकरी बनकर दूध देने का नाटक कर रही है तथा दीमक बनकर देश को चाट रही है और भेड़िया बनकर खून पी रही है। 'प्रवासी से प्रेम' में गोष्ठी में इसलिए जा रहे हैं, क्योंकि गोष्ठी के बाद कॉकटेल भी है। खण्ड-खण्ड रूप से उनकी अनेक व्यंग्य रचनाओं में सांस्कृतिक विघटन के अनेक रूप झलक दिखलाते हैं जिनसे कुल मिलाकर संस्कृति पर निरंतर हुए पश्चिमवादी प्रहार सामने आते हैं। गुलामी, राजतंत्र, उपनिवेशवाद और प्रजातंत्र के वर्तमान रूप में सांस्कृतिक संकट घटाटोप रूप में रहे हैं और मनुष्य ने मनुष्यता को बचाने के लिए जो संघर्ष किए हैं, वे सांस्कृतिक संकट से जूझने और मुक्ति के रास्ते तलाशने के लिए ही किए हैं। प्रेम जनमेजय के सांस्कृतिक संकट को लेकर फिक्रमंद होने की वजह मनुष्य की चेतना जागरूकता के प्रति चिंता ही है; कहीं यह चिंता वहां जाकर जुड़ती है जिसे बोर्ड कहते हैं कि प्रबुद्ध वर्ग सांस्कृतिक पूंजी को बढ़ाने में निरंतर क्रियाशील है, क्योंकि वह जानता है कि अंततोगत्वा इसे मुनाफे में बदला जा सकता है। एक अलग ढंग से इन रचनाओं में जड़ता से उबरने की अकुलाहट नजर आती है। प्रेम जनमेजय बाजारवादी शक्तियों की नृशंसता, बर्बरता और आतंक से बखूबी परिचित हैं। एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि पूरी व्यवस्था ही ऐसी है कि जिसमें बिकने की इच्छा नहीं, बिकने की ताकत नहीं, वह हाशिए पर ही खड़ा है। यदि आपमें बेचने का माद्दा है तो राजनीति ही क्या, अन्य चीजों को भी नैतिकता का बुर्का ओढ़कर बेच सकते हैं। आपने देखा है कि किस कौशल से आपके ढंग की गरीबी को बेचकर लोग करोड़पति हो गए।

'व्यंग्य यात्रा' में प्रेम जनमेजय ने कुछ सवाल उठाए हैं। इन सवालों में अलग तरीके से व्यंग्य की सार्थकता छुपी है। क्या सभी व्यंग्य के सौंदर्यशास्त्र अथवा इसकी टेक्नोलॉजी से इतने अनजान हैं? क्या समग्र हिंदी व्यंग्य साहित्य का दर्पण स्थायी रूप से राजनीतिक छुटभैयों की ठिठौलियों और औरतों की दिशा में टिका रहता है? क्या व्यंग्य केवल नेगेटिव सोच ही पैदा करता है?.... क्या सभी व्यंग्यकार गहरे में नहीं उतरते हैं और समस्त कथाकार, नाटककार और कवि गहरे में ही उतरे पाए जाते हैं? क्या परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहर श्याम जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी, विष्णु नागर आदि (आदि की सूची काफी लंबी है) जैसे व्यंग्य लेखक सतही हैं? व्यंग्य रचना, व्यंग्य रचनाओं के संपादन, व्यंग्य संबंधी अवधारणा के लिए प्रेम जनमेजय के काम की किसी तरह भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह साफ दिल इंसान हैं। एक साफ दिल इंसान बुनियादी सरोकारों को बखूबी समझता है और दृष्टि खुली रख सकता है।

समय के अंतर्विरोधों को व्यक्त करते व्यंग्य

प्रेम विज

प्रेम जनमेजय जी से मेरा व्यक्तिगत और साहित्यिक परिचय पुराना है। मैं उन्हें तब से जानता था, जब वे मुझे नहीं जानते थे। व्यंग्य के प्रतिष्ठित साहित्यकारों—इन्द्रनाथ मदान और संसार चन्द जी से मेरी मुलाकातें होती रहती थीं। वे अक्सर प्रेम जी का जिक्र करते थे। इसके पश्चात् इनसे व्यक्तिगत परिचय भी हो गया। उन पर साहित्य पढ़कर तो व्यंग्य को और भी अच्छे से जानने का मौका मिला। डॉ. मदान ने व्यंग्य की परिभाषा बहुत ही अच्छे ढंग से देते हुए कहा था कि व्यंग्यकार चपत तो अपने मुँह पर मारता है, लेकिन उसके निशान दूसरे के चेहरे पर दिखाई देते हैं। प्रेम जनमेजय जी ने भी व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहा कि व्यंग्य व्यक्ति पर नहीं प्रवृत्ति पर होना चाहिए।

भरतमुनि ने साहित्य में जिन आठ रसों को स्वीकार किया है। उनमें हास्य एक प्रमुख रस है। वस्तुतः हमारे यहां हास्य जीने की एक विशिष्ट पद्धति रही है, तभी तो संस्कृत के नाटकों में विषय का होना अनिवार्य था। अंग्रेजी में शेक्सपीयर के कालजयी नाटकों की भी लगभग यही स्थिति है। अकबर के नवरत्नों में बीरबल का होना इस अवधारणा को पुष्ट करता है। हास्य और व्यंग्य में बहुत सूक्ष्म अंतर है। हास्य यहां गुदगुदाता है। व्यंग्य हमें सोचने के लिए मजबूर करता है। व्यंग्यकार की भूमिका इसलिए कठिन है, क्योंकि उसे स्वयं पर हँस कर दूसरों को हँसाना होता है। व्यंग्य ने हमेशा युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित किया है। बिहारी के एक स्तरीय व्यंग्य दोहे ने राजा जयसिंह का कैसे कायाकल्प कर दिया, यह रहस्य किसी से छिपा नहीं है।

पंजाब में डॉ. इन्द्रनाथ मदान, संसार चन्द, डॉ. चन्द्रशेखर, सुरेश सेठ, मदन गुप्ता सणटु, गुरमीत बेदी और इन पंक्तियों के लेखक की भी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पंजाब की संस्कृति में भी व्यंग्य के दर्शन हो जाते हैं। माँ का अपनी पुत्री से व्यवहार कुछ और होता है और बहू से बिल्कुल अलग तरह का होता है। इसीलिए कहा गया है कि—कहना धी नूं सुनाना नूंह नूं।

'सींगवाले गधे' व्यंग्य-संग्रह में कुल 40 लेख हैं। इन लेखों में घर, परिवार, समाज और व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रखर प्रहार है। पाठक इन्हें पढ़ पहले मुस्कुराता है फिर गंभीर होकर सोचने लगता है।

'वसंत चुनाव लड़ रहा है' में राजनीति और चुनाव की असंगतियों को उजागर किया गया है। लेखक ने राधेलाल के माध्यम से बताया कि नेता के लिए शिक्षित होना अनिवार्य नहीं। अलबत्ता चालाक और चुस्त होना जरूरी है। व्यंग्यकार लिखता है जैसे भारत माँ के अनेक लाल हैं, राधेलाल के भी अनेक लाल हैं, जैसे भारत माँ अपने कुछ लालों के कारण निरंतर शर्मिंदा होती रहती है, उसी तरह राधेलाल भी अपने इस लाल के कारण शर्मिंदा रहते हैं। अपने इस लाल के कारण वे बरसों से परेशान हैं। उनका यह लाल उम्र की सीढ़ियाँ तो हर बरस चढ़ रहा था, पर शिक्षा की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ पा रहा था।

'बधाई पद्मश्री तो आ गई है' लेकिन; लेख में परसाई जी को पद्मश्री मिलने पर हास्य और व्यंग्य दोनों का मिश्रण है। लेखक लिखता है परसाई जी को पद्मश्री मिली है वे सौभाग्य से अभी तक कुँवारे हैं।

'बुरा न मानो साहित्यिक छापे हैं'—लेख में यहां आयकर विभाग द्वारा लोगों को परेशान करने के लिए छापे पर व्यंग्य मिलता है। वहीं लेखक पर मारा गया छापा विनोद व्यक्त करता है। व्यंग्यकार लिखता है—बड़े अधिकारी ने अट्टहास किया, जैसे रामलीला में रावण करता है या लोकतंत्र लीला में हाईकमान करता है—छापा लेखकों के यहां? तुम मुझे मूत में मछलियाँ पकड़ने की

सलाह दे रहे हो।

'ओ बे मास्टरजी' लेख में झूठे वायदों और मुक्त की राजनीति पर व्यंग्य किया गया है। व्यंग्यकार बहुत ही प्रभावी कटाक्ष करता है। 'वस्त्रों की राजनीति' लेख में प्रेम जी ने राजनीति और नेताओं द्वारा गिरगिट की तरह पार्टी बदलने की पोल खोली है। नेता जी द्वारा रंग बदलने और वस्त्र परिवर्तित होने का लेखक विनोदमय ढंग से वर्णन करते लिखते हैं—मैं उनके पास पहुंचा तो क्षणभर के लिए चकित रह गया, उन्हें पहचान नहीं सका। वे नेकर पहने पीटी की मुद्रा में नौसिखिए से इधर-उधर हाथ-पैर मार रहे थे, जैसे थाने में पहला बयान देने वाला हकलाता है, पहला भ्रष्टाचार करने वाले के हाथ काँपते हैं और बाजार में पहली बार बैठने वाली कामिनी सकुचाती है। इसके पश्चात वस्त्रों की तरह पार्टी बदलने वाले नेता का बयान सुनाएँ—चौ. साहब पिछली बार भी तो आपने पहनी थी नेकर जल्दी उतार दी। भाई जनता की सेवा के लिए काम करना पड़ता हो तो वर्तमान में जीना पड़ता है। अब कल क्या किया था इसे सच्चे नेता को भूल जाना चाहिए।

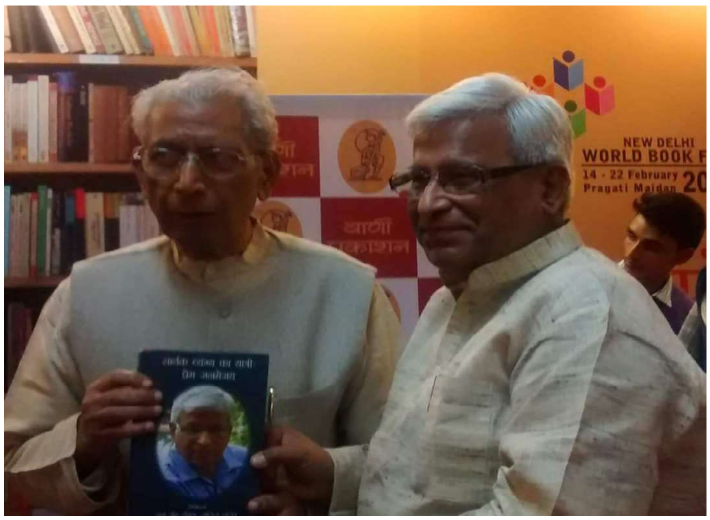

'इश्क नहीं आसां' में नाम के अनुरूप इश्क व प्यार का उल्लेख है। यह एक गुदगुदाता और पुलिस की भ्रष्टाचार की पोल खोलता व्यंग्य है। इसमें प्यार को पुलिस के अत्याचार का सामना होते फिर छोड़ने के लिए भाव-मोल करते दिखाया गया है। पुलिस की फीस का जिक्र देखिए—अबे हम इंस्पेक्टर नहीं हैं, साधारण पुलिस वाले हैं। हमें मक्खन मत लगा। जानता है कि थाने में इंस्पेक्टर का सेवा शुल्क है, सस्ते में वो हम ही निबटा सकते हैं। 'बूढ़ा ठग' एक प्रयोगधर्मी लेख है। इसमें इंसान का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते व्यंग्य किया गया है-इंसान वास्तविकता जानते हुए भी कई रूपों से जनता को ठगता है। इस संदर्भ में यह पंक्तियां देखिए—राधेलाल विरोधाभास है। वह साकार बूढ़ा है। वह निराकार बूढ़ा भी है। वह दोधारी तलवार है। वह जनता है, पर देशसेवक भी है। चुनाव जीतते समय उसे दिल जीतना होता है, इसलिए 'बेचारा' हो जाता है।

'सींग वाले गधे' लेख के नाम पर ही पुस्तक का नामकरण हुआ है। इसलिए यह महत्वपूर्ण व रोचक लेख है। सींग वाले गधे की परिभाषा देते हुए प्रेम जी कहते हैं—जो किसी का काम बना भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। यह दुधारू किस्म के सींग वाले गधे होते हैं, जब ये किसी वजह से शक्तिहीन या पॉवरलेस हो जाते हैं तब इनके सींग गायब हो जाते हैं।

भाषा सहज होते हुए भी भावों को प्रभाव देने वाली है। व्यंग्य विषयों और शैली के आधार पर भी बहुत महत्वपूर्ण है। समय के अंतर्विरोधों को बहुत सशक्त ढंग से प्रहार करते व्यंग्य लेख हैं। मनुष्य की अमानवीय प्रवृत्ति, छल, दम्भ, अत्याचार-अनाचार पर भी कटाक्ष है। व्यंग्य विधा में यह पुस्तक मील का पत्थर साबित होगी।

‘व्यंग्य यात्रा’ आरम्भ से अब तक

प्रेम जनमेजय

‘व्यंग्य यात्रा’ का आयोजन क्यों? आपका सवाल बहुत ही निष्कपट है, हुजूर! हुजूर-दरबार में निवेदन है कि हमारा ऐसा कोई दावा नहीं कि व्यंग्य किसी बहुत बड़े गड्ढे की ओर जा रहा है और उसे गिरने से बचाने के लिए हम आ गए हैं या फिर जब-जब व्यंग्य-साहित्य की हानि होगी, ‘व्यंग्य यात्रा’ जैसी कोई चीज अवतरित होगी और साहित्य में रामराज्य आ जाएगा। अँगुली पकड़ के लिखाने का जमाना न कभी था और न होगा। हाँ, प्रजातांत्रिक तथा मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध हम, इतना मानते हैं कि समाज की बेहतरी के लिए, अपनी-अपनी दृष्टि से सभी को कुछ न कुछ कहने की स्वतंत्रता है और सन्तों के पास अधिकार है कि सार ग्रहण कर थोथे को जहाँ चाहे उड़ा दें। ये दीगर बात है कि आप जैसे संतों का थोथा कुछ के लिए सार हो। इसलिए हे सन्तों, हमारा विनम्र निवेदन है कि न तो आप हमारे ऊपर अपनी दृष्टि लादने का सत्कर्म करें और न हमारी दृष्टि को अपने ऊपर लदने दें। कर सकें तो आप हमें अपना कायल कर लें या फिर हम आपको अपना कायल कर लें। आपकी दृष्टि का हम सम्मान करते हैं, पर आप हमें धृतराष्ट्र न समझें। साहित्य में विचारों के आदान-प्रदान की यही तो भूमिका है।

संतों, यह आयोजन इसलिए भी नहीं है कि साहित्य के दंगल में उतरने के लिए कोई लंगोट कस लिया गया है और मूँछों पर ताव देकर ललकारा जा रहा है कि मैदान में आए माँ का वह लाल जो व्यंग्य की सत्ता को नकारता है। यह अक्सर देखा गया है कि किसी भी रंग और किसी भी कम्पनी के लंगोट हों, कभी न कभी उतरते ही हैं। अपना कोई अखाड़ा भी नहीं बनाया जा रहा है कि साहित्य के कुम्भ में हम भी मुद्‍गर घुमाते नजर आ जाएँ और कोई मीडियाकर्मी हमारी फोटो उतार ले। मौका मिले तो जुगाड़ भिड़ाकर, अपने अखाड़े के मरगिल्ले पहलवान को सोने का तमगा पहनवा दिया जाए। अपने ही अखाड़े के लोग एक-दूसरे के साथ दो-दो हाथ करते रहें और अपने ही ‘वाह-वाह!’ का समूहगान गाते रहें। एक ही कविता को दस बार सुनने के बाद ऐसे ‘वाह-वाह’ करना जैसे पहली बार सुनी हो, जैसी प्रतिभाओं को आजकल भारतभूमि खूब पैदा कर रही है। अपने अखाड़े के पन्द्रह-बीस लोगों में कुछ लफ्फाजियों के द्वारा पुस्तक-वन्दना का जुगाड़ जमाकर अपने परम अखाड़ियों द्वारा पत्र-पत्रिकाओं में ढोल बजवा लेना ही तो सच्ची साहित्य-सेवा है। आजकल अनेक अखाड़े हैं और उनके अपने-अपने प्रभु हैं। ये प्रभु पुरस्कार, पद, सम्मान आदि के वरदानों से सदा भक्तों को प्रसन्न रखते हैं और भक्त लोग भी आरती की थाली सजाए गुणों का गुणगान कर प्रभुओं को प्रसन्न रखते हैं। वैसे गुणी प्रभु केवल गुणगान से प्रसन्न नहीं होते हैं, उन्हें मंगल, शनि या किसी भी उपयुक्त शाम चढ़ावा चाहिए होता है। आप चढ़ावा चढ़ाते जाते हैं, वे वरदान थमाते जाते हैं। ‘व्यंग्य-यात्रा’ को न तो किसी आरती की थाली की आवश्यकता है और न ही आप इससे किसी वरदान की अपेक्षा रखें।

मेरे कुछ शुभचिन्तक मन ही मन अपने सवालों के इन निष्कर्षों से भी प्रसन्न हो सकते हैं कि मुझे जो लिखना था लिख चुका। साहित्य में चुक गया हूँ। अब कुछ लिखने को नहीं, तो सम्पादक ही बन बैठो। उनकी सोच बेदाग है। मैं 1999 की जनवरी में वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी पढ़ाने चला गया था। वहाँ जाने के अनेक व्यक्तिगत लाभ हुए। पहली बार हिन्दी ने डॉलर दिलवाए। पहली बार विदेश यात्रा की और विदेश का भूत सिर से उतरा, पर उसका नशा नसों को भिगोने लगा। बहुत कुछ दूर से देखने और

उनके लिए ललचाने वाली चीजों के करीब हुआ, पर साहित्य से दूर भी हुआ। मेरे अनेक सहयात्री प्रसन्न हुए, वैसे ही व्यंग्य-लेखन के मैदान में चुनौतियाँ बहुत कम हैं, जो थोड़ी-बहुत थीं वे विदेश भ्रमण को चल दीं। चार साल बाद लौटा तो एक अजीब-से नशे के साथ। आते ही रवीन्द्र कालिया की 'गालिब छुटी शराब' पढ़ने को मिली। जाना कि नशा चाहे शराब का हो या विदेश का, उसे छोड़ने के लिए अपने से बहुत संघर्ष करना पड़ता है। जाना कि कैसे जहाज का पंछी फिरी-फिरी जहाज पर आता है और मन को अनंत सुख नहीं मिलता। बहुत कुछ और लिखा, व्यंग्य न के बराबर लिखा।

पर 'व्यंग्य यात्रा' के प्रकाशन का यह तुच्छ कारण नहीं है। 'व्यंग्य यात्रा' एक सामूहिक सोच का परिणाम है। यह व्यंग्य की स्थिति पर पुनर्विचार की प्रक्रिया का हिस्सा है। यह साहित्य के प्रति गम्भीर सोच वाले अनेक मनीषियों की चिन्ता का परिणाम है, जिसका मैं अनायास माध्यम बन गया हूँ।

हमारे अग्रज रचनाकारों—हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी और श्रीलाल शुक्ल ने अपने बाद की पीढ़ी को ठोस रचनात्मक आधार दिया। धर्मयुग के 'बैठे ठाले', साप्ताहिक हिन्दुस्तान के 'ताल बेताल', अनेक व्यावसायिक तथा गैर-व्यावसायिक पत्रिकाओं के व्यंग्य विशेषांकों तथा लगभग सभी हिन्दी समाचार-पत्रों में व्यंग्य के स्तम्भों ने व्यंग्य को एक लोकप्रिय विधा बना दिया। हास्य-व्यंग्य लिखना फैशन में आ गया। साहित्य में जमने का एक बढ़िया शॉर्टकट हो गया। जिस मंच पर दिनकर, भवानीप्रसाद मिश्र, बच्चन, रमानाथ अवस्थी आदि के गीत गूँजते थे, उसे धीरे-धीरे तथाकथित हास्य-व्यंग्य की लोकप्रियता ने हथिया लिया, परन्तु व्यंग्य की यह लोकप्रियता ही उसके अवमूल्यन का कारण भी बन रही है। जिस रचना का उत्पादन होने लगता है उसकी गुणवत्ता में भी कमी आ ही जाती है। व्यंग्य-लेखन की शुरुआत व्यंग्य को एक सार्थक हथियार के दिशापूर्ण आक्रमण के रूप में हुई थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक ऐसी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक-धार्मिक आदि विसंगतियाँ थीं जिनके कारण सजग साहित्यकार के विचार-तन्तुओं पर दबाव पड़ा। एक पीड़ा ने उसके अन्दर जन्म लिया। देश के प्रति उसकी निष्ठा ने उसको विवश किया कि वह इन विसंगतियों के विरुद्ध अपने आक्रोश को अभिव्यक्त करे। व्यंग्य करना व्यंग्यकार की आवश्यकता बन गया। आज भी अनेक लोगों के लिए व्यंग्य-लेखन, तथाकथित हास्य-व्यंग्य लेखन की विवशता ही है। हुजूर, क्या करें हास्य-व्यंग्य बिकता जो है। हुजूर, क्या करें अखबार के सम्पादक कॉलम लिखने की फरमाइश लेकर पहुंच जाते हैं। हुजूर, क्या करें प्रकाशक भी हास्य-व्यंग्य की कितबवा बिना लिए-दिए छाप देता है। अब कोई कविता की पुस्तक ऐसे छपवाकर दिखाइए। ऐसे कई हुजूर स्वयं को परसाई, जोशी, श्रीलाल शुक्ल और त्यागी की कार्बन कॉपी माने, गर्विणी नायिका-से इठलाए हास्य-व्यंग्य के प्रांगण को सुशोभित कर रहे हैं।

अपने समकालीन व्यंग्य के सहयात्रियों तथा अग्रजों के साथ निरन्तर, व्यंग्य में आई अराजकता पर चिन्ताएँ व्यक्त होती रहीं। सम्भवतः 1986 में जलगाँव में व्यंग्य पर बातचीत का एक सिलसिला आरम्भ हुआ था जो जबलपुर, रायपुर, लखनऊ, भोपाल, दिल्ली, उदयपुर, खंडवा, हरदा, जमशेदपुर आदि में विकसित हुआ। रामावतार चेतन मंच पर हास्य-व्यंग्य की गम्भीरता को लेकर यदि मुम्बई में चिन्तित थे, तो ठाकुरप्रसाद सिंह लखनऊ में। माध्यम संस्थान के माध्यम से प्रतिवर्ष गद्य-पद्य व्यंग्य के क्षेत्र में एक अग्रज और एक युवा रचनाकार को सम्मानित करने का जो सिलसिला सन् 1990 में आरम्भ हुआ उसे आज भी अनूप श्रीवास्तव ने जीवित रखा हुआ है। इस आयोजन का महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है हास्य-व्यंग्य से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर बातचीत। पर ये चर्चाएँ 'जंगल में मोर नाचा' जैसी हो जाती हैं। मोर जी अपनी अदाओं पर इतराते रहते हैं और अनेक सूरदास 'कहाँ है मोर की गुहार लगाए' रहते हैं।

व्यंग्य की गम्भीर पत्रिका निकालने के अनेक सफल

प्रयास हो रहे हैं तथा हो चुके हैं और उन्होंने एक माहौल भी बनाया, पर व्यंग्य पर विधिवत चर्चा का वातावरण नहीं बन पाया। 'अतिमर्श', 'सार्थक', 'गगनांचल' आदि पत्रिकाओं से मेरा आन्तरिक जुड़ाव, सम्पादन के लिए मेरे लालची स्वभाव के कारण रहा है। व्यंग्य के गंभीर सहयात्रियों की कोंच और सम्पादन के लिए मेरे लालची स्वभाव का सम्भवतः परिणाम 'व्यंग्य यात्रा' है। मन बहुत समय से कर रहा था, पर जब आसपास से भी दबाव पड़ा तो ये जानने के लिए कि इन दबावों में कितना सत्य है, मैंने 25 दिसम्बर, 2003 को अपने तीन सौ से अधिक रचनाकार बन्धुओं को निम्नलिखित प्रपत्र लिखा—

''एक और वर्ष अतीत के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है तथा एक और वर्ष भविष्य की बुनाई में व्यस्त है। इधर हम भी कुछ नया बुन रहे हैं।

जैसी अराजक स्थिति राजनीति, साहित्य की राजनीति या न्याय की राजनीति में है, कुछ वैसी ही अराजक स्थिति हिन्दी-व्यंग्य में भी है। व्यंग्य-लेखन की शुरुआत में, व्यंग्य का प्रयोग विसंगतियों पर आक्रमण के लिए एक सार्थक हथियार के रूप में किया गया। व्यंग्य लिखना एक विवशता थी। विवशता आज भी है। तथाकथित हास्य-व्यंग्य लेखन के शॉर्टकट से साहित्य में प्रवेश की विवशता। जीजा-साली, पत्नीवाद आदि पर टिके मंचीय चुटकुलाधर्मियों एवं अखबारी कॉलमी टिप्पणीकारों द्वारा स्वयं को हास्य-व्यंग्यकार कहलाने की बालहठी विवशता।

व्यंग्य न तो शूद्र-विधा है जिसे ब्राह्मणों की कृपा चाहिए और न ही ब्राह्मण-विधा है जिसे शूद्रों-सा आरक्षण चाहिए। यह तो एक सहज साहित्यिक विधा है जिसे सार्थक दिशा चाहिए।

इस दिशा में आपके सहयोग, शुभकामनाओं और शुभाशीष के विश्वास के संग 'व्यंग्य यात्रा' के रूप में, व्यंग्य की धरोहर की रक्षा के लिए कदम उठा रहा हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि आप पत्रिका के समस्त पक्षों को सुदृढ़ करने में अपना सार्थक एवं रचनात्मक सहयोग देंगे।''

इस प्रपत्र के उत्तर में देश-विदेश से, आशा से अधिक सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ, पत्रिका तत्काल आरम्भ करने के अनुरोध तथा सहयोग के आत्मीय सन्देश आए। यदि सबके सन्देश, आशीर्वचन, शुभकामनाएँ लिखने लगूँ तो पूरा अंक इसे ही समर्पित करना होगा। 'व्यंग्य यात्रा' के सहयात्रियों के विश्वास का सम्बल पाकर ही मैंने पीर, बावर्ची, भिश्ती आदि बन पत्रिका निकालने का निश्चय लिया। लघु पत्रिका निकालने को कुछ विद्वान 'आ बैल मुझे मार' कहकर व्याख्यायित करते हैं। सन्त लोग प्रश्न कर सकते हैं—इतनी प्रसव पीड़ा झेलकर शहीदी मुद्रा धारण करने की क्या आवश्यकता है? पर हे सन्तों, ये वह खुजली है जो बार-बार होती है और किसी भी इचगार्ड से नहीं जाती है। घर फूँक तमाशा देखने का तय कर मैंने छः माह बाद दूसरा प्रपत्र लिखा।

''मैंने दुष्यन्त के स्वर में स्वर मिलाया और आज से छः माह पूर्व, नये साल की शुरुआत में, 'एक पत्थर तबीयत से उछाला यारो!' इस पत्थर ने कुछ को घायल किया, कुछ ने इसे बहुत खूबसूरती से लपक लिया, कुछ झुके और अपने को साफ-साफ बचाकर लाभान्वित दिशाओं में देखने लगे, कुछ के सीनों पर यह साँप-सा लोट गया, कुछ अपने चेहरों से इसके निशान मिटाने लगे और कुछ प्रतीक्षा करने लगे कि यह पत्थर मेरे चेहरे और दिल को कब और कितना घायल करता है। यह आप जैसे अधिकांश शुभचिन्तकों की रचनात्मक प्रतिक्रियाओं का ही फल है कि आज मैं गम्भीर एवं सार्थक व्यंग्य के चिन्तकों के साथ पुनः संवाद कर रहा हूँ। देश-विदेश से मिले पत्रों ने मुझे विश्वास दिलाया कि 'व्यंग्य यात्रा' सार्थक दिशा में उठाया गया आवश्यक कदम है, जिसके साथ अनेक कदम मिलकर एक रचनात्मक सामूहिक लय प्रदान करेंगे।

शुभचिन्तकों ने मेरे रचनात्मक सहयोग ही नहीं, सार्थक सहयोग के अर्थ को भी ग्रहण किया और आर्थिक सहयोग के रूप में पत्रिका के वार्षिक, संरक्षक और आजीवन शुल्क को तत्काल भेजने का प्रस्ताव एवं जिज्ञासा रखी। मैं शुभचिन्तकों के इस सौहार्द का सम्मान

करता हूँ। मित्रों, अभी मुझे ही पत्रिका का जीवन पता नहीं तो उसके आजीवन शुल्क का क्या निवेदन करूँ! फिलहाल आपके सहयोग से, पत्रिका के व्यंग्य के मनोविज्ञान, नेपथ्य, समाजशास्त्र, आलोचना आदि से जुड़े मुद्दों पर, प्रयोगात्मक, पाँच अंक निकालने का विचार है। एक अंक का मूल्य 20 रुपये तथा पाँच अंकों का सौ रुपये होगा। इसे जीवन देने के लिए आपके और अधिक मूल्यवान सहयोग, विज्ञापन आदि का हम स्वागत ही करेंगे। सहयोग राशि 'व्यंग्य यात्रा' के नाम से भेजने का कष्ट करें। अधिकांश लघु-पत्रिकाएँ सबके परिश्रम का मूल्य चुकाती ही हैं, कुछ सम्पादकों की तो यह आजीविका बन चुकी हैं, पर अपनी लघुता के 'आरक्षण' में 'बेचारे' लेखक को पत्रम-पुष्पम् तक से वंचित रखती हैं। अपनी तमाम आर्थिक सीमाओं के बावजूद 'व्यंग्य यात्रा' लेखकीय पारिश्रमिक के लिए वचनबद्ध है। प्रवेशांक व्यंग्य-मनोविज्ञान से जुड़े मुद्दों पर केन्द्रित होगा।

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, मेरी कोशिश है कि ये तस्वीर बदलनी चाहिए। आपके सार्थक एवं रचनात्मक सहयोग की प्रतीक्षा में।''

पत्रिका का स्वरूप मेरे अवचेतन में और बहुत कुछ चेतन में था ही। बस काम शुरू कर दिया। आप सबकी शुभकामनाओं और अपेक्षित सहयोग का परिणाम है 'व्यंग्य-यात्रा' का यह प्रवेशांक। प्रयत्न था कि हरिशंकर परसाई के जन्मदिन 22 अगस्त को पत्रिका निकाल दूँ, पर, लघु पत्रिकाओं के साथ अनेक पर लगे होते हैं, इस कारण इनको वे पर नहीं मिल पाते जो इनकी उड़ान को पराश्रित होने से बचा पाएँ। आज की अस्त-व्यस्त दुनिया में अक्सर जन्मदिन अपनी सुविधा और समय के अनुसार ही मनाए जाते हैं। जन्म का दिन किसी और दिन मनाया जाता है। हम अस्त नहीं, व्यस्त तो हैं ही। वैसे भी व्यस्तता बड़े आदमियों का गहना है। यह महानता का सूचक है। बड़े लोग कुछ हों न हों पर व्यस्त अवश्य होते हैं। तो इस व्यस्तता का चोला धारण कर हम भी बड़े आदमी का स्वांग धारण क्यों न कर लें!

जब कोई पीर, बावर्ची, भिश्ती आदि बनने का दुस्साहस करता है, तो अनेक खामियों को भुगतता है। 'व्यंग्य यात्रा' में अनेक खामियाँ हो सकती हैं। उन्हें कुछ हम जानते हैं और बहुत कुछ आप जानते हैं। आप ढूँढ़कर बताएँ, हमारा मार्गदर्शन होगा।

'व्यंग्य यात्रा' व्यंग्य की त्रयी हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और रवीन्द्रनाथ त्यागी की पुण्य स्मृति को नमन करते हुए आरम्भ हो रही है। आशा है यह आपकी सहयात्री बनेगी और इसे आपका स्नेह, आशीष और शुभकामनाएँ मिलेंगी।

व्यंग्य पुरोधा प्रेम जनमेजय : हर कदम नया सिखाने वाले

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

प्रेम जनमेजय एक ऐसा नाम जो हृदय शब्दकोश में व्यंग्य का पर्याय बन गया है। अब जबकि वे अपने जीवन के अमृतकाल में पहुँच चुके हैं तो उनके बारे में लिखना मतलब पर्वत को दर्पण में कैद करने का तुच्छ प्रयास ही कहलाएगा। मेरे लिए तो वे श्रीराम जैसे हैं। उन्होंने मानो मुझ पर अपनी अंगुलियाँ फेर दीं और मैं व्यंग्य की नन्हीं गिलहरी बनकर इधर-उधर फुदक रहा हूँ।

मैं प्रेम जी को उनके व्यंग्य साहित्य की शिल्पगत

विविधता के लिए हृदय की गहराई से अभिवादन करता हूँ। जीवन के अमृतकाल पर पहुँच चुके उनके लिए उन्हीं की शिल्पगत विविधता की माला बनाकर उन्हें सजाना, निहारना और पूजना चाहता हूँ। उन्होंने व्यंग्य की प्रचलित शैली का तो सफलता के साथ प्रयोग किया ही है, साथ ही उन्होंने अनेक नवीन शैलियों को भी अन्वेषित किया है। वे वरिष्ठ व्यंग्यकारों के व्यंग्य साहित्य का अध्ययन करते हुए, उनसे प्रभावित होकर व्यंग्य-लेखन में प्रवृत्त तो हुए, परंतु उन्होंने कभी उनकी नकल करने का प्रयास नहीं किया, वरन् व्यंग्य की अपनी एक स्वतंत्र शैली का विकास किया। उनकी लेखन शैली की इस विशेषता की ओर संकेत करते हुए डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने लिखा है कि -''जब प्रेम ने लिखना शुरू किया तब हिंदी में व्यंग्य-लेखन के तीन स्कूल चल रहे थे जो आज भी चल रहे हैं। परसाई स्कूल, शरद जोशी स्कूल और त्यागी स्कूल। हर स्कूल की अपनी पद्धति, सिलेबस और कैरिकुलम है। प्रायः नए लेखक इनमें से किसी की नकल करने का प्रयास करते हैं और अंततः कहीं के नहीं रह पाते। ऐसे वातावरण में प्रेम ने अपनी 'शैली' विकसित की।''

प्रेम जनमेजय जी नवीन शिल्प के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। उनके व्यंग्य साहित्य की शिल्पगत विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए रमेश सोबती ने लिखा है कि–''डॉ. प्रेम जनमेजय किसी भी साधारण-सी घटना या समस्याओं पर आधारित कुरीतियों, विसंगतियों को व्यंग्य के स्तर पर नियोजित करने की कला में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने अपनी व्यंग्य रचनाओं में व्यंग्य के संप्रेषण के लिए यथोचित भाषिक उपकरणों तथा विविध शैलीपरक शिल्प-रूपों का प्रयोग कर विधा के मुख्य उद्देश्यों को सकारात्मक दृष्टिकोण एवं रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है।''अपने व्यंग्य साहित्य को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रेम जनमेजय जी ने परंपरागत शिल्प-विधानों के साथ-साथ जिन विविध नवीन शैलियों

का प्रयोग किया है, उनका विश्लेषण करना नितांत आवश्यक है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में 'मिथक' शब्द का प्रयोग चल पड़ा। मिथक देवताओं अथवा अति-प्राकृत पात्रों के चरित्र और क्रिया-कलापों की कल्पित कथाएँ हैं, जिनकी घटनाएँ और परिस्थितियाँ प्रायः अति-प्राकृत होती हैं। मिथक का संबंध परंपरा से होता है, इसलिए यहाँ वास्तविकता नहीं विश्वास होता है। धर्म के क्षेत्र में इन्हें 'पुराण' कहा जाता है। 'पुराण' कई मिथकों या पुराकथाओं का समष्टि रूप है। हिंदी में 'मिथक' के लिए पुराख्यान, पुराकथा, कल्पकथा इत्यादि शब्दों का प्रयोग प्रचलित है। डॉ. कमल किशोर गोयनका 'मिथक' की जगह 'पुराकथा' शब्द के प्रयोग के पक्षधर हैं। उन्होंने लिखा है कि– ''अंग्रेजी के मिथक शब्द का अर्थ हिंदी में पुराण कथा एवं काल्पनिक कथा से लिया जाता है, परन्तु मुझे इसके लिए 'पुराकथा' शब्द अधिक उचित प्रतीत होता है। 'पुराकथा' में सभी प्रकार की धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, पौराणिक कथाएँ सम्मिलित हो जाती हैं। अतः 'मिथक' शब्द के लिए 'पुराकथा' शब्द सबसे उपयुक्त है।''

रमेश सोबती 'मिथक' शब्द की उत्पत्ति का स्रोत संस्कृत को और इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता हजारी प्रसाद द्विवेदी को मानते हैं। 'मिथ' शब्द की उत्पत्ति का स्रोत संस्कृत के 'मिथ' और लैटिन के 'माइथोस' हैं। संस्कृत में इसके निकटवर्ती दो शब्द हैं मिथस् या मिथ, जिसका अर्थ 'परस्पर' तथा 'मिथ्य' जो असत्य का वाचक है। मिथक और मिथस के परस्पर संबंध को 'सत्य' और 'कल्पना' अथवा 'ऐकात्म्य' कहा जाता है। 'मिथक' शब्द आधुनिक काल की देन है और इसके निर्माता आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं।

संस्कृत के मिथ शब्द के साथ कर्तावाचक 'क' प्रत्यय जोड़कर मिथक शब्द की रचना की गई है।

सुरेन्द्र वर्मा का मानना है कि मिथक के प्रयोग द्वारा लेखक अपने समय की विसंगतियों को नवीन रूप में व्याख्यायित करता है–''हिंदी साहित्य में मिथकों का प्रयोग कई तरह से हुआ है।

लेखकों ने मिथकों के आलोक में अपने वर्तमान समय को समझने की कोशिश की है और उन्हें नए मूल्यों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। मिथक एक देशकाल में उत्पन्न होकर भी उससे प्रतिबंधित नहीं होता। मिथक में चिरंतन तत्वों (मूल्यों) का समावेश होने के कारण उनमें प्रत्येक युग के अनुरूप सामग्री मिल जाती है। पुराकथाओं पर आधारित जो काव्य और उपन्यास रचे जाते रहे हैं वे केवल पुराकथाओं का आख्यान ही नहीं करते, बल्कि अपने समय और उसकी विसंगतियों को मिथकों के माध्यम से व्याख्यायित भी करते चलते हैं।''

आधुनिक समाज की विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए व्यंग्यकारों ने मिथक का सहारा लिया।

व्यंग्य में मिथक के प्रयोग की आवश्यकता पर अपना विचार व्यक्त करते हुए रमेश सोबती ने लिखा है कि–व्यंग्य लेखकों ने अपनी रचनाओं में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं साहित्यिक जगत के विविधात्मक मिथकीय चरित्रों और घटनाओं का विनियोग व्यंग्य-सौंदर्य की अभिवृद्धि हेतु किया है।

व्यंग्य शास्त्र के रूप में मिथकीय प्रयोग कारगर हथियार के रूप में सिद्ध हुआ है। इनके प्रयोगों से अप्रस्तुत योजनागत वाणी-विधान-जन्य नवीन अर्थगर्भित सौंदर्य की सहज सृष्टि तो हो पाई है, साथ ही आधुनिक विसंगतियाँ प्रहारात्मक रूप से उद्घाटित हो सकी हैं।

हिंदी के व्यंग्य साहित्य में मिथक के प्रयोग के दो रूप मिलते हैं; एक तो उपमा, रूपक या प्रतीक के रूप में और दूसरा, सम्पूर्ण रचना को मिथकीय बनाने के उपक्रम के रूप में। व्यंग्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए हरिशंकर परसाई ने पौराणिक मिथक का सार्थक प्रयोग किया है।

व्यंग्य को 'गंभीर' मानने वाले जनमेजय

एम.ए.समीर

साहित्य में 'व्यंग्य' यूँ तो हमेशा से ही मौजूद रहा है, लेकिन इस विधा को पहचान बहुत बाद में मिली। हिंदी साहित्य में व्यंग्य विधा की शुरुआत अमर साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग से मानी जाती है, लेकिन इसे मुकम्मल 'विधा' के तौर पर प्रतिष्ठित किया यशस्वी व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी ने। इस परंपरा को जीवित रखने वाले और इसे अपनी कलम की धार से तराशने वाले महान व्यंग्यकारों में से एक प्रेम जनमेजय हैं। व्यंग्य विधा को पूरी तरह से समर्पित व्यंग्यकार जनमेजय जी का जन्म 18 मार्च, 1949 को इलाहाबाद में हुआ था। व्यंग्य विधा को न केवल संवर्धित करने, बल्कि सृजन की दृष्टि से भी जनमेजय जी का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने व्यंग्य को हमेशा एक गंभीर कर्म माना है और गंभीर कर्म हो भी क्यों न?

शिक्षा को लेकर तीखा व्यंग्य : सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य परिस्थितियों पर गहन सोच-विचार कर ही व्यंग्य-रचना को वजूद बख्शा जाता है। 'शिक्षा' को लेकर उन्होंने जो तीखा व्यंग्य किया है, वह वाकई किसी भी व्यक्ति को सोचने पर मजबूर कर देता है। अपनी महत्त्वपूर्ण रचना–'राम! पढ़ मत, मत पढ़' में वे लिखते हैं, ''आजकल सरकार भी शिक्षा पर बहुत बल दे रही है। शिक्षा को चुस्त-दुरुस्त किया जा रहा है। चुस्त-दुरुस्त शिक्षा के अनेक लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ यह है कि ऐसी शिक्षा को आसानी से बेचा और मुश्किल से खरीदा जा सकता है। बाजारवाद के युग में ऐसी शिक्षा मूल्यवान हो जाती है और शिक्षा का व्यवसाय करने वाले बहुमूल्य। यही कारण है कि आजकल व्यवसायी व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दे रहे हैं। सरकार का भी विश्वास है कि शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे।'' व्यंग्य-रचना कोई आसान काम नहीं है, जितना यह अपने नाम से प्रतीत होता है। यह सिर्फ किसी विषय पर हँसी-मजाक करना नहीं है, बल्कि उस विषय के बारे में गंभीर रूप से चिंतन-मनन करते हुए अपने विचार इस प्रकार से प्रस्तुत करना होता है कि उसके बारे में लोगों की आँखें खुल जाएं। असल में व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य-रचनाओं के माध्यम से आँखें खोलने का ही काम करता है।

'ये पीड़ित जनम जनम के' : जनमेजय की एक महत्त्वपूर्ण हास्य-व्यंग्य रचना है 'ये पीड़ित जनम जनम के'। इसमें रेल को केंद्र बनाकर उन्होंने जबरदस्त ढंग से व्यंग्य को उभारने का प्रयास किया है। इसे उनकी ही रचना के एक अंश से इस प्रकार समझा जा सकता है–''भारतीय रेलों से मुझे प्यार है। गाय और गंगा की तरह रेलों को हमें माता मानना चाहिए। वे भी दिन-रात जनसेवा में जुटी रहती हैं। 90 करोड़ संतानों को अविचलित भाव से ढोती हैं। संतानें डिब्बों में यों खचाखच भरी होती हैं, ज्यों दड़बे में चूजे। खिड़कियों में यों लटकी रहती हैं, जैसे पेड़ पर चमगादड़ें। फुटबोर्डों पर यों खड़ी रहती हैं, जैसे पतले तार पर नट। कुछ संतानों को छत पर बैठना अच्छा लगता है। वे छत पर ऐसे बैठी रहती हैं, जैसे सर्कस के कलाकार झूले पर। दरअसल हमारे इस गणतंत्र में डिब्बे के अंदर हवा का संकट हमेशा बना रहता है। यात्री को गंतव्य तक बिना हवा के काम चलाना पड़ता है। यह एक कठिन योग साधना है। छत मुसाफिरों को इस तपस्या से बचाती है। दूसरी बात यह है कि टीटी चाहकर भी ऊपर नहीं पहुँच सकता। इससे भ्रष्टाचार की एक नई शाखा नहीं फूटने पाती। कुछ संतानें अत्यंत रोमांचप्रिय होती हैं। उन्हें दुर्गम स्थानों पर अतिक्रमण में आनंद आता है। वे बोगियों के बीच लगे बंपरों पर ही कब्जा कर लेती हैं। संभवतः वे रेल और घुड़सवारी दोनों का मजा एक साथ उठाना चाहती हैं।''

पहला संग्रह–'राजधानी में गंवार' : जनमेजय जी आधुनिक

हिंदी व्यंग्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका पहला संग्रह 'राजधानी में गंवार' 1978 में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद तो उन्होंने अनेक ऐसी व्यंग्य-रचनाएँ रचीं, जो मील का पत्थर बन गई हैंः चाहे वह 'अंधेरे के पक्ष में उजाला' हो या फिर 'आँधियों का मौसम' या फिर 'तुम ऐसे क्यों आई लक्ष्मी'। उनकी रचनाओं में व्यंग्य का पुट बेइंतिहा तौर पर बिखरा हुआ है। समकालीन साहित्यकार दिविक रमेश ने प्रेम जनमेजय को अपनी पीढ़ी का श्रेष्ठ व्यंग्यकार कहा है। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि जनमेजय जी ने व्यंग्य को एक गंभीर कर्म के रूप में अपनाया और इस विधा को न केवल सीमित होने से बचाया, बल्कि इसकी रोचकता को और इसकी लय को परवान भी चढ़ाया। व्यंग्य-लेखन के प्रति गंभीरता को उनके ही शब्दों में इस प्रकार समझा जा सकता है—''मेरा मानना है कि व्यंग्य-लेखन अन्य विधाओं से भिन्न प्रक्रिया की माँग करता है। व्यंग्य आपको बेचैन अधिक करता है। अधिकांशतः सामयिक घटनाएँ प्रेरक बिंदु होने के कारण व्यंग्य-रचना अन्य विधाओं की अपेक्षा अपने जन्म के लिए अधिक जल्दी में होती है। मैंने अन्य विधाओं में भी लिखा है और मेरा यह अनुभव है। व्यंग्य-लेखन की प्रक्रिया में मैंने अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक बेचैनी का अनुभव किया है। इस बेचैनी को जब तक मैं कागज पर उतार नहीं लेता हूँ, चैन नहीं आता है।'' व्यंग्य के प्रति गंभीर एवं सृजनात्मक चिंतन के चलते उन्होंने 2004 में व्यंग्य को समर्पित पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का प्रकाशन भी आरंभ किया। इस पत्रिका ने व्यंग्य-विमर्श का मंच तैयार किया। विद्वानों ने इसे हिंदी व्यंग्य साहित्य में 'राग दरबारी' के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना माना है। इस पत्रिका को आधुनिक साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। 'तुम ऐसे क्यों आई लक्ष्मी' में तो जनमेजय का व्यंग्य और भी अधिक निखरकर सामने आया है। इस व्यंग्य-रचना में व्यंग्य का वह स्रोत फूटा है कि पाठक इससे बंध जाता है और उसके मुँह से अनायास ही प्रशंसनीय शब्द फूट पड़ते हैं। प्रस्तुत है इससे एक अंश—''लोग दीपावली पर लक्ष्मी-पूजन करते हैं, मेरा सारे वर्ष चलता है। फिर भी लक्ष्मी मुझ पर कृपा नहीं करती। मैं लक्ष्मी-वंदना करता हूँ—हे भ्रष्टाचार प्रेरणी, हे कालाधनवासिनी, हे वैमनस्यउत्पादिनी, हे विश्वबैंकमयी! मुझ पर कृपा कर! बचपन में मुझे इकन्नी मिलती थी, पर इच्छा चवन्नी की होती थी, परंतु तेरी चवन्नी भर कृपा कभी न हुई। यहाँ तक कि मुझमें चोरी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि की सदेच्छा भी पैदा न हुई, वरना 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' को सही सिद्ध करता हुआ मैं अपनी शैशवकालीन अच्छी आदतों के बल पर किसी प्रदेश का मंत्री, किसी थाने का थानेदार, किसी क्षेत्र का आयकर अधिकारी आदि-आदि बन देश-सेवा का पुण्य कमाता और लक्ष्मी नाम की लूट ही लूटता। युवावस्था में मैं सावन का अंधा ही रहा। जिस लक्ष्मी के पीछे दौड़ा, उसने बहुत जल्द आटे-दाल का भाव मुझे मालूम करवा दिया। हे कृपाकारिणी! मुझ पर इस प्रौढ़ावस्था में ही कृपा कर।''

जनमेजय जी वैसे तो मुख्य रूप से व्यंग्यकार के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन व्यंग्य-रचनाओं के अलावा भी उन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं को समृद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने संस्मरणात्मक लेखन भी किया, साहित्यिक निबंध भी लिखे, रेडियो नाटक और कहानियाँ भी। 'देखो कर्म कबीर का' उनका एक प्रसिद्ध रेडियो नाटक है, तो 'त्रिनिदाद में दीवाली' उनका एक अत्यंत पठनीय संस्मरण। यही नहीं बाल साहित्य में भी उन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 'शहद की चोरी और नल्लूराम' उनकी प्रसिद्ध बाल साहित्यिक रचनाएँ हैं।

'हिंदी अकादमी साहित्यकार सम्मान' एवं 'हरिशंकर परसाई स्मृति पुरस्कार' और अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित प्रेम जनमेजय ने जिस प्रकार साहित्य की महत्त्वपूर्ण व्यंग्य विधा को अपनी कलम से सींचा है, वह अत्यंत सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। आशा है कि भविष्य में भी उनकी लेखनी से पाठकों को व्यंग्य से पूर्ण रचनाएँ मिलती रहेंगी।

व्यंग्य को समर्पित मेरा अपना प्रेम

कमलेश भारतीय

प्रेम जनमेजय न केवल संपादक हैं, बल्कि अपने मित्रों के लिए सदैव प्रेम से लबालब रहते हैं। मेरा इनसे पहला परिचय या कहिये, पहली मुलाकात पंजाब-हरियाणा के मेरे मित्र व उन दिनों 'सारिका' के संपादक मंडल में शामिल रमेश बतरा के 'सारिका' कार्यालय में ही हुई थी। रमेश और मेरा चंडीगढ़ से ही दोस्ती का नाता पारिवारिक हो चुका था। उन्हीं दिनों 'पराग' में कार्यरत महावीर जैन की शादी का अवसर आया, संयोगवश मैं रमेश के पास दिल्ली में ही था, अतः रमेश ने मुझे बारात में चलने के लिए कहा और मैं बारातियों में शामिल हो गया। बारातियों में प्रेम जनमेजय भी एक थे। जब बारात लौटने लगी तब मुझे मेरी सीट पर जो सहयात्री मिला, वे थे डॉ. प्रेम जनमेजय। आज यह कह सकता हूँ कि जो उस बस में सहयात्री बने, हम दोनों साहित्य और व्यंग्य-यात्रा के भी सहयात्री हैं। लगभग चालीस साल लंबी प्रेम और गहरी दोस्ती को हम तय कर चुके हैं।

उन दिनों प्रेम जनमेजय ने पी.एच.डी. की नहीं थी, बल्कि अभी प्रसिद्ध लेखक डॉ. नरेंद्र कोहली के निर्देशन में शोध कार्य कर रहे थे।

प्रेम जनमेजय का तब पहला व्यंग्य संकलन 'राजधानी में एक गंवार' आया था यानी वे व्यंग्य के अखाड़े में पहला कदम रख चुके थे, हालांकि अन्य विधाओं में भी वे लिख रहे थे। यानी कहूँ कि अभी व्यंग्य में भी नये-नये थे! मैं देहरादून से प्रकाशित हो रहे साप्ताहिक वेनगार्ड से और इसके संपादक सुखवीर विश्वकर्मा से काफी घुल-मिल गया था। उन दिनों प्रेम जनमेजय वेनगार्ड में लगातार छप रहे थे। मुझे याद है कि उनके पहले व्यंग्य संकलन 'राजधानी में गंवार' पर दिल्ली में, हरीश नवल के घर बढ़िया गोष्ठी हुई थी। इसमें रविंद्रनाथ त्यागी, सुधीश पचौरी, सुरेश कांत, दिविक रमेश, शेरजंग गर्ग, रमेश उपाध्याय आदि अनेक ने अपने विचार रखे थे। इसकी विस्तृत रपट वेनगार्ड में प्रकाशित हुई थी। उस रपट के माध्यम से मैंने प्रेम जनमेजय के लिखे को भी जाना था।

एक बार दिल्ली जाने पर डॉ. कोहली के छात्र सम दो प्रशंसक, प्रेम जनमेजय और हरीश नवल मेरे पीछे पड़ गये कि इनके श्रद्धेय गुरुदेव डॉ. नरेंद्र कोहली का इंटरव्यू ले लूँ। मैंने बहुत बार कहा कि इंटरव्यू कैसे लिया जाता है, मैं इससे बिल्कुल अनजान हूँ, तो इन्होंने मुझे कालिदास की भूमिका निभाने को कहा कि मैं बस नोट्स लेते डॉ. कोहली से इंटरव्यू लेने की एक्टिंग करता रहूँ और डायरी पर नोट्स लेता रहूँ, बाकी सवाल हम खुद ही पूछ लेंगे। इस तरह डॉ. कोहली के दो प्रिय, प्रेम जनमेजय और हरीश नवल, मुझे मूर्ख कालिदास बना कर डॉ. कोहली के घर ले चले और मैं मूर्ख खलकामी कालिदास की तरह बिट्-बिट् ताकता ही रह गया। दोनों ने अपने गुरुदेव को प्रसन्न कर दिया और मित्रों वह इंटरव्यू सचमुच वेनगार्ड में प्रकाशित भी हो गया! तब इस इंटरव्यू से मैं भी मूर्ख न रहा और इंटरव्यू लेने वालों में शामिल हो गया।

दैनिक ट्रिब्यून में सन् 1990 में उपसंपादक बनने के बाद से आज तक न जाने कितने इंटरव्यूज कर चुका हूँ और मेरी इंटरव्यूज की किताब 'यादों की धरोहर' के तीन-तीन संस्करण आ चुके हैं, यानी डॉ. कोहली के शिष्यों ने अनजाने ही मुझे इंटरव्यू कैसे किया जाता है, सिखा दिया। इस तरह जो मूर्ख खलकामी था उसे इंटरव्यू में पारंगत बना दिया। मेरी 'यादों की धरोहर' के तृतीय संस्करण में डॉ. प्रेम जनमेजय का इंटरव्यू भी शामिल है जो फोन पर ही लिया गया था, जिसे प्रेम जनमेजय ने 'फोनिया इंटरव्यू' कहा था, फेसबुक पर शेयर करते समय।

खैर! मित्रों अभी एक शैतानी प्रेम जनमेजय का चेहरा सामने आना बाकी है। दिल्ली की ही मुलाकातों में

जब हम 'सारिका' में रमेश से मिलकर निकले तब प्रेम जनमेजय ने पूछा कि मेरा अगला प्रोग्राम क्या है, तब मैंने बोला—बताया कि मैं तो प्रसिद्ध कथाकार राजी सेठ के साकेत स्थित आवास पर जाऊंगा। वे मेरी बड़ी बहन की तरह हैं और दिल्ली में मेरे दो ही ठिकाने हैं या तो रमेश के घर या फिर राजी सेठ के घर। अब प्रेम जनमेजय ने पहले उनके साथ नाटक देखने का प्रस्ताव रखा कि बाद में मैं राजी सेठ के घर जाऊँ। मैं भी प्रेम जनमेजय की तरह गंवार ही था तो दो गंवार निकले नाटक देखने। पर अभी असली शरारत होनी बाकी थी। प्रेम ने पूछा कि भैया पान खाओगे? मैने कहा कि हां ले लूंगा। बस एक गंवार ने अपने से छोटे गंवार को मूर्ख बना दिया। कैसे? नंबर वाला मस्त पान खिलाकर। अब नाटक तो मेरे साथ खेल गये न। हाय रे पापी बिछुआ की तरह पूरे जोर से डंक मारा नंबर वाले पान ने। सिर जो मेरा चकराये, समझ न आये क्या करूं? मुझे चक्कर आने लगे। कैसे जाऊँ एक बहन के घर इस हालत में? ये प्रेम जनमेजय मुझे डीटीसी की बस में बिठाकर चलते बने और मैं साकेत आने तक बुरी तरह ऊँघ रहा था। वह बस का आखिरी स्टॉप था, इसलिए कंडक्टर ने मुझे जगाकर उतरने को कहा, इस तरह मेरा बैंड बजाकर ये महाशय तो आराम से अपने घर पहुंचे और मैं बिना कुछ खाये-पिये सीधे ऊपर वाले कमरे में गया, ताकि कुछ भनक न लगे। इसके बाद कभी प्रेम की नाटक देखने की पेशकश स्वीकार नहीं की; चाहे उनका ही लिखा नाटक क्यों न हो!

मित्रों! यह शरारती हास्य-व्यंग्य तो खूब हो चुका। अब जरा शुद्ध व्यंग्य की बात हो जाये? उन को हरिशंकर परसाई ने शूद्र की स्थिति से ऊपर उठाने का जो प्रयास शुरू किया था, उसे न केवल डॉ. कोहली, बल्कि उनके प्रतिभाशाली विद्यार्थियों ने पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, बल्कि 'व्यंग्य यात्रा' के संपादन-प्रकाशन से इसे हिंदी की अन्य विधाओं के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। व्यंग्य यात्रा पिछले 19 वर्षों से हिंदी में व्यंग्य की केंद्रीय पत्रिका बनी हुई है, ऐसा कहूँ तो आप इसे अतिश्योक्ति नहीं मानेंगे। सिर्फ पत्रिका प्रकाशन तक सीमित न रहकर डॉ. प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य पुरस्कार भी शुरू किये हैं, पर हाय नंबर वाले पान का नशा तो करवा दिया, लेकिन पुरस्कार का नंबर वाले पान का अब तक नशा नहीं करवाया। प्रेम जनमेजय सिर्फ और सिर्फ व्यंग्य को समर्पित हो चुके हैं, यानी इही जीवन व्यंग्य के लेखे लगा चुके हैं।

राजधानी में एक गंवार का रचनाकार अब व्यंग्य का प्रमुख हस्ताक्षर बन चुका है और इस सारी यात्रा का मैं एकमात्र साक्षी नहीं हूँ, बल्कि देश ही नहीं विदेश में भी सभी हिंदी प्रेमी इनके प्रेमी बन चुके हैं। इन्होंने 'राजधानी में एक गंवार' से लेकर 'सींग वाले गधे' तक हर संकलन मुझे भेजा कि शायद मैं भी व्यंग्यकार बन जाऊँ, पर मैं

कथाकार बनकर ही खुश हूँ। इसके बावजूद मुझसे किसी न किसी तरह हर अंक में कुछ सहयोग करवा लेते हैं और इनके लगभग हर आयोजन में रचनात्मक भूमिका होती है। हमारी यह डील तो महावीर जैन की शादी से लौटते समय ही हो गयी थी, जिसकी कोई एक्सपायरी डेट नहीं। कम से कम इस जन्म में तो नहीं।

क्या कोई ऐसा लेखक देखा आपने इस घोर कलयुग में, जो किसी दूसरे लेखक की किताब भी प्रकाशित करवा दे और अपने ही घर कोरोना काल में विमोचन भी करवा दे? ये प्रेम जनमेजय ही हैं और हो सकते हैं। मेरी कथा कृति 'यह आम रास्ता नहीं है', का प्रकाशन इंडिया नेटबुक्स के डॉ. संजीव कुमार से करवा कर अपने घर गुरुग्राम में अपनी छत पर करवाया और मुझे आसमान पर चढ़ा दिया। पर मजाक करने से कभी नहीं चूकते। मैं हांसी के मशहूर पेड़े ले गया था, जो इन्हें व हमारी भाभी आशा जी को खूब भाये और जब मैंने दो-तीन बार पूछा तो बोले, 'यार मैंने कुछ नहीं खिलाया, यार! बस तब से पेड़ों के जिक्र से तौबा कर ली! न भाई न!'

मेरी बड़ी इच्छा थी कि मित्रवर प्रेम जनमेजय को हिसार आमंत्रित करूँ। सन् 2005 में मैंने इनका कार्यक्रम रखा जो आठ मई को तय था, लेकिन मेरी छोटी बेटी प्राची की तबीयत इतनी बिगड़ गयी कि मुझे पाँच मई को ही चंडीगढ़ के पीजीआई ले जाना पड़ा और यह मुहूर्त्त टल गया, लेकिन पिछले वर्ष जब 'यादों की धरोहर' का तृतीय संस्करण डॉ. संजीव कुमार ने प्रकाशित किया, तब यह मुहूर्त्त फिर निकला और इस बार टला नहीं और प्रेम जनमेजय का जन्मदिन दो दिन बाद आने वाला था और हमने 'अमर उजाला' के ब्यूरो चीफ अमरनाथ प्रसाद के कार्यालय के मिनी सभागार में केक काटकर मनाया। वहीं तृतीय संस्करण का विमोचन हुआ और प्रेम जनमेजय ने बहुत शानदार ढंग से व्यंग्य पर बातचीत की और कार्यालय जाने से पहले मेरे घर पधारे। डॉ. संजीव कुमार को मेरी पत्नी नीलम के हाथों बनी मसूर की दाल इतनी पसंद आई कि उसके बाद दिल्ली और नोएडा में अपने घर भी मसूर की दाल का स्वाद याद करते पूछा कि भाभी जी, वैसी दाल कब खिला रही हो? भई, दाल का जिक्र बंद करूं नहीं तो प्रेम जनमेजय कहेंगे कि बता, हमने कुछ नहीं खिलाया कभी?

प्रेम जनमेजय अपनी पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' में नये से नये प्रयोग करते रहते हैं, जैसे त्रिकोणीय इंटरव्यू, यानी एक चर्चित व्यंग्यकार का दो लोगों द्वारा इंटरव्यू। मुझे और मनोज छाबड़ा को हिसार में डॉ. मधुसूदन पाटिल के त्रिकोणीय इंटरव्यू के लिए चुना। दूसरी बड़ी बात कि दूसरों को लिखने के लिए उकसाते रहना। 'व्यंग्य यात्रा' को दूर तक ले जाने के लिए दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचना और नये रचनाकारों को मंच देना। भिक्षाम देहि का नारा लगाते रहना।

सचमुच दोस्त हो तो ऐसा। मैं अभी पिछले वर्ष जुलाई से नवम्बर तक लम्बे समय तक ऑपरेशन के बाद घर पर ही रहा और सोशल मीडिया से भी दूर ही रहा। प्रेम जनमेजय ने अस्पताल में मेरी पत्नी नीलम को फोन किया कि आप चिंता न करें, यदि यहाँ सही इलाज-उपचार न हो पा रहा हो, तो मैं आ जाता हूँ और इसे दिल्ली के एम्स में ले जाता हूँ। इसकी जरूरत नहीं पड़ी, लेकिन यह प्रेम इस जन्म तो भुलूँगा नहीं। वे फोन पर आजकल हँसकर कहते हैं कि भाभी को बता दे कि मेरी आधी बीवी प्रेम जनमेजय है, जो मेरा ध्यान दिल्ली में बैठी रहकर न केवल स्वास्थ्य, बल्कि पूरा-पूरा डाँटने का हक भी रखती है और यह सम्मान देने के बाद किसी बात पर डाँटना शुरू कर देते हैं।

प्रिय गिरीश पंकज। यदि मैं ही लिखता चला गया तो कहीं विशेषांक में किसी और के हिस्से कोई पन्ना ही न बचे। इस बार सब ठीक-ठाक रहा तो प्रेम जनमेजय का जन्मदिन फिर हिसार में ही मनायेंगे और फिर राजधानी के गंवार ही नहीं डाँटने-डपटने वाले मित्र को बुलायेंगे, यह कहकर कि भेजा है स्नेह निमंत्रण, आ जाना मित्रता निभाने को।

राजधानी में गंवार से सूबेदार तक का सफ़र

अरविंद तिवारी

आज हिंदी व्यंग्य में दो सूबेदार सक्रिय हैं। एक प्रेम जनमेजय जी, दूसरे ज्ञान चतुर्वेदी जी। यों व्यंग्य के कई नायब सूबेदार भी प्रॉपर सूबेदार के पद पर आसीन होने की कोशिश कर रहे हैं, पर हो नहीं पा रहे। परसाई, जोशी, त्यागी और श्रीलाल शुक्ल के अवसान के बाद ये दोनों केंद्र शक्तिशाली होते चले गए। आज जिस ऊँचाई पर प्रेम जनमेजय हैं, वहाँ तक पहुँच पाने में व्यंग्य की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का योगदान कम नहीं है। विदेश में डेपुटेशन समाप्त होने के बाद जब प्रेम जनमेजय वतन वापस लौटते हैं तो 'व्यंग्य यात्रा' निकालने का निर्णय लेते हैं। पत्रिका निकालने से पहले उन्होंने खूब होम वर्क किया। खूब सोच-समझकर यह पत्रिका निकाली, और यही कारण रहा, यह पत्रिका साहित्य में उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित होती चली गई। पत्रिका के बारे में आगे चलकर विस्तार से लिखूँगा।

याद करता हूँ, प्रेम जनमेजय जी का कौन-सा पहला व्यंग्य था, जिसके बरक्स मैं उनका मुरीद हो गया था। याददाश्त कहती है मेरे मानस पटल पर उनका जो धाँसू व्यंग्य अंकित है, व्यंग्य का शीर्षक है 'पुलिस-पुलिस!' यह व्यंग्य मैंने धर्मयुग में पढ़ा था। कई बार पढ़ा था। हास्य और विट से परहेज करने वाले प्रेम जनमेजय जी ने इस व्यंग्य में इन दोनों का भरपूर प्रयोग किया है। पुलिस! पुलिस! व्यंग्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रसंग वक्रता भी है। हो सकता है आलोचक मुझसे सहमत न हों, पर यह व्यंग्य उनके चुनिंदा व्यंग्य निबंधों में से एक है। जब मैंने यह व्यंग्य पढ़ा था, उस समय तक उनका पहला व्यंग्य-संग्रह 'राजधानी में गंवार' खूब चर्चित हो चुका था। उन दिनों बहुत से व्यंग्यकार 'धर्मयुग' में छप रहे थे, पर मुझे शरद जोशी के साथ रवीन्द्रनाथ त्यागी, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय और यज्ञ शर्मा के व्यंग्य बहुत पसंद थे। शरद जोशी के बाद 'धर्मयुग' में सबसे ज्यादा छपने वाले यज्ञ शर्मा का नई सदी के पहले दशक तक कोई व्यंग्य-संग्रह नहीं छपा था। प्रेम जनमेजय जी द्वारा मुझे दी गई यह जानकारी बहुत चौंकाने वाली थी। मुंबई में जब प्रेम जनमेजय जी के एक पुत्र का प्लेसमेंट हुआ तो उनका मुंबई आना-जाना बढ़ गया। तब उन्होंने यज्ञ शर्मा का पहला व्यंग्य-संग्रह बाद में दूसरा भी, दिल्ली से छपवाया। मैंने 'राजधानी में गंवार' बाद में पढ़ा था। 'राजधानी में गंवार' के व्यंग्य निबंध रोचक होने के साथ ही विट और हास्य को पूरा सम्मान देने वाले व्यंग्य हैं। संग्रह का शीर्षक व्यंग्य 'राजधानी में गंवार' में आत्मा नामक जिस आम आदमी का जिक्र है वह आम आदमी हमारे देश के तंत्र को बेनकाब करके रख देता है। हिंदी में कतिपय ऐसे व्यंग्यकार भी हुए हैं जो अपने पहले वाले लेखन को दोहरा नहीं पाते। व्यंग्यकार मित्र बातचीत में दबे स्वर से प्रेम जनमेजय का नाम भी लेते हैं। मैं इससे कतई सहमत नहीं हूँ। बाद में उनके कई उल्लेखनीय संकलन आए हैं। आगे चलकर जब प्रेम जनमेजय ने श्रीलाल शुक्ल के साथ 'श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य संकलन' का संपादन किया, तब भी उनका नाम चर्चा में रहा। यह संकलन एनबीटी से आया है और अब तक उसके अनेक संस्करण आ चुके हैं। अब शुरू हो ही गए तो उनकी व्यंग्य रचनाओं पर ही बात कर लेते हैं। उनके व्यक्तित्व के सरल और जटिल पक्ष पर बाद में बात हो जायेगी।

प्रेम जनमेजय की सभी श्रेष्ठ रचनाओं पर लिख पाना इस छोटे से लेख में संभव नहीं है, फिर भी मेरे जेहन में जो रचनाएँ बार-बार कौंधती हैं, उनका जिक्र अवश्य करूंगा। 'बर्फ का पानी' प्रेम जनमेजय की ऐसी रचना है जिसे कोई भी व्यंग्य का पाठक भुला नहीं सकता। व्यंग्य तभी श्रेष्ठ बनता है, जब उसमें करुणा हो। परसाई का 'भोलाराम का जीव' इसी करुणा के बरक्स श्रेष्ठ कहानी है, गो कि कतिपय समीक्षक इसमें

कहानी के तत्व ढूँढ़ते हुए चारों खाने चित हो जाते हैं। 'बर्फ का पानी' व्यंग्य में दो बच्चे भीषण गर्मी में प्यास से तड़प रहे हैं। शव के लिए आई बर्फ से वह प्यास बुझाना चाहते हैं, लेकिन जब शव यात्रा निकलने लगती है, तब एक बच्चा दूसरे से कहता है, फैंक दे यह बर्फ मुर्दे की है। दूसरा बच्चा कहता है, जूठी नहीं है बर्फ! 'मनुष्य और ठग' व्यंग्य हमेशा प्रासंगिक रहने वाला है, क्योंकि इस मुल्क के हालात बदले हुए नहीं दिखते। चार ठग अपने-अपने तरीके से मुल्क को ठग रहे हैं। 'चिंकारा होने की आजादी' व्यंग्य भी तमाम व्यंग्य तत्वों से गुंफित एक शानदार व्यंग्य है। जोधपुर में फिल्मी सितारों द्वारा हिरण के शिकार को लेकर इस व्यंग्य का ताना-बाना बुना गया है। धर्मराज के सामने मरे हुए चिंकारा की आत्मा उपस्थित है। पृथ्वी की विलंबित न्याय प्रणाली के बारे में चिंकारा कहता है, ''प्रभु यदि मैं दलित होता, हिंदू-मुस्लिम-सिख ईसाई होता, तो मुझे न्याय दिलाने वाले संसद हिला देते।''

'ज्यों-ज्यों बूढ़े श्याम रंग' व्यंग्य हमारी पुलिस की मानसिकता को उजागर करता है। एक पुलिस वाले का तबादला दक्षिण दिल्ली जैसे पॉश इलाके से रेड लाइट एरिया में हो जाता है, तो उसकी प्रसन्नता देखते ही बनती है। 'साहित्य और सफेदी' साहित्यकारों और उनकी पुरस्कार के प्रति एषणा पर लिखा गया एक बेहतरीन व्यंग्य है, जिसकी पठनीयता गजब की है। पठनीयता और प्रसंग वक्रता के हिसाब से 'राम वनवास का सीधा प्रसारण' भी एक महत्वपूर्ण व्यंग्य है, जो टी. वी. चैनलों के खोखलेपन को उजागर करता है। 'राजधानी में गंवार' संग्रह का व्यंग्य 'समीक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन' बेहद रोचक है। इस व्यंग्य में प्रसिद्ध रचनाकारों के लेखन की बिना पढ़े समीक्षा करने की ट्रिक भी बताई गई है। 'प्रभु दौरे पर' व्यंग्य भी मुझे पसंद है। 'कुएँ के मेंढकों का आकाश' उन रचनाकारों पर व्यंग्य है जो एक सीमित दायरे में रहते हुए अपने को बड़ा साहित्यकार मान बैठते हैं। 'गांधारी युग की उत्तर कथा' एक बेहतरीन व्यंग्य है जिसमें आधुनिक समय को महाभारत के प्रतीकों से जोड़ा गया है। 'अहिंसक हिंदी' व्यंग्य भी याद रखे जाने वाला व्यंग्य है। इस व्यंग्य में नकली हिंदी प्रेमियों की बड़ी तबीयत से खबर ली गई है। केवल शीर्षक पढ़कर आप यह अंदाजा नहीं लगा सकते, प्रेम जनमेजय के निशाने पर क्या है, कौन है? दरअसल उनके व्यंग्य में कुछ टर्निंग प्वॉइंट भी खोजे जा सकते हैं, जो व्यंग्य की दिशा का निर्धारण करते हैं। पूरे निबंध में व्यंग्य की कई धाराएँ साथ-साथ चलती हैं।

अगर आप प्रेम जनमेजय के लेखन पर संक्षिप्त टिप्पणी भी लिख रहे हैं, तो उनके व्यंग्य नाटकों के बिना वह पूरी नहीं हो सकती। प्रेम जनमेजय के तीन व्यंग्य नाटक छपे और चर्चित रहे हैं। सीता अपहरण केस, सोते रहो और क्यूँ चुप तेरी महफिल में है। सीता अपहरण केस पहले निबंध के रूप में लिखा गया था, जो 'पुलिस! पुलिस!' व्यंग्य-संग्रह में शामिल रहा। बाद में इसे नाटक के रूप में लिखा गया। इस नाटक के कई शहरों में मंचन हुए हैं। जाहिर है सबसे चर्चित व्यंग्य नाटक यही है। 'सीता अपहरण केस' में कलयुगी थाना है। फैंटेसी यह है कि राम और लक्ष्मण सीता अपहरण की रपट लिखाने आते हैं। वे त्रेतायुगीन हैं, पर थाना आज का है। यही कारण है हास्य और विद्रूपता इस नाटक में भरपूर है। नाटक 'सोते रहो' शीर्षक से ही यथास्थिति बनाए रखने का संकेत देता है। तीन परिवारों के पात्र हैं इस नाटक में। प्रसंग की वक्रता ही हास्य और रोचकता को जन्म देती है। ये तीन व्यंग्य नाटक व्यंग्य को समृद्ध करते हैं और प्रेम जनमेजय जी के बायोडाटा को भी समृद्ध करते हैं।

आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व 'व्यंग्य यात्रा' का प्रकाशन हिंदी व्यंग्य में सार्थक हस्तक्षेप माना गया। ऐसा नहीं है कि इससे पूर्व उल्लेखनीय व्यंग्य पत्रिकाएँ नहीं निकलीं। भारतेंदुकाल से ही व्यंग्य पत्रिकाओं के प्रकाशन का इतिहास रहा है। स्वतंत्र भारत में इन पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई, पर ये सभी पत्रिकाएँ व्यंग्य विमर्श के प्रति

उदासीन थीं। केवल व्यंग्य रचनाएँ छापना उनका उद्देश्य था। मुझे याद है पच्चीस सालों तक निकलने के बाद 'नोंक झोंक' मासिक पत्रिका बंद हो गई। 'रंग चकल्लस' आज भी निकल रही है, पर इसकी आवृत्ति तीन महीने पर होने लगी। 'रंग चकल्लस' इस समय सबसे पुरानी पत्रिका है। 'अट्टहास' भी दशकों से निकल रही है, पर पाठकों तक कई पत्रिकाओं की पीडीएफ ही पहुँच पा रही है। लंबे अरसे तक जयपुर से निकली 'नई गुदगुदी' मासिक पत्रिका भी दम तोड़ गई। ऐसे में जब 'व्यंग्य यात्रा' आई, तो व्यंग्य पत्रकारिता में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। यह व्यंग्य की संपूर्ण पत्रिका बन गई। कुछ मित्रों का कहना है, प्रेम जनमेजय को व्यंग्य लेखन से उतनी ख्याति नहीं मिली, जितनी व्यंग्य यात्रा के संपादन से। 'व्यंग्य यात्रा' और प्रेम जनमेजय एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं। जो भी हो, आज 'व्यंग्य यात्रा' व्यंग्य की आवश्यक और सर्वाधिक चर्चित पत्रिका है। कई सम्मान इस पत्रिका को मिल चुके हैं। प्रेम जनमेजय जी को जो व्यंग्य के बड़े-बड़े सम्मान इस पत्रिका के प्रकाशन के बाद मिले, उनमें इस पत्रिका का योगदान कम नहीं है। पत्रिका के तमाम विशेषांकों को पुस्तक के रूप में छपवाने का महत्वपूर्ण कार्य प्रेम जनमेजय जी ने किया है। व्यंग्य साहित्य की श्रीवृद्धि में इन पुस्तकों का महती योगदान है। इसके कारण संपादक के रूप में प्रेम जनमेजय की ख्याति को चार चाँद लग गए हैं। कहा जाने लगा जो इस पत्रिका में नहीं है, वह व्यंग्य साहित्य में कहीं नहीं है। मित्रों की राय यह है कि प्रेम जनमेजय लेखन में जैसे मासूम और निर्दोष दिखाई देते हैं, संपादक के रूप में वैसे नहीं हैं। कोई हो भी नहीं सकता। संपादन की अपनी मजबूरियाँ होती हैं। संपादन को लेकर विवाद भी होते हैं। पिछली सदी के सर्वश्रेष्ठ संपादक धर्मवीर भारती तक विवादों से परे नहीं थे। 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक पर भी उसी तरह के इल्जाम लगते रहे हैं, जैसे टी.वी. पत्रकार रजत शर्मा के शो में लगते हैं, पर टीवी शो में जिस पर इल्जाम लगते हैं वह सफाई देता है। 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक नहीं देते। किस-किस को दें? सबको संतुष्ट नहीं कर सकते। मुझे अपने ही एक व्यंग्य की पंक्तियाँ याद आती हैं, ''सरकार देश के गरीबों को सुविधाएँ देने के लिए प्रतिबद्ध है, पर पहले वह बहुत सीमित मात्रा में सुविधाएँ देगी। यदि गरीब उसे हजम कर जाते हैं, तो सरकार मात्रा बढ़ाएगी। इसके साथ ही प्रसिद्ध शायर हस्तीमल हस्ती की एक पंक्ति भी याद आती है—'जितना जिससे मतलब होता, उतना ही मुस्काते हैं।' एक कुशल संपादक हँसता भी नाप-तौल कर है। जिस समारोह में 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक मुख्य अतिथि हैं, उस कार्यक्रम की रपट 'व्यंग्य यात्रा' में छप ही जायेगी, इसकी कोई गारंटी नहीं है। इसके विपरीत किसी विशेष समीकरण के तहत, न्यायालय की तर्ज पर संपादक जी ने यदि स्वतः संज्ञान ले लिया है, तो सब कुछ विस्तार से छप जाएगा। सम्मान कितना ही बड़ा मिला हो आपको, यदि संपादक जी को लगता है सिर्फ तीस शब्द पर्याप्त हैं तो उतने में ही संक्षिप्त सूचना छपेगी। व्यंग्य पुस्तकों की समीक्षा के प्रकाशन को लेकर भी अक्सर शिकायतें रही हैं। संपादक के अपने आश्वासन भी रहे हैं। दशकों पुराने मित्र के उपन्यास पर एक लेखक का जो लेख 'व्यंग्य यात्रा' में छपा, उससे दोनों की मित्रता पर संदेह के बादल भी देखे गए, पर पत्रिका में छपे लेख में लेखक के अपने विचार होते हैं, इसलिए संपादक विवश होता है। वह पत्रिका में लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है जी। इस वाक्य का सहारा होता है संपादक के पास। बचपन में लंगोटिया रहे संपादक जी के व्यंग्यकार मित्र, पत्रिका में अपेक्षित स्थान न मिलने की शिकायत संपादक जी से करते रहे। जब लंगोटिया मित्र की किताब के रहते एक युवा व्यंग्यकार की किताब पर प्रेम जनमेजय जी के निर्णय से इनाम मिला, तो फिर विवादों और शिकायतों का नया दौर शुरू हो गया, पर जजमेंट इज जजमेंट, इसलिए सब शांत हो गया।

इन सबके बावजूद 'व्यंग्य यात्रा' ने दूर-दराज के नए-नए व्यंग्यकारों को खूब स्पेस दिया है। त्रिकोणीय

स्तंभ में सामान्य से सामान्य व्यंग्यकार के लेखन पर चर्चा की है। 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका के बैनर तले सचमुच व्यंग्य यात्राओं के आयोजन हुए। शुरुआत परसाई की नगरी जबलपुर से की गई। पिछले डेढ़ दशकों में इन साहित्यिक यात्राओं का जलवा रहा है। इन यात्राओं का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ, कि अन्य विधा के लोग व्यंग्य में रुचि लेने लगे। ऐसी हर साहित्यिक यात्रा में व्यंग्यकारों के साथ एक-दो नामचीन कथाकार और कवि जरूर होते। उनके विचार 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका में छपते रहे हैं। इस तरह 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका साहित्य के कोने-कोने में मशहूर हो गई है। हिंदी व्यंग्य में व्यंग्य उपन्यास कम लिखे जा रहे हैं। जो लिखे जा रहे हैं वे स्तरीय नहीं हैं, ऐसी शिकायतें रही हैं। प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्य यात्रा' के कई अंकों में व्यंग्य उपन्यास के अंश छापे हैं। इसी तरह व्यंग्य नाटकों के अंश भी छापे हैं। जाहिर है इन अंशों के प्रकाशन से व्यंग्यकारों को अच्छा लिखने की प्रेरणा मिली है।

युवा व्यंग्यकार विशेषांक, संस्मरण विशेषांक, महिला व्यंग्य लेखन विशेषांक आदि निकालकर 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका को संपादक ने ऐतिहासिक पत्रिका बना दिया। आज यह पत्रिका अपनी उत्कृष्ट सामग्री के कारण देशभर की साहित्यिक पत्रिकाओं में सम्मानजनक स्थान हासिल कर चुकी है। दरअसल प्रेम जनमेजय जी इस पत्रिका को मिशनरी भाव से निकाल रहे हैं। इसके पीछे व्यंग्यकार मित्रों की सदाशयता भी है। कितना भी विरोध हो प्रेम जनमेजय जी का, पर हर व्यंग्यकार चाहता है यह पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति करती रहे। समय पर निकलती रहे। इस पत्रिका ने उम्मीदों का पहाड़ खड़ा कर दिया है।

प्रेम जनमेजय जी के साथ मेरी घनिष्ठता उनके विदेश से लौटने और 'व्यंग्य यात्रा' के प्रकाशन के बाद हुई। जब वह विदेश में थे, तब मैं व्यंग्य लेखन में ऊँचाइयाँ चढ़ रहा था। उन्हें खबर नहीं थी। उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है, वह अपनी या अपने लेखन की आलोचना को कभी दिल पर नहीं लेते। वह उदारमना हैं। निंदक को नियरे रखते हैं। उस निंदक की सुख-सुविधा का भी पूरा ध्यान रखते हैं। उनका मिजाज ऐसा है कि वह जल्दी घुल-मिल जाते हैं। प्रेम जनमेजय विशाल मन रखते हैं। जब तीन व्यंग्यकारों पर एक वरिष्ठ उपन्यासकार ने उपन्यास लिख दिया, वह जरा भी विचलित नहीं हुए, गो कि उस व्यक्तिगत आलोचना से भरे उपन्यास के एक पात्र वह भी थे। उन्होंने उस लिखने वाले मित्र को भी गले लगाया और पुस्तक मेले में 'व्यंग्य यात्रा' के एक आयोजन में उस वरिष्ठ उपन्यासकार को विशिष्ट अतिथि बनाया। उस उपन्यास में अन्य व्यंग्यकारों के साथ प्रेम जनमेजय जी के बारे में जो लिखा गया, वह भयंकर गुस्से की माँग करता था। प्रेम जनमेजय जिस मिट्टी से बने हैं, उसमें गुस्से की कोई गुंजाइश ही नहीं है। इतने पर भी उन पर यह आरोप लगता रहा है कि उन्होंने कम प्रतिभाशाली व्यंग्यकारों को लगातार प्रमोट किया या वह एक समूह बनाकर कार्य करते हैं। इस समूह में सभी पाक-साफ नहीं होते। प्रेम जनमेजय अकेले व्यंग्यकार हैं जिनकी दोस्ती व्यंग्य विधा से इतर तमाम बड़े साहित्यकारों से है। रवींद्रनाथ त्यागी सम्मान और धर्मवीर भारती सम्मान प्रेम जनमेजय की ही देन हैं। प्रेम जनमेजय में कुछ जटिलताएँ भी हैं। कब किसको कितना सम्मान देना है, इसका निर्धारण उनका संपादक स्वभाव करता है। मान लो सामने ऑडियंस में दो व्यंग्यकार उपस्थित हैं तो प्रेम जनमेजय अपने वक्तव्य में सिर्फ एक व्यंग्यकार की उपस्थिति को ही रेखांकित कर सकते हैं। दूसरा उपेक्षित महसूस करे, तो करता रहे। कभी-कभी वह बुरा भी मानते हैं और उसे छुपाते भी नहीं हैं। यह जो न छुपाने का गुण है, वह उनकी लोकप्रियता में इजाफा करता है, उन्हें बड़ा बनाता है। उनकी चुस्ती-फुर्ती देखते ही बनती है। उनके हमउम्र साहित्यकार इतने सक्रिय नहीं हैं, जितने वह हैं। उनके 'अमृत महोत्सव' पर मैं यही कामना करता हूँ, वह इसी तरह शतायु होने तक 'व्यंग्य यात्रा' निकालते रहें और व्यंग्य में ताउम्र सक्रिय बने रहें।

व्यंग्य का नया ब्रैंड एम्बेसडर

बलदेव वंशी

वर्तमान युग व्यंग्य का युग है। व्यंग्य कोड़े की मार की तरह मार से तिलमिलाए या जंगलों में दबे मेंढकों की तरह गुदगुदाए। मार कर सुधारने वाले को आज ज्यादा पसंद कोई नहीं करता। हाँ, नाव में हँसते-हँसाते कोई भारी-भरकम पत्थर डाल दे, ताकि नाविक और नाव दोनों डूब जाएं, इसे खूब पसंद किया जाता है।

पूरा भारत देश आज जहाँ पहुँचा दिया है, समाज के बाहर-भीतर की स्थितियों ने व्यक्ति-व्यक्ति की जो भद्द पीट दी है, वहाँ रोने से भी, रोते रहने से भी कुछ निजात मिलने वाली नहीं है। थक-हार कर भारतीय जन जो ढोलक-मंजीरे पर रात को गाकर जीवन काटता था, वह भी अब समय के भारी पाँव के नीचे दबा केवल हँसने में यकीन रखने लगा है।

किसी भी स्थिति में, कहीं भी जरा-सा हँसी का, हास्य का, व्यंग्य मिश्रित हास्य का संकेत पाकर तुरंत मूड में आ जाता है। कुछ लोग कहते हैं देश में विकास कार्य नहीं हुए, जबकि सर्वाधिक कार्य हास्य-रस की स्थितियों के विकास में हुआ है। मरियल से मरियल और पिटे-से-पिटा व्यक्ति भी हँसने को तैयार है। ऐसी हरी-भरी पर्यावरणीय स्थितियों के विकास के लिए भारतीय नेताओं का हर माह की अंतिम तिथियों में चौराहों पर भव्य, खुला अभिनंदन होना चाहिए, और अभिनंदन पर किया जाने वाला खर्च हास्य-व्यंग्य कवियों, गद्यकारों से वसूला जाना चाहिए, क्योंकि देश में हुए सारे विकास का लाभ ये लोग ही तो उठा रहे हैं। अधिकांश साहित्यिक पुरस्कार भी ये लोग ही हथिया रहे हैं। हथियाने के लिए व्यंग्य को साहित्य की नई विधा बताकर सिद्ध करने में जमीन-आसमान एक कर रहे हैं। हास्य की, व्यंग्य की नई फैक्ट्रियाँ, कारखाने और उत्पाद पैदा कर रहे हैं।

अब देखो एक नए साठा-पाठा युवक व्यंग्यकार हैं—प्रेम जनमेजय। पहले तो इसने अपना मूल नाम ही बदल डाला, फिर हास्य-व्यंग्य लेखकों की कतार को लंबा करके गंभीर साहित्य लेखकों की पंक्ति को छोटा बनाने में दिन-रात एक कर दिया। त्रिनिदाद एवं टुबैगो के विदेशी प्रवास में हिंदी निधि ओपन स्कूल के पाठ लेखन समिति के विषय विशेषज्ञ के नाते जो नए-नए पाठ कंठस्थ किये कि भारत में आते ही 'व्यंग्य यात्रा' (व्यंग्य पत्रिका) आरंभ करके इतिहास में दर्ज बड़ी-बड़ी राजनीतिक-साहित्यिक यात्राओं को पीछे छोड़ने की पंचवर्षीय योजना-जैसी योजनाएँ चली दीं।

गांधी जी की (डांडी मार्च) दांडी यात्रा हो या चंद्रशेखर, आडवाणी जी की राजनीतिक यात्राएँ हों या नामवर सिंह (प्रभाष जोशी द्वारा समर्पित) की साहित्यिक यात्रा।

प्रेम जनमेजय ने परोक्ष रूप में अपने लिए पहले से ही 'जय' गर्भित उपनाम जोड़ कर अपने लिए सबको 'जय जय' बोलने को बाध्य कर दिया है, जिस पर हिंदी साहित्य में व्यंग्य की यात्रा का ऐसा बिगुल फूँक दिया है कि गंभीर साहित्य हाशिये की ओर देखने लगा है। हंसों के भी गले बैठ जाएं और जल्दी ही सुर भी बदल जाएं ऐसे पैंतरे और बाजारवादी धौल जमाएगी 'व्यंग्य-यात्रा' कि बड़े-बड़े रथी भी पदाति-यात्री बने मिलेंगे। प्रेम की यात्रा का ग्राफ देखा है? और वो भी इतनी छोटी-सी उम्र में? व्यंग्य की दर्जन भर से ऊपर मौलिक पुस्तकें।

उन पर लगभग इतने ही बड़े-बड़े नामी-ग्रामी सम्मान-पुरस्कार। संपादित पुस्तकें तो वह गिनाते ही नहीं। प्रेम की प्रतिभा ने व्यंग्य-हास्य की विधा को ऐसे ही नहीं चुना होगा। इसने पुराने समय के दिल्ली टी-हाउस में आसपास बैठे देवराज दिनेश (अब स्वर्गीय) के भारी-भरकम वजूद को तथा बदीउज्जमां (स्वर्गीय) के पतले-दुबले इकहरे बदन के गद्यकार जैसों को जरूर देख लिया होगा, जिससे जान लिया होगा कि साहित्य में

हास्य-व्यंग्य से ठहाके लगाने वाला देवराज दिनेश बनता है और गंभीर साहित्य लिखने वाला बदीउज्जमां बन जाता है। युग की नब्ज उसे पिछले ही वर्ष (सन् 2008 ई.) में उसका व्यंग्य-संग्रह आया—'कौन कुटिल खल कामी'। आया तो कवर पर बने चित्र और शीर्षक देखकर तब से पहले 'मो सम कौन कुटिल खल कामी!' में 'मो' को गायब पाकर इसी शीर्षक का भीतर लेख पढ़ने लगे। यहाँ लेखक ने 'मो' को हटाकर 'तुम' लगा दिया तथा पाठकों को 'तुम सम कौन कुटिल खल कामी' पढ़वा लिया। कहने को लेखक ने 'आजकल के बाबा, बापू, संत आदि का नाम ले लिया' कि वे ऐसा ही पढ़ते-बोलते हैं, किंतु हमने पढ़ा तो लगा कि इस 'तुम' में 'मैं' भी और 'हम' भी लपेटे में ले लिए गए हैं। इस चतुराई से काम लिया गया है, कि कोई भी बाबा या संत आपत्ति न कर सके और वास्तव में जो भी आज धर्म की ओट में कुटिल, खल और कामी हैं, वे थोड़ा अपने कर्म पर शर्म करें। उन्हें दुनिया और दुनिया की ओर से व्यंग्य लेखक भी देख रहा है।

तुलसीदास ने तो 'मो सम' कहकर आत्म से, आत्म-परिष्कार से, धर्म से, अध्यात्म की दृष्टि से बड़े विनम्र भाव में लिखा था। आशय यह भी कि दूसरों के कुटिल, खल और कामीपन को तो सब देख रहे हैं, आत्म को, स्वयं को लोगों ने रखना-सुधारना बंद कर दिया है। इस कारण हर कहीं अराजक, दुष्ट, पापी पनप रहे हैं, क्योंकि धर्म-दृष्टि हमें अपने भीतर ले जाती है तथा राजनीति हमें बाहर-दुनिया की ओर, उसे बदलने की ओर ले जाती है। निश्चय ही तुलसी युग के महान संत होने के कारण सबको अपने-अपने भीतर ले जाने की राह दिखाते हैं। परोक्ष रूप में प्रेम जनमेजय भी इसी दृष्टि के पक्षपाती हैं। वह उन अंध-स्वार्थियों, धंधेबाजों को जो धर्म-क्षेत्र में घुसकर वास्तविक धर्म, मानवीयता, संवेदनशीलता को नष्ट-भ्रष्ट करने वालों पर अपना कोप प्रकट कर रहे हैं। इससे लेखक के व्यापक सरोकार और दिशा-दृष्टि का आधार भी स्पष्ट होता है। उसके संकलित लेखों का पक्ष तथा गहन-चिंतन, मिथकीय संदर्भों के परिप्रेक्ष्य एवं अध्ययन एवं अध्यात्म के रुझानों को भी समझा जा सकता है, जिनसे लेखन में गहनता, गंभीरता के पक्ष उजागर होते हैं। भारतीय जाति की पौराणिक रुग्णता, रोग के लक्षण एवं निदान तथा उपचार की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

''कुटिल-खल-कामी बनने का बाजार गरम है।'' (पृ.-20) अब यहाँ प्रथम तीन शब्दों को योजक चिह्न लगाकर, परस्पर बांधकर, इनकी त्रिवेणी सत्ता-महत्ता की ओर तथा इनकी समवेत प्रवाही गुण-धर्मिता तथा सफलता की ओर हमारा ध्यान दिलाना चाहता है, तो साथ ही ''दुनिया के हित-चिंतक चाहते हैं कि विश्व की भावी पीढ़ी कुशल व्यवसायी तो बने, कुशल मनुष्य न बने।'' (पृ.-21) ''वे मेरे नत-मस्तक को ज्ञान से वैसे ही भर रहे थे जैसे अमेरिका नतमस्तक देशों को 'प्रजातंत्र' के ज्ञान से भरता है।'' (पृ.-21) और कि ''इस असार संसार का बाबा ने सार गह लिया है।'' अतः अब दूसरों को संसार के भोग-विलास से दूर रखकर ''बाबा की कुटिया-सुटिया गई है।'' यानी एयरकंडीशन भवन में तब्दील हो गई है।

ऊपर आये संदर्भों से व्यक्ति, समाज, देश, विश्व की स्थितियों को किस तरह लेखक अपनी व्यंजना द्वारा अनावृत्त करता है कि अर्थ, समाज, राजनीति, धर्म की सारी तहें नंगी हो जाती हैं और इनके सामने सामान्य जन लुटा-पिटा, सन्न, अवसन्न।

बत्तीस व्यंग्य लेखों के संकलन में सबसे प्रथम लेख है 'इक श्मशान बने न्यारा'। लेखक का कहना है कि—''मेरे मोहल्ले का श्मशान बहुत सुंदर है, इतना कि वहाँ रहने को देवता भी तरसते हैं और देवियाँ हवा-पानी बदलने के लिए आती हैं। इसकी खूबसूरती देख बार-बार मरने को दिल चाहता है।'' (पृ.-13) क्योंकि बस्तियाँ जीवितों के लिए जीते-जी श्मशान में बदल दी गई हैं और श्मशान सुंदर आबादियों में। ''देखा जाए तो आजकल तो मुरदा की ही इज्जत है। जो नैतिकता, ईमानदारी, मानवता आदि से मुरदा हो गया, वही समाज में सम्मानजनक

जीवन जी गया।'' (पृ.-14) लेखक का आशय यह भी है कि मौजूदा बाजारवाद जीवितों को मुरदा बनाकर श्मशान के लायक बनाता है और श्मशान को अपने बाजारी हितों में दर्शनीय बनाकर लुभाता है।

प्रेम आत्म-व्यंग्य से परात्म-व्यंग्य को साधने और मजबूत से मजबूत शत्रु-दुर्ग को बेधने की बड़ी हुनरमंदी का मास्टर है, क्योंकि व्यंग्य बड़ा बीहड़ कौशल है। कुशा जैसा तीखा-बोधक कौशल व्यंग्यकार को सफलता प्रदान करता है। फल का दान ही श्रेष्ठ माना गया है और कुछ विशेष उक्तियाँ, जो प्रेम ब्रेंड की अपनी विशिष्टता हैं-

- ''यदि सभी जीवों में एक ही आत्मा है तो कुत्ते और मेरी आत्मा में क्या अंतर है?'' (पृ.-23)
- ''देश में संस्कृति की रक्षा रुपयों में होती है तथा विदेशों में डॉलरों और पौंड्स में होती है। विदेशी मुद्रा में देशी संस्कृति की रक्षा।'' (पृ.-107)
- ''राधेलाल पहली बार अंग्रेजी में हिंदी पढ़ाने (विदेश भेजा गया, सरकार द्वारा) पढ़नेवालों को अच्छी हिंदी नहीं आती थी, राधेलाल को अच्छी अंग्रेजी नहीं आती थी। उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि वह हिंदी पढ़ाने आया है या अंग्रेजी पढ़ने। (पृ.-104)
- ''वह दिन दूर नहीं, जब मुझ जैसे आम भारतीय को अपना देश ही कबाड़ लगने लगेगा और इसे नया करने के लिए कुछ भी कीमत देने को हम तैयार हो जाएंगे।'' (पृ.-76)
- ''मैं भारतीय जनता हूँ, जिसकी नींद कभी नहीं खुलती है।'' (पृ.-159)
- ''जब महत्वपूर्ण काम से जाना हो तो-जूते को ऐसा चमकाना पड़ता है कि उसकी कालिमा में अपना चेहरा साफ दिखाई देने लगे।'' (पृ.-37-38)
- ''मैंने देखा, राधेलाल का चेहरा दोमुँहे साँप का हो गया था, जिसके एक मुँह पर खादी की टोपी लगी थी और दूसरे पर भयानक विषदंत चमक रहे थे।'' (पृ.-80)

उक्त उद्धरणों में दृष्टि, सोच, निरीक्षण, अभिव्यक्ति का सटीक पैनापन लक्षित किया जा सकता है।

प्रेम जनमेजय समाज में घटित विभिन्न विख्यात-कुख्यात घटनाओं को, जो पहले ही भरपूर नामी-बदनामी कमा चुकी होती हैं, उन्हें पुनः अपने व्यंग्य की पेरनी में पेर कर, उसे निचोड़ कर प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त तो हैं ही, साथ ही व्यंग्य-रस को स्वादिष्ट बनाकर, अदरक-पुदीना की खुशबू-स्वाद से महकाकर जायकेदार बना प्रेम-ब्रेंड का नया पेय मार्किट में उतारता है, जिसके आगे पूर्व जमे हुए ब्रेंडों के साथ प्रतिस्पर्द्धा ठन जाती है। कई समकालीन ब्रेंडों के बाजार को चोट पहुँच रही है। लिहाजा व्यंग्य-बाजार में भी अब मारामारी का माहौल बन रहा है।

स्वयं व्यंग्यकारों पर भी चौकस व्यंग्य साधते हुए प्रेम की मार देखें, ''सारा कसूर हम हास्य-व्यंग्य के लेखकों का है। पत्नी बिना हमारी रचनाओं में हास्य आता ही नहीं है। साली और पत्नी की कमाई खाने वाले हास्य सम्राटों के समक्ष में दीन-हीन, एक रचना के कभी-कभी सौ-दो सौ पा जाने वाला तुच्छ व्यंग्यकार, अपने को शामिल नहीं मानता हूँ तो क्या, पर हास्य-व्यंग्य का तमगा लगा, मैं आज तक औरों के साथ दूसरों पर व्यंग्यात्मक मुस्कान बिखेरता ही आया हूँ।'' (पृ.-115)

उपमाएँ देने के लिए संस्कृत के महान कवि कालिदास बहुत बदनाम हैं। बात ही बात में प्रेम अपनी उपमावादी प्रवृत्ति की ओर सीधे-सीधे ध्यान न दिलाते हुए कालिदास का नाम लेकर हमें इस ओर देखने का संकेत कर रहे हैं। ''आप ही उपमा की तलाश करें। मैंने कालिदास से अनुरोध किया था, पर वह भी टाल गए। सारा कसूर हम हास्य-व्यंग्य के लेखकों का है।'' (पृ.-115)

हाँ भाई, जरूर है, तभी आपके लिए कालिदास भी उपमाएँ नहीं ढूँढ़ पाए, क्योंकि आपके पास तो बात-बात में उपमाएँ मुँह जोड़ने आ धमकती हैं। आपको उपमाओं का टोटा कहाँ। और कोई और क्यों ढूँढ़ने लगा आपके लिए उपमाएँ, ''भारतीय जनता-सा क्लीव'' (पृ.-115),

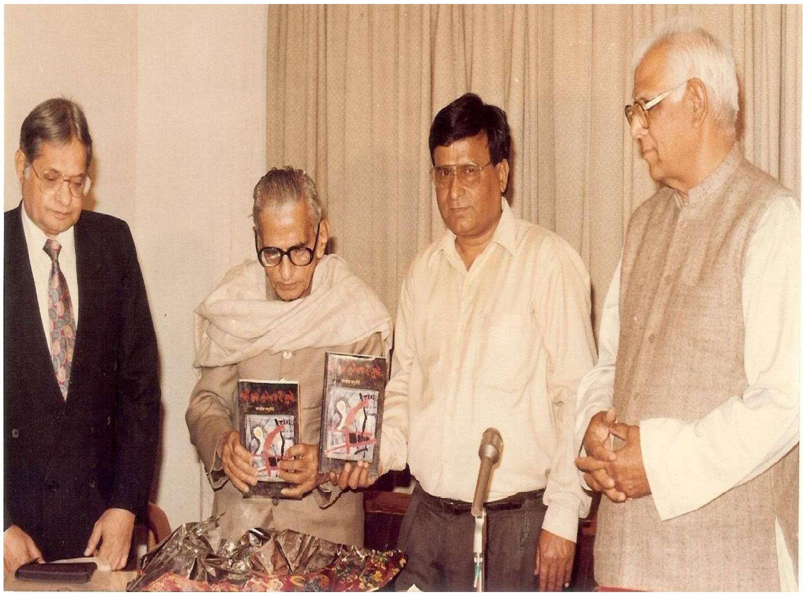

प्रयोग भी। कुछ मुहावरों, लोकोक्तियों का जायका आप भी लें—विष को विष काटता है और लोहे को लोहा। साँप आस्तीनों में पला करते हैं (पृ.-35)। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी (पृ.-31), रोज-रोज का रंडी रोना (पृ.-73), सादा जीवन और उच्च विचार (पृ.-116), सावन के अँधे (पृ. -92), चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, खोई हुई गाय की तरह, (पृ. -92), सिक्का जमाना (पृ.-58), दलित वर्ग-सा निर्जीव (पृ.-125)। इस प्रकार मुहावरे, लोकोक्तियाँ, दृष्टांत, उदाहरण। भाषा लोक में रची-बसी होने से अधिक बोधगम्य भी हो गई है और व्यंग्य भी प्रभावी हो गया है।

''टाँगें देश की अर्थव्यवस्था की तरह काँपने लगीं'' गला ''मानवीय मूल्यों-सा सूख गया।'' (पृ.-159) ''रक्तचाप महँगाई की तरह बढ़ता जा रहा था।'' (पृ.-126) इसी भाँति अन्य अलंकार भी भाषा की श्रृंगारिकता को चार चाँद लगाने वाले खूब मिल जाएंगे—''गरीब की गरीबी की तरह खालिस, कोई मिलावट नहीं। पर जैसे कुत्तों के भी दिन बदलते हैं, जैसे बार-बार हारा नेता भी चुनाव जीत जाता है, जैसे कभी-कभी न्यायालय में भी न्याय मिल जाता है, जैसे प्रौढ़ा लड़की को वर मिल जाता है, जैसे बिना रिश्वत दिए कभी-कभी ईमानदार का काम बन जाता है, जैसे कभी-कभी गरीब का नसीब जाग जाता है, वैसे ही श्रीमान, श्मशान भी ताजमहल हो जाता है।'' (पृ.-14-15) यहाँ 'जैसे' की छठा देखते ही बनती है।

व्यंग्य के लिए मुहावरे जैसे सोने पे सुहागा। जैसे सूई में धागा! प्रेम की भाषा मुहावरों से खूब खेलती है। हम तो सुझाव देंगे कि क्योंकि आजकल के अध्यापक पुस्तक के रूप में स्कूलों में—'कौन कुटिल खल कामी' को जोड़ दें, ताकि नए-पुराने मुहावरों को वे आसानी से एक जगह उपलब्ध करा सकें। मुहावरे भी और उनका वाक्यों में

ऐतिहासिक-पौराणिक संदर्भों, जानकारियों को बीच-बीच में कथनों में, गूँथ-गूँथ कर पाठक को गुदगुदाते भी रहते हैं, जैसे धृतराष्ट्र, संजय-महाभारत के पात्रों के उल्लेखों से विषय-स्थिति की विडंबना को, विसंगति को उभार कर व्यंग्य को अधिक मारक और प्रहारक बना लेना प्रेम के व्यंग्य-कौशल का हिस्सा है, प्रेम नए से नए विषयों को या परिचित विषयों को नए संदर्भों-परिप्रेक्ष्यों में उठाते हैं—''नंगई की मार्केटिंग का धंधा जोरों पर चल रहा है और साहित्य में भी ऐसे धंधेबाजों का समुचित विकास हो रहा है।'' (प्रथम फ्लैप)

सामाजिक सरोकारों के प्रति अपनी भारतीय लेखनीय प्रतिबद्धता के चलते गहराती विडंबनाओं को, विसंगतियों को अपने चुस्त जुमलों को निशाना बनाते चलना प्रेम के व्यंग्यकार की शैलीगत विशेषता है, जो तेज नश्तर का काम भी करती है। अतः निश्चित रूप में, अपनी सारी खूबियों के कारण यह मार्केट में टिकने वाला ब्रैंड है।

एक साधारण असाधारण व्यक्तित्व

दिविक रमेश

भीतर ही भीतर विचार करता हूँ तो पाता हूँ कि जान-पहचान भले ही मेरी बहुतों से हो, पर जिन्हें मित्र कह सकूँ वे तो उँगलियों पर गिनने में भी थोड़े हैं। यहाँ मैं मित्रता के लक्षण पर नहीं जाऊँगा, हाँ, उदाहरण के लिए मित्र लक्षित जरूर कर सकता हूँ। वह है प्रेम उर्फ प्रेम जनमेजय उर्फ प्रेम प्रकाश कुंद्रा। बहुत मुश्किल होता है ऐसे व्यक्ति के बारे में लिखना जिसकी पहुँच आपके भीतर तक हो चुकी हो, जो अत्यंत आत्मीय हो और आपसे एकदम सटा हो। इसका एहसास है मुझे। एक बार पत्नी के प्रति प्यार-कविता लिखते हुए लिखा था—

जिस भाषा में
मिलते हैं हम-तुम
क्या कविता
उसी की
अक्षम तलाश नहीं है।

आज मित्र प्रेम के व्यक्तित्व पर लिखते समय वैसी ही दिक्कत या अक्षमता सामने है। बहुत ही मुश्किल होता है मित्र को छानना-बीनना। सौ खून तक माफ करने पड़ते हैं। दूसरे, व्यक्ति हों या भवन, कविता हो या अन्य सृजन, मुझे तब-तब वह जटिल लगा है, जब-जब वह सहज मिला है। सादगी से भरे सौन्दर्य का विश्लेषण शायद सबसे कठिन होता है, जो प्राकृतिक है, उसकी किसी विशेषता को अलग से इंगित करना सबसे ज्यादा कष्टदायक होता है। प्रेम में मुझे कवि कालिदास की कृतियों के वैशिष्ट्य की वह सहजता, वह नैसर्गिकता प्रतीत होती है जो आकर्षित तो भरपूर करती है, पर उसका स्रोत क्या है, फॉर्मूला क्या है—यह जानने के लिए माथा-पच्ची करते रहिए और पोथे पर पोथे लिखते रहिए : कुछ है, जो फिर भी छूट ही जाएगा। इस मायने में प्रेम, यानी उसका व्यक्तित्व एक उलझन है। वह असाधारण है—मैं जानता हूँ, सब जानते हैं, पर कहीं से भी वैसा लगता नहीं। वह विशिष्ट है, पर वैसा दिखाई नहीं देता। वह एक सहज साधारण व्यक्ति ही प्रतीत होता है—हँसता-बतियाता, टाँग खींचता-खिंचवाता। वह लेखक है, पर बहुत से लेखकों की-सी मुद्राओं से कोसों दूर। तो भी उसमें एक गज़ब का चुम्बकीय आकर्षण है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और भिन्न-भिन्न रुचियों के लोग उसकी चुम्बकीय शक्ति के घेरे में एक साथ मँडराते देखे जा सकते हैं। लोगों की बात तो अलग है, बहुत से अलग-अलग प्रकार के धंधे और शौक तक उसकी इस शक्ति के शिकार रहते हैं। मानना ही पड़ता है कि वह साधारण असाधारण है।

प्रेम से मेरी मुलाकात तब हुई थी जब वह प्रेम जनमेजय हो चुका था और मैं अभी रमेश शर्मा ही था, यानी दिविक रमेश नहीं हुआ था। प्रेम; व्यंग्य, कहानी आदि लिखता था और मैं कविताएँ, कहानियाँ भी। मैं मोतीलाल नेहरू कॉलेज में लेक्चरर हो चुका था। मेरे वरिष्ठ सहयोगी नरेन्द्र कोहली के यहाँ नियमित रूप से लेखकीय गोष्ठियाँ होती थीं। प्रेम, कोहली जी का विद्यार्थी था। गोष्ठियों में उससे लगातार मुलाकातें हुईं। यहीं से हम एक-दूसरे के नजदीक आते चले गए। कारण शायद बहुत से रहे होंगे। कुछ बातें हम दोनों में समान भी रही होंगी, लेकिन एक कारण जो अब तक बरकरार है, वह है जीभ का स्वाद। प्रेम के नौरोजी नगर वाले मकान के पास की प्रसिद्ध पकोड़े वाली दुकान वर्षों तक हमें कमजोर बनाती रही है। अब वह पश्चिम विहार में है, यानी मुझसे एकदम विपरीत, मैं पूर्व में हूँ, तो भी सिंह का ढाबा तमाम दूरियाँ उखाड़ फेंकता है। जब हमारा खाने-पीने का कार्यक्रम बनता है तो किसी उत्सव से कम नहीं होता। प्रेम, यूँ भी, इस मामले में दरियादिल है। कमाल की आवभगत करता है। उसकी इस परम्परा को, उसके विवाहित होने के बाद, आशा भाभी ने और भी चार चाँद लगा दिए हैं और प्रेम का सौभाग्य देखिए कि पत्नी के

रूप में आशाजी उसे एक बढ़िया कुक भी मिल गई हैं। अपने बढ़ते हुए मोटापे को कम करने के लिए वह सैर आदि के बहाने सुबह-शाम घर से बाहर विरही हो सकता है, हफ्ते में एक-आध दिन खाना न खाने का; अर्थात् मात्र अन्न न खाने का ढोंग भी रच सकता है, मगर अच्छे और स्वादिष्ट भोजन को वह सिद्धान्ततः रुष्ट नहीं कर सकता।

एक अच्छे सद्गृहस्थ के रूप में प्रेम से दोस्तों को ईर्ष्या हो सकती है। पति-पत्नी के बीच की 'समझ' को प्रेम जितनी ईमानदारी और निष्ठा के साथ निभाता है वह कभी-कभार कुछ लोगों में ईर्ष्याजन्य मज़ाक का बिन्दु भी बने देखा जा सकता है, लेकिन प्रेम, पत्नी की अनुपस्थिति में भी पत्नी से किए गए समझौतों को भूलता नहीं है। इस बात को लेकर उसमें कोई कुंठा भी नहीं है। उसकी स्पष्ट अवधारणा है कि यदि वह पत्नी से कुछ अपनी बातें मनवाना चाहता है, तो उसे भी पत्नी की कुछ बातें माननी होंगी। घर में उसकी सहयोगी भूमिका महसूस की जा सकती है मेहमानों के सिलसिले में भी। आम भारतीय पति से हटकर प्रेम में वह गुण भी है जो उससे सहर्ष पत्नी के लिए सुबह की चाय बना सकता है। यह बात अलग है कि पढ़ाने की जिम्मेदारी के रूप में प्रेम की जिम्मेदारी उसका छोटा बेटा है जो प्रेम से ज्यादा उस्ताद है, इसलिए दोनों के बीच की रणनीतियाँ बहुत बार मज़ेदार पार्लियामेंट रचते देखी जा सकती हैं। घर, प्रेम के लिए एक मोह है। बड़ा-सा मोह। मज़ेदार बात यह है कि इस मंच पर मेरी भूमिका भी लगभग समान है, यानी मोह के मंच पर। किसी सेमीनार या गोष्ठी के लिए प्रेम को; और मुझे भी, बहुत उत्साह के साथ ट्रेन पकड़ते देखा जा सकता है, लेकिन गाड़ी के चलते ही, घर लौटने की घड़ियाँ भी वह उसी वेग से जपना शुरू कर देता है। मैंने उसके पत्नी-प्रेम को बहुत बार करीब से महसूस किया है। प्रेम को मैंने एक आत्मीय पुत्र और स्नेहिल भाई के रूप में भी पाया है। हाँ, वह सम्बन्धों में उन्मुक्त जरूर है। पिता के साथ कई बार वह दोस्त का-सा बर्ताव करते भी देखा जा सकता है, खासकर जब वह उनके साथ ताश या चैस खेल रहा हो। मैंने पाया है कि मेरी पत्नी की तरह आशा भाभी भी मज़ाक के मामले में काफी गम्भीर हैं, फिर भी प्रेम का दावा है कि मैं आशा भाभी के साथ मज़ाक करने की क्षमता रखता हूँ। शायद छेड़ाछाड़ी का मेरा स्वभाव भी है। यह प्रेम की चिन्ता भी हो सकती है कि न जाने कब मैं प्रेम के बारे में कुछ यूँ ही कह दूँ और आशा भाभी सारी व्यंजना पर पानी फेर कर उसे अभिधा में ले लें, इसीलिए

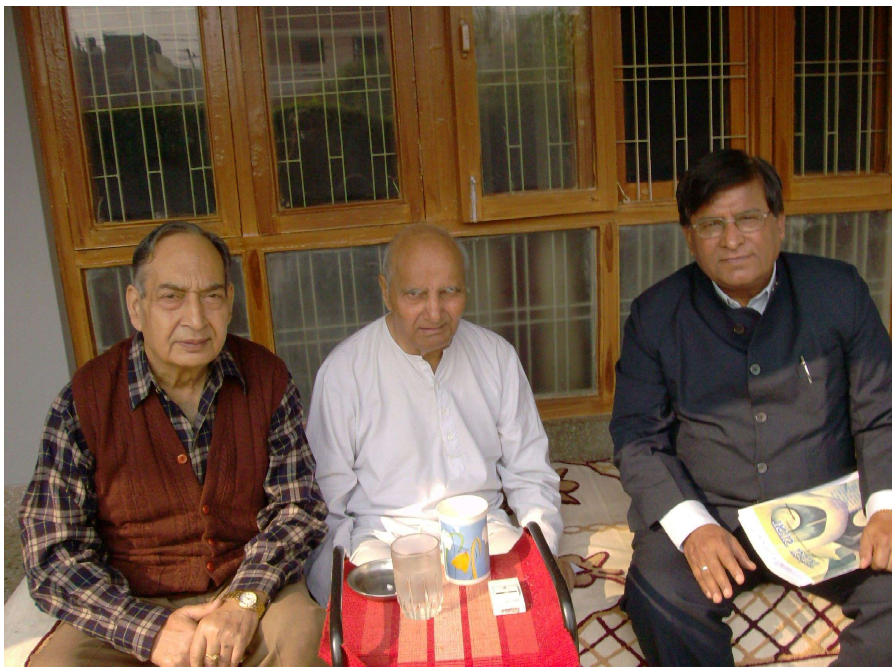

जब कभी मैं तथाकथित बकने की मुद्रा में होता हूँ, तो प्रेम की आंगिक-वाचिक चेष्टाएँ देखते ही बनती हैं, पर आशा भाभी हैं कि सब गुड़ गोबर कर देती हैं। निष्ठावान पत्नी की तरह पति को बचा लेती हैं।

प्रेम गज़ब का निबाहू बेटा है। कभी-कभी तो इस हद तक कि मन कचोट-कचोट जाए। मैंने उसे फिर-फिर ऐसे बंदे तक के साथ निबाह करते पाया है जिसने अपने स्वार्थ के लिए उसे चकनाचूर तक किया है। कई बार उसने अपनी व्यथा का मुझे भागीदार बनाया है, मुझसे समर्थन भी लिया है, पर मैंने फिर उसे उसी व्यथा-स्रोत से जुड़े हुए पाया है। किया भी क्या जाए। कमाल की किडनी है उसकी। वह उत्तेजित भी होता है, तो शांत होने के लिए। एक प्रकार के समर्थन के लिये। शायद उसका बूता ही नहीं है कि वह सम्बन्ध तोड़ू झगड़ा भी कर सके। यहाँ वह मुझसे अलग है। नहीं जानता यह उसके अहंकार के विलयन की स्थिति है या स्वाभिमान की समझ के गलत अर्थ की। ख़ैर इसका लाभ उसे इतना जरूर है कि वह कई नावों में एक साथ तैर सकता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रेम जहाँ तक बन पड़ता है, एक-दूसरे की लाग-लपेट के लिए खुद को न प्रतिबद्ध होने देता है, न माध्यम ही बनने देता है। वह पूरे धैर्य के साथ किसी के प्रति आपके सही-गलत मन को सुनेगा और एक मौन सहानुभूति भी देगा, लेकिन किसी और का भी स्पष्ट पक्षधर नहीं बनेगा। वह अपनी स्थिति सहज ही उबारकर रख सकता है। वह अपनी भूमिका कुछ इस तरह निबाहेगा कि आप उस पर विश्वास करें, उसे भरोसे का आदमी समझें। गलत़फहमियों को वह साफ करने की भी आदत रखता है, एक मायने में वह सयाना भी है। कभी यदि आपने उसे गलत समझने की भूल की है तो वह आपको समय के रूप में मौका देगा। उदासीन रहकर। और जब आप उसे ठीक समझ लेंगे तो वह आपसे वैसे ही मिलेगा जैसे मिलता रहा था। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रेम से मज़ा लिया जा सकता है। वह एक ऐसा साथ है जो आकर्षक है और हमेशा साथ रखने लायक है। आप उसे अपनी कठिन परिस्थितियों में अपने पास पाएंगे, बल्कि उसकी अनौपचारिक उपस्थिति को महसूस करेंगे। तन, मन, धन से, लेकिन वह एक बड़ा खतरनाक आदमी भी है। खासकर मेरे-जैसे भावुक आदमी के लिए। उसका उपर्युक्त गुण किसी मीठे जहर से कम नहीं है। वशीकरण मंत्र की तरह है एकदम। वह कब आपको अपने ऊपर निर्भर कर लेगा, आपको पता भी नहीं चलेगा। पता तभी चलेगा जब वह आपकी किसी जरूरत में अपनी किसी परम विवशता के कारण पेश नहीं हो पाएगा। वह उस हद तक अपने ऊपर निर्भर करने में समर्थ है कि मित्रों में पहला फोन आप उसे ही करना चाहें, कहीं जाना हो तो सबसे पहले, साथ के लिए, वही याद आए। कोई खुशी या राज़ की बात हो या फिर रंज की ही, आप सबसे पहले उसी के साथ शेयर करें। ऐसा आदमी कितना ख़तरनाक हो सकता है आपकी भावनाओं के लिए। उसमें कुछ-कुछ नेतायी गुण भी हैं। यूँ नेता बनना उसकी महत्वाकांक्षा नहीं है। हाँ उसे मौजमस्ती के लिए व्यक्ति-समूह ज़रूर चाहिए।

कभी-कभी वह आपको रहस्यमय लग सकता है। आपसे कुछ छिपाता हुआ-सा। अपनी योजनाओं के बारे में, किसी विशिष्ट यात्रा के बारे में, आने वाली पुस्तक के बारे में, मिलने वाली किसी उपलब्धि के बारे में, यहाँ तक कि कभी-कभी किसी विशिष्ट व्यक्ति से मिलने जाने के सिलसिले में भी। मैंने अपने संदर्भ में भी एक-आध बार उसे रहस्यमय पाया है, लेकिन उसकी मुश्किल यह है कि वह अपने रहस्य को सर्वथा रहस्य नहीं बना सकता क्योंकि किसी न किसी सम्बद्ध व्यक्ति को तो उसे बताना ही पड़ता है। यदि उस सम्बद्ध व्यक्ति से आपको उसका रहस्य पता चल जाए और आप उसे उस पर जाहिर कर दें तो वह सफाई देने के सिवाय कुछ नहीं कर पाता। इस मामले में वह मेरे एकदम विपरीत है। मुझसे तो बताए बिना रहा नहीं जाता।

चाहे बीच में कोई काम-बिगाड़ू ही क्यों न टकरा जाए। असल में, काम हो जाने से पूर्व उसकी चर्चा न

करना प्रेम का प्रेम-दर्शन है। कठिनाई तब होती है जब इस दर्शन की कभी-कभार अति हो जाती है। आज प्रेम व्यंग्य के क्षेत्र में अपना स्थान रखता है। उसकी उपेक्षा द्वेष या पूर्वाग्रहवश ही की जा सकती है। ज़ाहिर है उसने अपना स्थान अपनी सृजन-क्षमताओं से प्राप्त किया है।

एक के बाद एक उसके अनेक व्यंग्य-संग्रह सामने आ चुके हैं, दूसरी विधाओं की पुस्तकें अलग हैं।

पर उसके जीवन के कुछ दूसरे ऐसे पहलू भी हैं जो बड़े दिलचस्प हैं और उसके सर्जक रूप के बरवस आप को चौंका सकते हैं। मसलन प्रेम की रुचि तरह-तरह के खेल—क्रिकेट, बैडमिन्टन आदि खेलने में तो है ही, क्रिकेट मैच को देखने में भी उसकी दीवानगी देखते ही बनती है। शेयर बाज़ार में डूबते-उतरते और उसका लुत्फ लेते भी आप उसे देख सकते हैं।

वह फिल्म देखने का भी शौक़ रखता है। हर प्रकार की बातचीत में भी उसकी दिलचस्पी है। मुझे हमेशा लगा है कि प्रेम में जहाँ एक ओर गाम्भीर्य है, परिपक्वता है वहीं दूसरी ओर एक खिलंदड़ापन भी है। शायद उसका यह खिलंदड़ापन ही है जो उसे न जीवन में बूढ़ा और कमज़ोर होने देता है और न साहित्य में ही। उसके साहित्य की शैली भी उसके इस मिश्रित स्वभाव से मेल खाती है। वह भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश से अभिव्यक्ति-उपादान उठाता है और उनके द्वारा अपने समय की सामान्य और मामूली सी लगने वाली विद्रूप स्थितियों को सशक्त ढंग से घनीभूत करते हुए अभिव्यक्त करता है, यानी वह सहज-सरल ढंग से गम्भीर है। गम्भीर दिखकर गम्भीर नहीं है। वह आपको हरदम नैतिकताओं की बड़ी-बड़ी गठरियों के नीचे दबा नज़र नहीं आएगा। एक जीता-जागता इहलौकिक सहज आदमी ही नजर आएगा। अपने गुण और कमजोरियों के साथ। सबमें से एक। उसका एक प्रिय चरित्र है राधेलाल। कभी-कभी राधेलाल को आत्म व्यंग्य के रूप में देखना भी दिलचस्प हो सकता है।

प्रेम में अपने साहित्य को लेकर भी एक खास बर्दाश्त भाव है। वह इतना कुछ लिखने और अच्छा लिखने के बावजूद अपनी लेखनी की उपयुक्त पहचान के अभाव में कुंठित नज़र नहीं आता। कभी-कभार विचलित ज़रूर हुआ है, बल्कि मैं ज़्यादा परेशान हो उठा हूँ, खासकर जब देखता हूँ कि उससे कम योगदान करके भी कितने ही साहित्यकार पुरस्कारों आदि के रूप में पहचान प्राप्त कर चुके हैं।

प्रेम भले ही सबके लिए व्यंग्यकार हैं, पर मेरे लिए वह एक कवि भी हैं। मैंने जब-जब चाहा है, प्रेम ने अपना कवि रूप मुझ पर उजागर किया है, ठीक वैसे ही जैसे उसके चाहने पर मैंने भी व्यंग्य के क्षेत्र में नगण्य घुसपैठ की है। प्रेम की कविताएँ मैंने 'दूसरा दिविक' में प्रकाशित की थीं। असल में, अपने सम्पादन में वह मेरी उपस्थिति चाहता है और जब मैं सम्पादन करता हूँ तो उसकी

उपस्थिति चाहता हूँ। इसे कोई हमारी निजी कमजोरी भी मान ले तो स्वीकार है। प्रेम को एक दूसरे ढंग से भी समझा जा सकता है। मसलन वह परम सत्यवादी हो या न हो, पर झूठा नहीं है। वह आपकी अपेक्षा के अनुकूल आपके लिए भावुक हो या न हो, पर वह आपका अहित नहीं करेगा और न ही वह बेकद्रा है। कभी-कभी वह आपको जरूरत से ज्यादा तटस्थ और निरपेक्ष दिख सकता है—आपसे पीछा छुड़ाता-सा, आपको बेसहारा-सा छोड़ते हुए भी, लेकिन पुकारने पर वह आपको सहारा न दे, ऐसा प्रायः नहीं हो सकता। वह आपसे पूरी तरह सहमत या निर्विवाद रहे न रहे, पर वह समझौताहीन प्रवृत्ति का नहीं है। उसकी प्रतिबद्धताएँ कितनी सशक्त हैं, प्रश्न यह महत्त्व का नहीं है, पर वह हठी या जिद्दी नहीं है। उसकी सब रुचियाँ, दिलचस्पियाँ आप से मेल खाएं या न खाएं, पर वह आपकी रुचियों के प्रति संवेदनहीन नहीं होना चाहेगा। साहित्य में भी, वह इस बात की परवाह करे न करे कि कौन उसकी रचना को कितना समझता-सराहता है या जान-बूझकर काटता है, पर वह दूसरों की पसन्दीदा रचनाओं की खुलेपन से प्रशंसा कर सकता है। वह आपके किसी नापसन्द व्यवहार पर कुढ़ता या उत्तेजित होता हो या नहीं, पर अन्ततः अविनम्र नहीं हो सकता।

और अब प्रेम को समर्पित यह कविता—

<u>दोस्ती</u>

वह सूरज
जो उगता है यहाँ मेरे क्षेत्र में
दिन भर की यात्रा करता
आश्रय पाता है तुम्हारे पास थका-माँदा।

मूँद देती हैं उसकी आँखें
तुम्हारी मीठी थपकियाँ।

आँखों में
लहरों की प्यास लिए
लौटा देते हो तुम उसे-बहुत धीरे, संभालकर
आँख लगे बच्चे-सा।

फिर उदित होता है सूर्य, यहाँ मेरे क्षेत्र में।

जानता हूँ
दिन भर की यात्रा करता
फिर पहुँचेगा तुम्हारे पास, थका-माँदा, तुममें आश्रय ढूँढ़ता
तुम्हारी थपकियों की चाह में।

ये थपकियाँ
जो झरती हैं
पूरी तुम्हारी देह से
नहीं ऊबने देतीं
सूरज को
यात्रा से।

नहीं होने देतीं अर्थहीन
सूरज का उगना
या होना अस्त ही।

दोस्त
क्या नहीं है दोस्ती भी
एक यात्रा सूरज की?
चाह लिए मीठी थपकियों की?
सोचता हूँ
न तुमने कभी माँगा है सबूत, न मैंने ही
पर हर बार जो सिद्ध हुई
वह नहीं थी क्या
दोस्ती ही?

नवल-प्रेम एक लव स्टोरी

डॉ. हरीश नवल

बिना किसी पूर्व सूचना के श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी जी के देहरादून वाले घर में पहली बार मैं और प्रेम जनमेजय 1991 के दिसंबर मास में गए थे। घंटी बजाई, श्रीमती त्यागी ने अपने कक्ष की खिड़की का परदा हटाकर बरामदे में खड़े प्रेम तथा कुछ दूरी पर लॉन की तरफ फूलों को ताकते मुझे देखा, भीतर से त्यागी जी की आवाज

आई, 'कौन है?' श्रीमती त्यागी की आवाज गई, 'इधर तो प्रेम जनमेजय हैं, उनके साथ कोई दूसरे भी हैं, शायद हरीश नवल ही होंगे, मैं ड्राइंगरूम का दरवाजा खोलती हूँ।' मैं और प्रेम एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराए। तभी त्यागीजी की वाणी गूँजी, शायद क्यों? होंगे ही हरीश नवल। जहाँ प्रेम वहाँ नवल, जहाँ नवल वहाँ प्रेम।

'शरद जोशी प्रसंग' पर भोपाल में भी यही हुआ। नईम जी ने मुझे देखा, बोले, 'प्रेम कहाँ है?' सरोज कुमार जी उधर प्रेम से हाथ मिलाते हुए पूछ रहे थे, 'हरीश कहाँ है?' दयाप्रकाश सिन्हा, नंदनजी, यशवंत व्यास, ज्ञान चतुर्वेदी से लेकर आशुतोष देशमुख तक हम दोनों को एक-दूजे के बिना पहचान भी नहीं रहे थे।

इतनी घनिष्ठता होने या दीखने पर मुझे प्रेम जनमेजय के विषय में लिखने में समझ नहीं आता कि कहाँ से शुरू करूँ। छोड़ने का मन नहीं होता, पर इतिहास छोड़ दूँ और केवल प्रेम के व्यक्तित्व के विषय में लिखना चाहूँ, तो उसकी इतनी सारी शेड हैं कि परीक्षार्थी की भाँति खंड-खंड में रेखाँकित करना होगा ।

व्यंग्यकार के रूप में प्रेम की सबसे बड़ी ताकत मुझे उसकी भाषा और उपमान लगते हैं। जीवन की नित्य प्रति देखी जाने वाली तथा अमहत्त्वपूर्ण समझी जाने वाली स्थितियों पर जब प्रेम लिखते हैं, तो हम सोचते हैं, 'अरे! इस पर भी लिखा जा सकता था?' और यह आश्चर्य वैसा ही होता है जैसा ब्रेख्त के नाटकों के विषय देखकर होता है। कमसिन अवस्था में ही प्रेम व्यंग्यकार के रूप में ख्यात हो गए थे। उस दिन एक

शोधकर्ता मिल गए, प्रेम के विषय में बात करते रहे, प्रेम-साहित्य को पढ़कर और अपने बचपन से निरंतर पढ़ने पर उनको लगा था कि प्रेमजी की अमृत जयंती होने वाली होगी। हिन्दी गद्य व्यंग्य लेखन पर 1991 में माध्यम का युवा सम्मान पाने के प्रथम हकदार प्रेम ही थे। इस श्रेष्ठ और जेनुइन चयन पर चयनकर्ता भी साधुवाद के अधिकारी रहे। प्रेम के लिए यह उसको मिला पहला सम्मान था जो पहले प्यार की तीव्र अनुभूति के साथ-साथ प्रेम में यह गौरव भी देता है कि उनका नाम शरद जोशी-जैसे समर्थ और यशस्वी नाम के साथ जुड़ा था; जिन्हें वरिष्ठ सम्मान मिला था। कुछ वर्ष पहले स्नेहलता व्यंग्य-भूषण पुरस्कार उन्हें उनके हक के कारण ही मिला है।

1949 में इलाहाबाद में जन्मे, दिल्ली में युवा हुए और मूलतः पंजाब से संबद्ध प्रेम के व्यक्तित्व में हम इलाहाबादी बौद्धिकता, भाषा संस्कार, पानसुख और लेखकीय अंदाज, दिल्ली की वैभवप्रियता, ईमानदारी से धन अर्जन-वर्द्धन की कामना, सोसायटी मूवता, अहिंसक चतुराई और व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा पंजाब की मस्ती, कबीरपन और मेहनतप्रियता देख सकते हैं।

प्रेम (ढाई आखरवाला) के जितने रंग होते हैं प्रेम जनमेजय के भी उतने ही हैं, बल्कि अनेक विरोधी रंग भी हैं। शेयर मार्किट का ब्रोकर मंगल सोच भी नहीं सकता कि प्रेम एक बड़े साहित्यकार हैं, बकौल उसके वह शेयर बाजार के विषय में प्रेम के व्यापक ज्ञान में से शेयर करता है (हुए ना आप भी हैरान!) क्रिकेट मैच देखने/कमेंट्री सुनने में भी उसकी मशहूरी है। उसके पड़ोसी श्री मलिक को पता ही नहीं कि जिन प्रेम प्रकाश जी के साथ वह सुबह सैर करता हुआ क्रिकेट पुराण वाचन और श्रवण करता है, जिसके लिए क्रिकेट के मामले में प्रेम, व्यास जी और स्वयं सूत जी महाराज हैं, वे ही प्रसिद्ध लेखक प्रेम जनमेजय हैं। अपने कॉलेज की स्टाफ एसोसिएशन के अध्यक्ष डॉ. प्रेम प्रकाश, जो दो वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ के लिए एक हव्वा बने हुए थे, उनके लिए शिक्षक संघ के पदाधिकारी कल्पना भी नहीं कर पाते होंगे कि जिस एक व्यक्ति की ढाल के कारण उनके तीर तलवार खुंडे हो रहे थे, वह व्यंग्य का एक महत्त्वपूर्ण तीरंदाज है। बढ़िया से बढ़िया खाने-पीने के शौकीन प्रेम को नरूला रेस्टोरेंट के आइसक्रीम पार्लर के सेल्समैन, कॉफी होम के वेटर, मोती महल और सिंह कबाब के सरदार जी, बी.वन मार्केट का पान वाला एक बड़ा और बिगड़ा रईस ही समझते हैं, जो टिप हमेशा डबल ही देता है और आइसक्रीम भी डबल खाए बिना उसे मजा नहीं आता।

साक्षरा अपार्टमेंट्स के अनेक निवासी प्रेम को अलसुबह, मुद्रिका सड़क पर सैर करते देखते हैं, तो अक्सर बात करते हैं कि प्रेम जी इतना घूमते-घामते रहते हैं, कुछ लिख-पढ़ भी लिया करें। जब प्रेम जी साक्षरा अपार्टमेंट्स की सोसायटी के सचिव थे और दिन-रात सोसायटी के काम में लगे रहते थे, तब भी बुजुर्गनुमा पड़ोसीजन उन्हें लिखने-पढ़ने के लिए चेताया करते थे और यह तब की बात है, जब प्रेम का तीसरा व्यंग्य-संग्रह 'पुलिस-पुलिस' आ चुका था और 'मैं नहीं माखन खायो' छप रहा था। भारती जी की भाँति सारा दिन व्यस्त रहने वाले प्रेम लिखने के मामले में भी उन जैसे अगले दिन लिखने वाले ही हैं।

आगे बढ़ने से पूर्व मैं आपको इत्तिला दे दूँ कि प्रेम शेयर मार्किट ब्रोकर मंगल, कमेंट्री शौकीन मलिक, शिक्षक संघ के पदाधिकारी, सिंह कबाब के सरदार जी और बी-वन का पान वाला—ये सब दूर-दूर तक मुझे नहीं पहचानते और साक्षरा में ही मैं रहता था, पर सैर करता पाया नहीं जाता था, तो भी हमारी दोस्ती बेजोड़ रही है, मैंने बताया था न कि ये ही तो प्रेम के विशिष्ट अंदाज हैं। हम दोनों ने एम.ए. एक ही कॉलेज से किया है, मैं एम. ए. फाइनल में था और प्रेम एम.ए.पूर्वार्द्ध में। हमने आठ साल तक एक ही कॉलेज में पढ़ाया। जब मैं उस कॉलेज का विभागाध्यक्ष था, तब मैंने प्रेम और रमेश उपाध्याय को उस विभाग में शामिल कर विभाग की शान बढ़ाई

थी। हम तीनों की तिकड़ी उस समय प्रसिद्ध थी और हम साहित्यिक चर्चाओं में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया करते थे। मैंने और प्रेम ने कई साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें व्यंग्य पर किया गया 1974 का कार्यक्रम, क्या व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा है, खास चर्चा में रहा। उस कार्यक्रम में जैनेन्द्र कुमार, रवीन्द्रनाथ त्यागी, कन्हैयालाल नंदन और विजयेन्द्र स्नातक-जैसे दिग्गज साहित्यकारों ने भाग लिया और मीडिया में भी उसकी विशेष चर्चा हुई, 'धर्मयुग' में रिपोर्ट छपी। हम दोनों की रचनाएँ समांतर रूप से 'धर्मयुग' और 'सारिका' में छपती रहीं। हम दोनों ने एक साथ प्रयास किया कि व्यंग्य विधा को गम्भीरतापूर्वक लिया जाए और हमारे प्रयास सफल भी हुए। हम दोनों ने अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ हिन्दी वालों की छवि सुधारने का प्रयास किया। हमने ठान लिया कि हम यह कभी नहीं लगने देंगे कि हिन्दी के अध्यापक किसी और से कुछ कम हैं। यह कहा जा सकता है कि हमने हिन्दी अध्यापकों की छवि को फेसलिफ्ट दिया। हम दोनों ही प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. उदय भानू सिंह, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. रामदरश मिश्र और डॉ. निर्मला जैन जैसे श्रेष्ठ अध्यापकों से पढ़े हैं। हम दोनों ही 'गगनांचल' पत्रिका से जुड़े रहे और संपादक कन्हैयालाल नंदनजी के सहायक भी रहे। हिन्दी व्यंग्य के उत्थान के लिए हम दोनों अनूप श्रीवास्तव के निर्देशन में चल रही संस्था 'माध्यम' के साथ भी जुड़े रहे और लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय संगोष्ठियों और नवीन विषय चयन में भी भूमिका निभाते रहे हैं। साहित्यिक आयोजन के इतर हमारी दोस्ती और भी कई संदर्भों में जीवित रही और पुष्पित व पल्लवित होती रही। मैं शाहदरा में रहता था और प्रेम की ससुराल शाहदरा बनी, तो आशा, यानी प्रेम की अर्धांगिनी का मेरी बहन होना स्वाभाविक ही हो गया है। हम दोनों एक साथ ही यूनिवर्सिटी टीचर्स ग्रुप हाउसिंग कॉपरेटिव सोसायटी के मेम्बर बने थे। हमारे घर भी एक ही ब्लॉक में निकले, मेरी स्टडी प्रेम की छत के नीचे है।

यह प्रेम बहुत ही स्वाभिमानी है, इससे दोस्ती करने से पहले कई चेतावनियाँ मैं आपको दूँगा। फिलहाल उसके स्वाभिमान के केवल दो किस्से बताता हूँ। नंदनजी को आप जानते ही हैं, जी हाँ अपने कन्हैयालाल नंदन जिन्हें आदमी को समझने की खूब तमीज थी, हम दोनों को ही बहुत प्यार करते थे। प्रेम एक दफा उनसे मिलने 'सारिका' के दफ्तर गए। भीतर चिट भिजवाई -नंदनजी ने बुलवाया नहीं, बाहर ही बाहर से बाहर कर दिया। घर लौटकर प्रेम भाई ने एक तीखा व्यंग्यात्मक पत्र नंदनजी को पोस्ट कर दिया। नंदनजी समझ गए भूल हो गई, उनका भी बड़प्पन कि प्रेम को प्रेमपत्र लिखा और फिर आलम यह हुआ कि आखिर तक नंदनजी प्रेम से घबराते हैं कि कहीं उसका स्वाभिमान टूटे नहीं और कहीं एक दनदनाता पत्र फिर से न आ धमके।

जब प्रेम के यहाँ टेलीफोन नहीं था, वह पड़ोस के फोन का प्रयोग करता था। एकाध बार उसने सुन लिया कि पड़ोसी प्रेम के फोन-प्रयोग की व्याख्या निंदनीय शब्दों में कर रहे हैं—अब प्रेम तो ऐसे हैं कि जो दिल में बुरा-अच्छा विचार हो यदि उन्हें बता दिया जाए तो स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत-प्रशंसा, अप्रस्तुत निंदा उन्हें बेचैन कर देती है। उन्होंने निश्चय कर लिया कि एक सप्ताह में फोन लगवा लूँगा। अब भला एक सप्ताह में उन दिनों में फोन लगता था क्या? अभी फोन बुक भी नहीं कराया था। भोपाल से डॉ. अंजनी चौहान को बुलाया और उनकी करामात से वी.आई.पी. कोटे से तुरंत फोन लगवाया। आखिरकार वो लेखक और पत्रकार तो थे ही। जो फोन लगा वह पूरे अपार्टमेंट्स में सबसे खूबसूरत फोन था।

यह शख्स कभी-कभी अनायास चुप्पी साध लेता है। आप सोचेंगे नाराज है, गुस्से में है, कुछ पूछेंगे, नहीं बताएगा। गहरी से गहरी बात दिल में कहीं गहरे में रख लेगा। शुरू-शुरू में जब ऐसा हुआ, तो मैं और मेरी पत्नी सुधा यही सोचते रहते थे कि हमने कौन-सी बात गलत कह दी जो नहीं कहनी चाहिए थी, दर्जनों बातों की लिस्ट

बन जाती। धीरे-धीरे जब प्रेम खुले तो उन्होंने एक दिन रहस्य बताया कि यदि कहीं भी किसी की कोई बात उन्हें चुभ जाती है तो वे शिथिल-से हो जाते हैं, बहुत कोशिश करते हैं, पर तुरंत मूड नहीं बदल पाते। बात चुभेगी कॉलेज में किसी सहयोगी की और वे चुप्पी साध लेंगे और परिवेश के सभी लोग सोचते रह जाएँगे कि शायद कोई गलती उनसे हो गई है। अजब से डिप्रेशन में आ जाते हैं प्रेम। पिछले लगभग पचास वर्षों से हर सोमवार को प्रेम, व्रत रखते हैं। कोई धार्मिक भावना नहीं केवल इसलिए कि स्व. लालबहादुर शास्त्री ने एक वक्त का भोजन छोड़ने की प्रेरक बात कही थी—प्रेम ने दोनों वक्त का ही छोड़ दिया था। मुझे भी यह भली आदत उनके संसर्ग से सात बरस तक रही, पर मैं किसी-किसी सोमवार भूल जाता था। वे कभी नहीं भूलते थे। एक पान वाले से प्रेम नियमित रूप से पान खाते थे, वह एक उत्साही किशोर था। उसकी आगे बढ़ने की इच्छा देखते हुए प्रेम ने उसकी खासी आर्थिक मदद की और आज वह एक छोटी दुकान का मालिक है। पान के पैसे नहीं लेना चाहता, किंतु प्रेम सदैव देते हैं और उसे प्रेरित करते हैं कि उसे अच्छी मार्किट में बड़ी दुकान खोलनी है, उस दुकान के खुलने पर वे निःशुल्क पान की सोचेंगे। आप दो-तीन वर्ष में ही उसकी दुकान मार्किट में देख लेंगे, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आजीवन उससे निःशुल्क पान खाने की व्यवस्था प्रेम बहुत जल्द कर लेंगे।

बड़े जीवट वाले जीव रहे हैं प्रेम जनमेजय। अंजनी चौहान के शब्दों में—'रफ-टफ हीमैन।' प्रातः से अपने स्कूटर पर निकलकर वे सत्तर किलोमीटर का दिल्ली का चक्कर लगाकर शाम को घर पहुँचते थे, यदि चंडीगढ़ जाने का कार्यक्रम बन जाए (जहाँ उनके माता-पिता व भाई रहते थे) तुरंत अपनी कार निकालकर तीन सौ किलोमीटर दूर चंडीगढ़ पहुँच जाते और जाते ही बिना कुछ खाए-पीए भतीजे-भतीजियों को चंडीगढ़ की सैर कराने ले जाते थे। वे बहुत ही पॉपुलर ताया जी रहे हैं। ताया जी जब वेस्टइंडीज से लौटकर आए, पारिवारिक जिम्मेदारियों से लद गए। बड़े भाई होने के नाते संपूर्ण परिवार की देख-रेख का जिम्मा वे स्वयं बिना कहे लेते रहे हैं। लौटकर उन्होंने अपने बेटों के विवाह संपन्न किए। उनके स्थायी आवास के प्रबंध किए। भतीजे-भतीजियों की शिक्षा-दीक्षा, करियर का ध्यान रखा। छोटे भाईयों को संबल दिया और बीमार पिता के रोग से युद्ध किया। पिताजी चंडीगढ़ में थे और प्रेम उन्हें नियमित रूप से फोन करते थे। उस दिन मैं और प्रेम हिन्दी भवन में डॉ. गोविंद व्यास के पास बैठे थे, एक गोष्ठी आरंभ होने को थी कि चंडीगढ़ से जरूरी फोन आया—पिताजी नहीं रहे थे। काँपते से प्रेम ने अपने को दृढ़ किया, हमें सूचना दी और मौन पर शांत उपक्रम से घर की ओर चल दिए तथा उसी संध्या परिवार को लेकर चंडीगढ़ स्वयं कार ड्राइव कर गए।

जून 2008 में प्रेम की श्रद्धेया माताजी का देहांत हो गया। मृत्युपर्यंत उनकी सेवा-सुश्रुषा प्रेम और आशा मन से करते रहे और वर्षों से उनसे छिपाकर रखा कि किस महारोग का उपचार किया जा रहा था। अब बताया जा सकता है कि माँजी को कैंसर था। माँ को खुश रखने में कभी प्रेम ने अपने भीतर का दुःख प्रकट नहीं होने दिया।

इस महाकष्टमय परिस्थिति के मध्य प्रेम का लेखन निरंतर गतिवान रहा, अच्छा लिखते हैं, स्तर से नहीं गिरते—अपने दम पर एक बड़ी पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' प्रकाशित करते हैं—वहाँ भी स्तर के साथ समझौता नहीं। सब कुछ जारी है—प्रेम स्वयं संभालते हैं, सबको संभालते हैं .... एक लाख का पुरस्कार मिला, तब भी खुश, न भी मिलता, तब भी खुश रहते। वे एक प्रकार से स्थितप्रज्ञ हैं।

फिलहाल मैं ही खुद को संभालता हूँ। प्रेमगाथा तो कभी विस्तार से मुझे लिखनी ही है, फिलहाल इसे उसका पुरोवाक् मान लिया जाए, तो बेहतर रहेगा। मेरे पास प्रेमगाथा लिखने की अपार सामग्री है, मैं ही लिखूँगा, क्योंकि रवींद्रनाथ त्यागी जी ने सच कहा था, जहाँ प्रेम वहाँ नवल, जहाँ नवल वहाँ प्रेम। सो शेष फिर कभी। आमीन!

सरापा व्यंग्यकार है प्रेम

महेश दर्पण

''गलत कुछ नहीं है, जो तुम करोगे, देश और पार्टी के लिए करोगे। रिश्वत खाओगे, तो देश के लिए। उपहार लोगे, तो पार्टी के लिए। तुम अपने समस्त कर्म इसके नाम अर्पण कर दो। इसकी चिंता मत करो कि तुम गलत कर रहे हो या सही, इसकी चिंता तो जनता करती है। अतः हे अर्जुन, इससे पहले कि और लोग दीमक बनकर इस देश को चाट लें, तुम हड़प जाओ।''

यह 'यदि महाभारत चुनाव भवति' शीर्षक प्रेम जनमेजय के व्यंग्य का एक अंश है। मार्च, 1990 में प्रकाशित 'सारिका' के 'व्यंग्य-विनोद-अंक' में प्रकाशित यह व्यंग्य तब तो चर्चित रहा ही था, आज भी प्रासंगिक है। मुझे याद है, इस अंक में अमृतलाल नागर, मुज्तबा हुसैन, विनोद शंकर शुक्ल, हरीश नवल आदि सहित अनेक व्यंग्यकारों की रचनाएँ थीं। एक तरह से यह अंक नागर जी को समर्पित था। 23 फरवरी, 1990 को उनका निधन हुआ था लखनऊ में। उनकी रम्य-रचना 'जुलाब की गोली' भी इस अंक में प्रकाशित की गई थी। प्रेमजी की रचना की विशेष चर्चा का कारण यह था कि उन्होंने 'चुनावी गीता' का नया कंसेप्ट खोजा था जो लगता है आज देश के हर राजनीतिक दल ने अपने गुप्त एजेंडे में शामिल कर लिया है।

प्रेम, मिजाज और अपने रचना सरोकारों में सरापा व्यंग्यकार हैं। मेरी उनसे पहली मुलाकात आठवें दशक में दिल्ली या साहिबाबाद में हुई है, फिर लगातार मिलना या फुनियाना होता रहा। मुझे याद है, सबसे पहले उनके प्रति आकर्षण का कारण था उनका पहला व्यंग्य-संग्रह 'राजधानी में गंवार'। उन दिनों दिल्ली का साहित्यिक वातावरण बेहद आत्मीय था। जगह-जगह रचनाओं पर बातें हुआ करती थीं। लोग अपनी कम, दूसरों की कृतियों की चर्चा करने में खुशी महसूस करते थे। ऐसे ही माहौल में प्रेम के व्यंग्य राजधानी में हर जगह चर्चा में आ गए। यह वह समय था जब रमेश बत्रा, जगदीश चंद्रिकेश, डॉ. विनय, रमेश उपाध्याय, अजित कुमार, रमाकांत, सुरेन्द्र मनन, हरीश नवल, दीपक रमेश, तरसेम गुजराल, प्रचंड आदि बेहद सक्रिय हुआ करते थे। प्रेम जनमेजय इनमें से हर किसी के साथ सक्रिय रहते।

प्रेम अपनी रचनाएँ सुनाते, दूसरों की सुनते हैं। समय-समय पर वह गंभीर आलेख भी लिखते, चूँकि उनकी रुचि व्यंग्य में धंसी-बसी थी, लिहाजा गुरु ने 'प्रसाद के नाटकों में हास्य-व्यंग्य' जैसा काम पूरे मन से किया। पंजाबी से हिंदी में आकर भी प्रेम का संस्कार विशुद्ध हिंदी का है। उनका संभाषण और लेखन खांटी हिंदी वाला है। वह जानते हैं कि समकालीन साहित्य में व्यंग्य का स्थान कैसे बना रह सकता है? बात शायद 1988 की है। 'सारिका' के एक व्यंग्य विशेषांक के अतिथि संपादक थे शरद जोशी। इस अंक के लिए 1987 के व्यंग्य का सर्वेक्षण प्रेम जनमेजय ने किया था, तब उन्होंने इस ओर ध्यान दिलाया था कि पाठक वर्ग और लेखक वर्ग दोनों रूपों में व्यंग्य एक लोकप्रिय विधा बनता जा रहा है। अनेक कहानीकार इस क्षेत्र में प्रयोग कर रहे हैं। उनका यह इशारा बिलकुल सही था कि वस्तुतः भारत की वर्तमान परिस्थितियाँ इतनी विसंगतिपूर्ण हैं कि व्यंग्य किये बिना लगता है जैसे अभिव्यक्ति को पूरी जमीन नहीं मिली है।

यह वह दौर था जब हरीश नवल के 'बागपत के खरबूजे', रविन्द्रनाथ त्यागी के भद्र हास्य की सुघढ़ रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन 'रविंद्रनाथ त्यागी की प्रतिनिधि रचनाएँ' शरद जोशी का 'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे' श्रीलाल शुक्ल का 'उमराव नगर में कुछ दिन', हरिशंकर परसाई का 'गंगा' में प्रकाशित होने वाला स्तम्भ खूब चर्चा में थे। प्रेम जी ने बगैर किसी लाग-लपेट के वर्षभर में प्रकाशित हुए व्यंग्य साहित्य पर अपनी सुलझी हुई राय

दी थी। इस मामले में उन्होंने दिखावटी व्यंग्यकारों की खबरें भी ली थीं। घिसे-पिटे विषयों पर शब्दों की कलाबाजी खाकर भौंडा हास्य उत्पन्न करने वाले अनेक महारथी मंच पर जोकरनुमा हास्य पैदा करके, व्यंग्यकार का बिल्ला लगाये गर्वोन्नत मस्तक से इठलाते घूमते हैं।

प्रेम जी ने महज व्यंग्य-विधा का सर्वेक्षण-समीक्षा की हो, ऐसा नहीं है। मुझे स्मरण है सन् 1983 के अप्रैल के 'सारिका' के अंक में उनकी लिखी सर्वे-समीक्षा 'सन बयासी की कहानियों का संसार' भी प्रकाशित हुई थी। इस समीक्षा में उन्होंने रचना-वर्षा की उपलब्धि के रूप में युवा रचनाकारों को मिलने वाली जमीन का जिक्र ठीक ही किया था। जिक्र ही नहीं, उन्होंने छत्रपाल, नरेन्द्र मौर्य, धीरेन्द्र अस्थाना, अवधेश श्रीवास्तव सरीखे उस वक्त के युवा कथाकारों के सद्य प्रकाशित संग्रहों की चर्चा भी की थी। उस समय सक्रिय चर्चित कथाकारों में नरेन्द्र कोहली, चित्रा मुद्गल, इंदु बाली, रमेश उपाध्याय, अशोक अग्रवाल, असगर वजाहत, राजेश जोशी, मृणाल पांडे, बलराम, सुरेश उनियाल सहित अनेक कथाकारों की चर्चा उन्होंने की थी। स्मृति में ये बातें इसलिए अटकी रह गईं, क्योंकि खाकसार तब 'सारिका' में ही काम किया करता था।

प्रेम तब 10 दरियागंज के दफ्तर आकर 'सारिका' के साथियों से मिलते थे। सुरेश उनियाल को 'पड़ोसी' कहकर संबोधित करते तो पान मुँह में दबाए रमेश बत्रा मुस्कुरा देते। 'सारिका' की चाय का मजा न आता, तो सड़क पर आकर सरदारजी की दुकान पर चाय पी जाती। सब खूब ठहाके लगाते और प्रेम का आना सचमुच आना लगता। वह तब भी खूब पढ़ते थे और अब भी वही सिलसिला जारी है। कॉफी हॉउस में जाने कितनी बैठकें हुई होंगी।

इस बीच उनकी अनेक कृतियाँ आई हैं, लेकिन सच कहूँ तो मुझे 'बेशर्मेव जयते' और 'पुलिस पुलिस' के साथ 'शहर की चोरी' की याद अक्सर आती रहती है। दिल्ली में धुर गाँव से आए किसी नए चेहरे को देखता हूँ, तो सोचता हूँ मैं भी कभी ऐसे ही आया था 'राजधानी में गंवार' की तरह।

मैंने प्रेम जनमेजय को अनेकों रूपों में देखा है—मित्र, लेखक, शिक्षक, पारिवारिक, गोष्ठी संचालक, कुशल सम्पादक और पढ़ाकू। जो तीन रूप में मुझे सबसे अधिक वे भाए हैं, वे हैं— व्यंग्यकार, संपादक, मित्र। उनसे मिलकर कभी असहज नहीं लगा, बल्कि सामने वाले को किस तरह सहज किया जाता है, यह वह बखूबी जानते

हैं। मैंने दिल्ली में बहुतों को चेहरे बदलते पाया है, लेकिन प्रेम उन बहुत कम लोगों में से, जो जैसे थे, वैसे हैं। सम्मान देते हैं। सम्मान पाते हैं।

मुझे अच्छी तरह से याद है 'इंडो रशियन लिटरेरी क्लब' की रशियन सेंटर में होने वाली अनेक गोष्ठियाँ। दिविक के बाद वही थे, जिन्होंने उस संस्था की गरिमा को बनाये रखा। कई बार वक्ता-श्रोता के रूप में उन्होंने मुझे आमंत्रित किया और अच्छे अनुभव कराए। उनका संचालक रूप यहीं मैंने करीब से देखा। वह अपने प्रेम-व्यवहार से हर पीढ़ी के रचनाकारों को न सिर्फ एकत्र कर लेते, वरन् उनसे सार्थक संवाद भी करवा लेते। माहौल कुछ बोझिल होने को होता, तो तुरंत अपने किसी चुटीले कमेंट से उसे सहज कर देते।

'व्यंग्य यात्रा' के संपादक के रूप में मैंने उन्हें अद्भुत परिश्रमी पाया। वह उन बहुत कम संपादकों में एक हैं; जो कई-कई बार फोन अथवा मेल पर आग्रह कर अच्छे-अच्छे से लिखवा लेते हैं। अनेक रचनाकार केन्द्रित अंकों का तो उन्होंने कुशल संपादन किया ही है, उनके द्वारा संपादित हिंदी व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य पर आधारित 'व्यंग्य यात्रा' का अंक एक उपलब्धि ही है।

इस अंक में उन्होंने पाथेय में जहाँ श्रीलाल शुक्ल, नामवर सिंह, नरेन्द्र कोहली, रमेश उपाध्याय, शंकर पुणतांबेकर, कृष्ण चराटे की रचनाओं को जगह दी, वहीं चिंतन, चिंता, त्रिकोणीय के अतिरिक्त अनेक व्यंग्य-रचनाएँ भी दीं। इस सबकी विशेषता यह भी कि लेखकों को स्वयं अपनी व्यंग्य रचना का न सिर्फ चुनाव करना था, बल्कि उस पर एक टिप्पणी भी देनी थी।

अधिकांश लेखकों ने यह कार्य किया और बखूबी किया। इसके पीछे मूल प्रेरणा संपादक प्रेम जनमेजय की होती थी। अपना अनुभव साझा करूँ, तो कहना होगा कि अपनी एक कहानी को चुनकर एक टिप्पणी भी उस पर लिखने का काम मैं अगर कर सका तो महज इसलिए कि यह प्रेमजी का आग्रह था। वह यह आग्रह करना जानते हैं और यह भी जानते हैं कि उसे पूरा कैसे करवाया जाता है। 'व्यंग्य-यात्रा' जैसी पत्रिका को उन्होंने न सिर्फ स्थापित किया, बल्कि सम्मान भी दिलाया। वह लेखकों को ही नहीं साहित्य-प्रेमियों को भी बराबर का आदर देते हैं। मुझे याद पड़ रहा है कि 'रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार समारोह' की रपट के साथ उनके ऐसे फोटो में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रही। सबसे अच्छी बात यह है कि व्यंग्य की प्रतिनिधि पत्रिका निकाल कर उन्होंने यह दिखा दिया है कि वह जो काम हाथ में लेते हैं, वह पूरे मन से करते हैं। हमारे समय का शायद ही कोई उल्लेखनीय व्यंग्यकार हो जो इस पत्रिका में न छपा हो।

संपादन का कौशल प्रेमजी ने 'गगनांचल' में भी दिखाया है। वह जिनके प्रति सम्मान, प्रेम, श्रद्धा रखते हैं, उसके प्रति उनमें वह भाव सचमुच होता है। इसका प्रमाण कन्हैयालाल नंदन की स्मृति में निकला इस पत्रिका का अंक है। इसे उन्होंने 'स्मृति-चन्दन' कहा है। इस अंक में उनका यह भाव-त्रय साफ नजर आता है।

वह स्वयं को नहीं, दूसरों को सामने या केंद्र में रखने में विश्वास रखते हैं। मुझे याद है, एक बार जब मैं उनके निवास पर पहुँचा, तो लन्दन में बैठे कवि-कथाकार मित्र के साथ उन्होंने टेलीफोनिक काव्य-संध्या करवा डाली। कविता सुनी गई, उस पर चर्चा हुई और एक शाम खुशनुमा। यह उनका सहज स्वभाव है। वही हैं जो एक साथ विविध विचारों के लेखकों को अपने अंक में जगह देने के साथ ही उन्हें समादृत करते हैं। नहीं तो आज हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं में पहले वाला वह खुलापन है कहाँ। जन्म के हिसाब से देखें तो हमारे प्रेम प्रकाश कुंद्रा यानी प्रेम जनमेजय 75 वर्ष के हैं, लेकिन आप उनसे मिलते समय ऐसा कतई महसूस नहीं कर सकते। यही ऊर्जा उनकी शक्ति है। इसी ने उन्हें ऐसा बनाया है कि आज व्यंग्य-साहित्य का इतिहास उनके बगैर न लिखा जा सकेगा।

आगे निकलने में कैसी शर्म?

नासिरा शर्मा

प्रेम जनमेजय की पुस्तक 'शर्म मुझको मगर क्यों आती' से गुजरते हुए जहां गम्भीर स्थिति पर व्यंग्य बाण मुस्कुराने पर मजबूर करते हैं वहीं पर अतीत की खिड़कियां भी हवा महल की तरह खुल जाती हैं जिसमें से अनेक चेहरे एक साथ झांकने लगते हैं। उसमें सबसे पहला चेहरा उस फकीर का है जिस पर उर्दू के व्यंग्यकार अजीम बेग चुगताई ने कलम उठाई थी जो भैंस पालता था मगर भीख मांगता था। व्यंग्य कृति से यह मेरा पहला साक्षात्कार था। प्रेम जनमेजय के यहां व्यंग्य की स्थिति कोई घटना मात्र नहीं होती है, बल्कि जिस तरह तनाव एवं दबाव से कहानी और कविता निकलती है उसी पीड़ा से प्रेम के व्यंग्य जन्म लेते हैं। उनके व्यंग्य के पीछे गहरी सामाजिक वेदना और सरोकार की झलक मिलती है। इसी कारण उनकी भाषा हँसाने की गैर जरूरी कोशिश में सतही नहीं हो पाती है, बल्कि मुहावरे और शब्दों के उचित प्रयोग से वह बेहतर गद्य का मजा पाठक को देती है :

''मुझे लग रहा है जैसे मैं नंगों की बस्ती में कपड़े पहन कर खड़ा हो गया हूं और चारों ओर से लोग मुझ पर हँस रहे हैं। मैं जितना कपड़े पहनता हूं, उतना ही निर्वस्त्र हो जाता हूं।'' (शर्म मुझको मगर क्यों आती?)

यह अन्त किसी कहानी का भी हो सकता था। दरअसल प्रेम जनमेजय के अन्दर एक सामाजिक आलोचक के साथ एक कहानीकार भी मौजूद है जो व्यंग्य को कहानी का रूप दे बैठता है; उसमें पात्र है, घटना है, स्थिति है, अभिव्यक्ति है और संवेदना के साथ पीड़ा भी है जो विचार के सूखेपन की शिद्दत को कम कर आपको यथास्थिति से गहरा परिचय कराती है।

''बहुत हो लिया इंतजार अब तू फूट ले यहां से, समझा। थोड़ी देर बाद समाधि पर बड़े लोग आने वाले हैं. ..जेड सिक्योरिटी वाले लोग...चिलगोज़े की औलाद, अगर घेर लिया गया तो घर वालों को पता तक न चलेगा... समझा!'' पुलिस वाले ने स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती पर मुझे मेरी आजादी का मतलब समझाया। अब तक मैं बहुत कुछ समझ गया था। बापू की समाधि के पास खड़ा कुत्ता डंडे खाता है और फटीचर मास्टर गाली खाता है। थोड़ी दूर खड़ी एक खोखली बकरी मिमियाई, मुझे लगा कि वह आवाज कहीं मेरे अन्दर से आ रही है। (धोबी के कुत्ते) व्यंग्य लेख में प्रेम जनमेजय की तकनीक अन्त में ऐसा कुछ कहना जो व्यंग्य लिखने की प्रेरणा बनी। उन्हें फारसी के कहानीकार अब्बास हकीम की याद दिलाती है। जिनका अपना अंदाज है, जो उन्हें अपने समकालीनों से अलग पहचान देती है वह उनका 'स्टाइल' है अर्थात कहानी की गिरह को अन्त में अपनी टिप्पणी से खोलना। छोटी-छोटी प्यारी कहानियां शिल्प, भाषा, कथावस्तु, पाठ में अलग होने के बावजूद प्रेम जनमेजय को पढ़ते समय वही अनुभूति होती है जो अब्बास हकीम को पढ़कर चेहरे पर कटाक्ष भरी मुस्कान का उदय होता है। प्रेम के यहां अपना मजाक उड़ाने की भी क्षमता है। उनके व्यंग्य 'भैंस, तुम कितनी खूबसूरत हो' में झलकता है। उसे पढ़कर पूरा माहौल जीवंत हो उठता है, उनके द्वारा बयान दम्पति की चालाकी का ब्यौरा एक ऐसी सच्चाई पर है जो सबके साथ एक बार नहीं कई बार घटता है और हर बार चाटुकारिता की जीत होती है। ऐसे सहज अंदाज में बयान इन किरदारों को पढ़कर अजीत कुमार जी ने जो पुस्तक के फ्लैप पर टिप्पणी दी है वह बहुत सटीक है : ''जो चेहरे मौजूद तो थे पहले से ही पर उनकी ओर हमारा ध्यान अब तक नहीं गया था- सर्चलाइट पड़ने पर हमने उन्हें गौर से देखा।'' यह सच मेरा है कि प्रेम जनमेजय से मेरा परिचय कुछ इसी किस्म का था जो हालचाल और नमस्ते तक सीमित, औपचारिकता जो हम लेखन क्षेत्र में अपने समकालीनों के साथ निभाते हैं। प्रेम के बेहद गम्भीर दिखने वाले चेहरे के पीछे एक व्यंग्यकार का मस्तिष्क छुपा होगा, इसका अन्दाजा उनकी पुस्तक को पढ़ कर लगा। ठीक अजीत कुमार जी की टिप्पणी

की तरह कि वह मौजूद तो पहले से थे, मगर रचना के माध्यम से उन्हें देखने का एक नया कोण सामने आया। व्यंग्य पढ़ते समय लगता रहा कि तुर्की व्यंग्यकार अजीज नसीन की तरह प्रेम जनमेजय इसी भाषा शैली में उपन्यास लिखने की क्षमता रखते हैं। नसीन का पहला व्यंग्य उपन्यास 'करामत पार्टी और सलामत पार्टी' पढ़ा था। हर पंक्ति पर तस्वीर उभरती थी और वार्तालाप पर हँसी। प्रेम के व्यंग्य में चुटीले वाक्य, गहरे भाव और सलीके की गंध से एक छटपटाहट सी निकल कर पाठक तक पहुंचती है जो यह संदेश देती है कि रचना स्तर पर व्यंग्य की टिप्पणी तक यह व्यंग्यकार सीमित नहीं है, बल्कि इसके अन्दर एक विस्तार भी छुपा हुआ है जो एक बड़ी रचना की सम्भावना की तरफ संकेत करता है।

हिन्दी में हास्य-व्यंग्य की परम्परा बहुत सशक्त नहीं है, क्योंकि लिखने वालों में स्पर्धा ने संख्या में कम होने के कारण कभी जन्म ही नहीं लिया। दूसरी कमी हिन्दी में जो नजर आती है वह है व्यंग्य की जगह व्यक्तिगत कमजोरियों पर कटाक्ष, जो बड़े फलक पर किया गया व्यंग्य न होकर दुखती नब्ज पर हाथ रखने जैसा हो जाता है, तो भी परसाई जी का अपना स्थान है। जोशी, शुक्ल, त्यागी, अलका पाठक, गोपाल चतुर्वेदी, सूर्यबाला, हरीश नवल आदि अनेक महत्वपूर्ण नाम हैं जिसमें प्रेम जनमेजय ने व्यंग्य की भूमि को एक विस्तार दिया है। उनके व्यंग्य व्यक्तिगत अनुभव से शुरू हो सामाजिक, राजनीतिक मुद्दों को अपने में समेट लेते हैं, जिसके उदाहरण अन्तर्राष्ट्रीय होने का सुख, पन्द्रह अगस्त, सरकारी त्यौहार, होली खेलत कोतवाल, लाटरी मैया, प्रभु अवतार लें इत्यादि में नजर आयेगा। जिसमें धर्म और व्यवस्था पर भी गहरे कटाक्ष हैं कि किस तरह आम आदमी इनके बीच पिस रहा है। यह दौर आज जिसमें हम सांस ले रहे हैं वह 'रेसकोर्स' जैसा है। हर घोड़ा दूसरे को पछाड़ना चाहता है, मगर नैतिक बल, व्यक्तिगत गुण, ईमानदारी से नहीं, बल्कि उन शक्तियों से जो अवसरवादी, चापलूसी, रिश्वत, भाई-भतीजावाद पर विश्वास रखती हैं। ऐसे समय में समाज को झिंझोड़ना, उसे गर्त में गिरने से बचाना, उसे भौतिक चीजों के प्रति अत्यधिक आकर्षण से बचाना व्यंग्यकार का ही काम है। बहुत पहले कहीं पढ़ा था कि चीनी कहावतें बहुत प्रभावशाली होती हैं जो व्यक्ति को गहरी निद्रा से जगा देती हैं। तभी चीनी सामाजिक दृष्टि से जागता इन्सान है। आज यह कहावतें किस हद तक चीनी समाज को 'होश' में रखे हुए हैं मगर यह अपनी जगह है कि व्यंग्य अगर गहरा है तो घाव भी गहरा ही देगा जो न केवल पढ़ने वाले को एक नजरिया देगा, बल्कि हो सकता है उसको किसी अंश तक बदलने में कारगर साबित हो।

कुल बाइस व्यंग्य पुस्तक में हैं और अंत में एक नाटक है। नाटक अपने में दिलचस्प है। उसको पढ़कर लगता है कि कई व्यंग्यों का निचोड़ उसमें मौजूद है। जहां यह नाटक का अंत हुआ है वहीं पर 'सोकर पाने का सुख' की अंतिम पंक्तियां पाठकों के सामने रखूंगी : ''इतिहास गवाह है कि सोने वाले ने बहुत सोना बनाया है। बेचारे जो जागते रहे वे अपने आप से, अपनी आत्मा से लड़ते रहे, शहीद होते रहे। यदि आप भी सोना बनाना चाहते हैं तो राधेलाल की तरह अपनी आत्मा को सुला दीजिए, जिससे आपको सत्य, न्याय, नैतिकता, ईमानदारी, करुणा, दया आदि के स्वर न सुनाई दें, सुनाई दें तो केवल खर्राटों की आवाज!'' यह वह सच्चाई है जो हर गुणी आदमी महसूस करता है, जिसको उसका हिस्सा नहीं मिलता है, क्योंकि उसका कारण है...प्रेम जनमेजय के शब्दों में : पिटना और दुत्कारे जाना तो हमारी भी नियति है बन्धू। हम मन्दिर-मस्जिद नहीं बनाते हैं, फिर भी पिटते हैं। हम घोटाले नहीं करते हैं पर पिटते हैं। हम सरकार गिराने की रिश्वत नहीं खाते हैं पर पिटते हैं। हम पिटते हैं, क्योंकि हम वफादार हैं। हम पिटते हैं, क्योंकि हम पीट नहीं सकते।''

यह दौर शर्म, लिहाज का नहीं, बल्कि मुँहजोरी और अपने मुँह मियां मिट्ठू बनने का है, सो इस व्यंग्य पुस्तिका का आना जरूरी था : ''शर्म मुझको मगर क्यों आती'' आखिर तरक्की करना सबको भाता है। बिना मेहनत के कोहनी मार कर आगे निकल जाने में कैसी शर्म?

यारों का यार

राजेश कुमार

याद करता हूं कि प्रेम से मेरी आरंभिक मुलाकातें कब शुरू हुईं, तो मुझे अपने कॉलेज के दिन याद आते हैं। हस्तिनापुर (अब मोतीलाल नेहरू) कॉलेज की यह खासियत रही है कि इसने बड़े-बड़े साहित्यकारों को जन्म दिया है (और यह बहुत करके इसलिए रहा कि इसके हिंदी विभाग में अनेक बड़े हस्ताक्षर कार्यरत रहे जैसे डॉ. नरेन्द्र कोहली और डॉ. कैलाश वाजपेयी)। प्रेम जनमेजय, हरिमोहन शर्मा, हरियश राय, सुरेन्द्र शर्मा, दिनेश कपूर, अजय तिवारी, सुरेश कांत आदि हम लोगों के सीनियर्स रहे हैं। उन दिनों हम लोगों को भी साहित्य का नया-नया चस्का लगा था। जोड़-तोड़ करके हम कुछ लिखने की और ज्यादातर उसे छपाने की फिराक में गोरखपुरी बने रहते थे। प्रेम जनमेजय उन दिनों कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज में प्राध्यापक हो चुके थे और कभी-कभी विद्यार्थी काल की याद ताजी करने और अपने अध्यापकों को धन्य करने के लिए अपने कॉलेज का चक्कर लगा जाया करते थे। कभी एक-आध बार सामना हुआ तो ये उड़ती हुई नजर हम पर डालते और हम इनकी ओर कोई लोकोत्तर चीज समझकर बार-बार आकर्षित होते रहते। प्रेज जनमेजय से हमारे परिचय का यह पहला दौर था, जब हम उन्हें जानते थे और उनके पास हमें जानने का कोई कारण नहीं था। अपने प्रारंभिक दिनों में मैं काफी शर्मीला सा रहा हूँ (अब बेशर्म हूं ऐसी बात नहीं है, क्योंकि शर्मीला का विलोम बेशर्म नहीं होगा)। कॉलेज के प्रारंभिक दिनों में मैंने एक-दो रचनाएं लिखी थीं और इस पूंजी के आधार पर तथा अधिक करके डॉ. कोहली के प्रोत्साहन पर मैं उनके द्वारा प्रणीत और संचालित लेखक मंडल की बैठक में जाने लगा। वहां एक से एक धुरंधर आते थे, कुछ उनमें स्नॉब कोटि के भी थे। आए और अपनी गरिमा का चोगा पसारकर बैठ गए। उनकी तरफ देखो, तो ताव आए।

प्रेम नाटे और थोड़ा स्थूल आकार के व्यक्ति हैं, लेकिन चुस्ती में कोई कमी नहीं है। चेहरा गोल और भरा हुआ है। अच्छा पहनना और साफ-सुथरे ढंग से रहना पसंद करते हैं। आँखें छोटी, लेकिन तेजपूर्ण हैं। होंठ सदा मुस्कान खिलाने के लिए तत्पर रहते हैं। नाक नुकीली है और मूँछें (जब कभी भी वो होती हैं) भरपूर हैं—यों अक्सर क्लीन शेव रहते हैं। (हालाँकि यह स्थिति अब चरित्र की क्लीनता का परिचायक नहीं रह गयी है।) प्रेम को ऊँचा बोलते सुनते की मेरी ख्वाहिश अभी बाकी है। गुस्सा उन्हें आता होगा, लेकिन सिर्फ अनुमान ही लगा सकता हूं, कि वे गुस्से में कैसे दिखते होंगे। प्रेम जनमेजय के मूल चरित्र में ये बातें नहीं। जैसा कि मैंने बताया, उनकी नाक नुकीली है, जिस पर गुस्से का ठहरना कठिन पड़ता है। तो मैं बात कर रहा था आपसे लेखक मंडल की गरिमामूर्तियों की। उनको देखकर अच्छा लगता था, लेकिन उनका गरिमामंडल बड़ा प्रखर और मजबूत रहता। सदा आतंकित किए रहता, नजदीक न आने देना। ऐसे घुटन-बढ़ाऊ लोगों के बीच प्रेम का आना ताजी हवा के झोंके के समान रहता। उनके आते ही हँसी-चुहुल और ठहाके का बाजार शुरू होने लगता। वे हरेक से हँसकर बातें करते, जो उनके व्यक्तित्व के साथ बिल्कुल सहज सजतीं। कहीं किसी तरह का कोई आडंबर नहीं, खुले मन खुले हाथ! जिस अपनत्व से वे हम नवोद्भिजों से बातें करते, उसी तरह वट-वृक्षों से भी करते—बेझिझक। मुझे उनसे ईर्ष्या होती।

मुझे याद नहीं आता कि किसी ने मुझे लिखने, बोलने, सुरों के उतार-चढ़ाव, बल-अनुबल, संहिता, पाज, आदि में स्कूल या स्कूल के बाहर किसी तरह का प्रशिक्षण दिया हो। तो अपने अनगढ़, असंयमित ढंग (इसे शैली तो नहीं कहा जा सकता है) से मैंने एक रोज लेखक मंडल में

(संभवतः पहली बार) अपनी एक रचना सुनाने की जुर्रत की। रचना पूरी होने पर दिनेश कपूर ने छूटते ही कहा कि रचना तो खैर जैसी है, वैसी है, लेकिन सुनाने का ढंग खासा ऊबाउ है। आप मुझसे पूछें तो निश्चिततः अब मुझे इस बारे में कोई गलतफहमी नहीं है कि, दिनेश की टिप्पणी बिलकुल सही थी, लेकिन निश्चिततः उस समय मैं इस टिप्पणी के लिए तैयार नहीं था। इसने मेरे मन की दूब को जलाकर खाक कर ही दिया होता कि प्रेम जनमेजय बोल उठे कि नहीं ऐसी कोई बात नहीं है, ठीक है, आदि। डॉ. कोहली और कुछ अन्य लोगों ने भी प्रेम का साथ दिया और फिर रचना पर छिटपुट-सी चर्चा भी हुई। मेरा मन श्रद्धा से नत था।

उसी दौरान प्रेम जनमेजय की रचनाओं से भी सामना हुआ। प्रेम एक इस्तेमाल किए हुए लिफाफे में इधर-उधर के कागजों पर लिखी अपनी रचना निकालकर सुनाते। सुधी पाठकों को यह बताने की जरूरत संभवतः नहीं है कि प्रेम मुख्य रूप से व्यंग्य लेखन करते हैं और व्यंग्य में भी उनकी अधिकांश रचनाएँ व्यंग्य निबंध (यदि व्यंग्य शास्त्री इस विभाजन को स्वीकार करें, तो) कोटि की हैं। तो प्रेम अपनी रचनाएँ सुनाते। उस समय व्यंग्य (या किसी भी) लेखन की बारीकियों से मेरा परिचय नहीं था (यह दावा नहीं है कि अब है), और उस कसौटी पर प्रेम की रचनाओं के अच्छे-बुरे होने पर बहस की जा सकती है (मित्रता के नाते जिसमें पड़ने से मैं कतरा जाऊंगा) यों ज्ञान चतुर्वेदी ने प्रेम जनमेजय स्कूल शुरू होने की घोषणा कर दी है (लेकिन प्रेम की रचनाओं की खास बात जो मुझे लगती थी और आज भी लगती है, वह यह कि प्रेम की रचनाएँ ऐसा माहौल पैदा करती हैं जैसे कि दोस्त अपनी बात बता रहा हो, बातचीत कर रहा हो। प्रेम को मैंने आज तक नहीं बताया कि हमारे कार्यालय 'राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय' में हमारी एक सहयोगी रही हैं, श्रीमती रेणु खोसला, जो गृहविज्ञान विषय की प्राध्यापिका थीं। उनका साहित्य से कुछ लेना-देना नहीं था और इसका प्रमाण यह है कि उनके पति मुकेश खोसला 'सन्' पत्रिका के संपादक रहे हैं। एक रोज संयोग से मेरे पास प्रेम की पुस्तक (संभवतः 'राजधानी में गंवार') थी, जो उनके हाथ लग गयी। फिर वह पुस्तक मुझे नहीं मिली, मिली तो सिर्फ यह सूचना कि रेणु ने पुस्तक का जो पहला पृष्ठ पढ़ा, तो फिर छोड़ने का मन नहीं हुआ।

तो ऐसी हैं प्रेम की रचनाएँ—जमीन से जुड़े हुए विषय, उपमाएं, जो बिलकुल टटकी और रोजमर्रा के जीवन से ली गयी हैं। जैसेः-

''आजकल जो आत्मा की तरह जितना सूक्ष्म, अदृश्य, सर्वव्यापी, अलक्ष्य है उतना ही गतिशील, प्रगतिशील और सफल है। जो सामने है उसे तो आप जान सकते हैं, जो है नहीं, उसे क्या जानेंगे।''

''मुझे तो पूरा देश एक झोंपड़ा लगता है जिसमें धुआँधार आग लगी हुई है। प्रत्येक इस आग को बुझाने का अभिनय कर रहा है।''

''राधेलाल ने घर में प्रवेश किया, तो उसका चेहरा सरकारी नीतियों का समर्थन पाए व्यापारी वर्ग-सा खिला हुआ था।'' ''पत्नी ऐसे हकला रही थी जैसे थाने में बयान दे रही हो।'' ''मैं मुद्रास्फीति-सा एकदम उठकर लक्ष्मी के स्वागत को बढ़ा, परन्तु रुपये के अवमूल्यन-सा लुढ़क गया।'' पात्र जो हम खुद हैं या हमें रोज मिलते हैं (प्रेम का पसंदीदा और निरंतरता लिए हुए पात्र राधेलाल, जिसमें कुछ लोग प्रेम को तलाशने का मोह नहीं त्याग पाते), हमें अक्सर ही मिल जाता है। आदमी की पीड़ा को समझने की ललक, उसकी संक्षिप्तता और वे सारे गुण जो दोस्त की बातचीत में मिलते हैं कि जिनकी वजह से दोस्त से बार-बार मिलने, देर तक साथ बैठे रहने का मन करता है। उन दिनों प्रेम से सुनी एक रचना जो मुझे आज तक याद है, का जिक्र किए बिना मन नहीं मानता। 'साहित्यकारों का मजमा' नामक रचना का उपशीर्षक था 'केवल साहित्यकारों के लइए'। यह उपशीर्षक मात्र ही प्रेम की रचनाओं के अपनेपन का खुलासा करने के लिए पर्याप्त है। दरअसल प्रेम को मैंने आरंभ में अपने अग्रज के मित्र

के रूप में ही देखा और यह काफी लंबा अरसा रहा। प्रेम आते, भाई से मिलते, मुझसे कुछ औपचारिक बातें होतीं और बस! मेरे मन में शुरू से कुछ ऐसी धारणा थी कि भाई के दोस्तों का सेट अपने दोस्तों के सेट से लाज़िम तौर पर अलग होना चाहिए और दरअसल सच बात यह है कि शुरू में मुझमें दोस्त बनाने का हुनर या काबिलियत भी नहीं थी। इसे बढ़ाने की कोशिश जो मैंने की तो जाने कैसे दुश्मन बनाने के गुण पैदा कर बैठा।

प्रेम से मेरी दोस्ती में सरोजिनी नगर स्थित नवयुग स्कूल के तरणताल का योगदान आगे आने वाले समय में शोधार्थियों के लिए विद्यावाचस्पति उपाधि का विषय रहेगा। मैं उन दिनों सरोजिनी नगर में रहता था और प्रेम नौरोजी नगर में, जो पड़ोसी कॉलोनियाँ है। मैं कॉलोनी के कुछ दोस्तों के साथ शौकिया तरणताल पर जाता था फिर वहाँ के जीवन-रक्षक चौहान से हम लोगों की दोस्ती हो गई (दोस्ती होने में इस बात ने मदद की कि चौहान ने हमें बिना पास तरणताल में आने और असीमित रूप से उसका उपयोग करने की छूट दे दी)। उन्हीं दिनों प्रेम और उसका दोस्त ठगेला (आकार-प्रकार की दृष्टि से दोनों दोस्त कम और भाई ज्यादा लगते हैं) भी आने लगे। सूचनावश बता दूं कि डॉ. कोहली भी अपने पुत्रों के साथ काफी लंबा रास्ता तय करके तरणताल आते थे, लेकिन सुबह के वक्त जबकि हम लोगों का अड्डा शाम को जमता था।

तरणताल के निबंधित जल में प्रेम के निर्बाध प्रेम के सोते से परिचय हुआ। कब हम लोगों के बीच दूरियाँ घट गयीं (प्रेम उस समय दोनों पुत्रों के पिता हो चुके थे। जबकि हम लोग अभी विवाह की प्रतीक्षा में थे) उम्र के फासले तय हो गए और संकोच की बेड़ियाँ कट गयीं, कुछ पता ही नहीं चला। पता चला तो यह कि गप्पबाजी के लंबे दौर हो रहे हैं, तैरने की प्रतियोगिता या बाजी लग रही है, नौरोजी नगर में पकौड़ेवाले (यह पकौड़ेवाला हमें इतना पहचानने लगा कि 'पैसे तू देगा' और 'तू क्यों नहीं' की चर्चा में जब हम लोग बिना पैसे दिए ही खिसक लेते, तो उसे किसी तरह की चिंता नहीं होती। यों हमने भी देर-सबेर उसके पैसे चुका ही दिए) को धन्य किया जा रहा है, गोपनीय तौर पर व्यक्तियों और विषयों पर चर्चाएँ हो रही हैं, वगैरह-वगैरह। कुल मिलाकर मजा यह रहता कि वहां सभी बातों पर चर्चा होती, पर साहित्य को हम आड़े न आने देते, क्योंकि ग्रुप में कई लोग इस रस से दूर थे। उन्हीं दिनों प्रेम ने 'नल्लूराम' नामक बाल रचना लिखी, जो चौहान के अनुभवों पर आधारित थी और जिसकी रॉयल्टी लेने की इच्छा अभी भी उसके मन में बसी हुई है। उन दिनों प्रेम ने मुझे लिखने और लिखते रहने की बार-बार सलाह दी। जिस पर मैं कभी अमल नहीं कर पाया। सोचता रहा कि लिखना शांत चित की क्रिया है, जो जिंदगी ने मुझे देने में काफी कोताही बरती है और एक महत्वपूर्ण बात जो उसने की वह थी—पराग के प्रकाशक भगवान श्रीकृष्ण से मेरा पहला व्यंग्य संकलन (पद के दावेदार) छापने के लिए बात करना, जिसे यकीनी तौर पर प्रेम की आग्रहपूर्ण क्षमता के कारण श्रीकृष्ण को मानना ही पड़ा और अपनी परंपरा के विपरीत मुझसे बिना कोई पैसा लिए ही उन्होंने मेरा वह संकलन छाप दिया।

एक-आध प्रसंग में जब भाईसाहब ने मुझसे, ''तुम लोग प्रेम को इतनी तरजीह क्यों देते हो'' जैसी कोई बात कही, तो मैंने निस्संकोच (ऐसा उस समय बहुत कम होता था)। उन्हें कहा कि प्रेम ने मेरे लिए वह किया, जो आपने नहीं किया। (वे चाहते, तो यह कर सकते थे।) प्रेम ने फिर उस पुस्तक पर अंग्रेजी में (ऐसा कम होता है) पूरबी 'बैनर्जी' (अब पँवार) से समीक्षा करवाकर अखबार में छपवाई भी थी। तो ऐसा सहज मित्र है प्रेम के मन में जो बिना याचना के लिए तत्पर रहता है और मदद के लिए कोई सीमा नहीं मानता। प्रेम दोस्तों की इस तरह की मदद अक्सर करते रहते हैं, उसका जन संपर्क इस मामले में अतिरिक्त रूप से विस्तृत है। लोगों से मिलने में, साफ-साफ बातें करने में वे नहीं हिचकते। संपादकों के पास बैठकर चाय पियेंगे तो आकाशवाणी के कार्यक्रम प्रस्तुतकर्ता से

गप मारने भी चले जाएंगे। और ऐसा नहीं कि वे किसी पर बोझ बन कर बैठ जाते हों। लोग उनसे मिलना पसंद करते हैं, उनकी प्रतीक्षा करते हैं। उन्हें बुलाते हैं। इस दोस्तांदाजी का खामियाजा वे न भुगतते हों, ऐसी बात नहीं है। एक बार उन्होंने अपने एक दोस्त प्रभात के भाई का फ्लैट सारिका में उस समय संपादन विभाग में कार्य कर रहे रमेश बतरा को दिलवा दिया। कुछ दिनों तो दोनों पक्षों ने प्रेम को धन्यवाद की चाश्नी में सराबोर रखा, लेकिन फिर उन्हें सरासर बोर करने लगे। अब प्रेम की हालत खस्ता, बेचारे परेशान। प्रेम गर्मियों की लू में मीलों चक्कर काटता और कोशिश करता कि मामला सद्भावना पूर्वक सुलझ जाए।

बहुत परेशान रहे बेचारे, लेकिन छुटती नहीं है काफिर, मुँह से लगी हुई; की तर्ज पर वे अब भी इस तरह दोस्तों के काम आने से बाज नहीं आते। इन्हीं दिनों उन्होंने मुझसे प्रस्ताव किया है कि जब तक हमारे यहां बिजली की समस्या है, मैं उसके घर में आकर रह सकता हूँ। अब उस भले आदमी को कोई बताए कि मैं आऊं और ऊँट की तरह पसरता रहूं, तो वह कहां जाकर रहेगा। खैर! ऊपर के प्रसंग के सूत्र से और आगे बढ़ते हैं और हम बताते हैं कि प्रेम में सामाजिक प्राणी होने के सारे गुण मौजूद रहे हैं। वे अपनी कॉलोनी वगैरह की समिति के पदाधिकारी रहे हैं और ऐसे पदाधिकारी रहे हैं कि पदाधिकारी के नाम पर धब्बा।

बताते हैं कि कॉलोनी में सड़क बनाने के लिए ठेकेदारों से बात करते समय जब ठेकेदार ने कुछ रिश्वत देने की पेशकश की तो पहले तो रिश्वत ठहरवा ली और फिर यह कह कर आसमान से जमीन पर पटक दिया कि रिश्वत की राशि को खर्च अनुमान बजट में से कम कर दे। दोस्तों के संकलनों, रचनाओं पर गोष्ठियाँ करवाना, नए विषयों को लेकर सम्मेलन करवाना, बैठकें करवाना, काव्य संध्या का आयोजन, आदि प्रेम के बाएँ हाथ के खेल हैं। ऐसे कामों में न केवल वे बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं, बल्कि लोगों को इनके लिए उकसाने में बाज नहीं आते। प्रेम के दोस्तों की सूची बहुत लंबी है, कभी लिखने बैठें तो पूरी किताब बन जाए। कभी किसी दोस्त के लिए प्रेम, पत्रिका संपादित कर रहा है, कभी गोष्ठी आयोजित हो रही है, कभी आर्थिक मदद हो रही है, तो कभी दोस्त का मानसिक उपचार जारी है। हरेक के जीवन में पारिवारिक झमेले होते हैं और कुछ संवेदनशील मन इन बातों से बहुत जल्दी बेचैन हो जाते हैं। मैं इन्हीं लोगों में से एक हूं—प्रेम ने जब भी मुझे ऐसी मनःस्थिति में पाया है, अपने उदाहरण देकर हमेशा तसल्ली दी है कि मैं किसी नयी समाधानरहित मुसीबत में नहीं पड़ा हूँ, बल्कि विचलित हुए बिना यदि मैं आस्था की डोर थामे रहूंगा तो पाऊंगा कि सारी चिंताएँ, दुख और असंतोष पानी के बुलबुलों जैसे उड़ जाएंगे और सफलता की सीपियाँ हाथ लगेंगी।

प्रेम को बात छिपाने की कला नहीं आती। जो मन में है वही मुँह पर है।

प्रेम के कॉलेज में उसके प्रिंसिपल को लेकर अनेक तरह के झगड़े रहे हैं, बात कोर्ट तक पहुँची। प्रेम का कॉलेज है, सो मैं समाचार-पत्रों में चीजों को गौर से पढ़ता रहा। प्रिंसिपल पंवार प्रेम का दोस्त है। विभिन्न रिपोर्टों के आधार पर मैंने निष्कर्ष निकाला कि पंवार कहीं-न-कहीं गलती पर है, वरना बात इतना तूल न पकड़ती। राई से कुछ बढ़कर ही चीज है, जो पहाड़ जैसी दिखाई दे रही है।

मैंने एक दिन प्रेम से पूछा कि भाई तुम ऐसे आदमी के साथ क्यों हो, तो प्रेम ने कहा (पूरी तरह से मजाक में), ''अरे भाई, हम तो सत्ता के दलाल हैं।'' इन प्रसंगों को मैंने एक साथ इसलिए रखा है कि प्रेम को ठीक से समझ सकूँ। मेरे मन में कोई दुविधा नहीं है कि प्रेम यारों का यार है। प्रेम के मन में कोई दुविधा है तो वह उसे दूर करे। मैंने उसे इतना ही समझा कि वह एक दोस्त इंसान है। हो सकता है कि उसे प्राथमिकताएँ निर्धारित करने के लिए जूझना पड़ता हो, तो कहीं कोई ऐसी ग्रंथि हो, जिसे वह खोल न पाया हो, पर मेरे यार! तू ऐसा ही बना रह, क्योंकि यह रूप तेरा सबसे सच्चा और सहज रूप है। आमीन।

सींग उग आने का डर

वीरेन्द्र नारायण झा

सच्ची बताऊँ, नाम से मैं इस कदर खौफजदा था कि इस किताब को पढ़ते हुए डर लग रहा था। डरना भी इंसानी फितरतों में से एक है, जो बहुत ही अहम और आवश्यक है। इसलिए कि डर से ही आदमी सतर्क और सावधान रहता है और दूसरा, डर के आगे जीत है, आपने सुना ही होगा। अगर नहीं सुना है तो आज सुन लीजिए। क्योंकि सुनने में तो कोई हर्ज नहीं, डरने पर न जीत या हार का डर है। हुआ यूँ कि सींगवाले गधे को पढ़ना तो शुरू कर दिया मैंने, लेकिन मन में आशंका कम, डर ज्यादा घर किए हुए था कि कहीं मेरे भी न सींग उग आएँ।

जी हाँ, हँसिए मत, ऐसा होता है। अमूनन हर पाठक किसी किताब को पढ़ते हुए उसके किरदारों और वाकिआतों में खुद को देखने लगता है, महसूस करने लग जाता है। यानी खुद पात्र की भूमिका में आ जाता है। जाहिर-सी बात है, यहाँ शीर्षक ही गधा है, तो इसे पढ़ते हुए मैं भालू या शेर की खाल तो नहीं ओढ़ लेता। कुछ भी कर लेता, गधा का गधा ही रहता न। गधा होता तो कोई बात नहीं, आज के समय में हम अक्सर गधा बनते या बनाते रहते हैं। जी हाँ, यहाँ लेखक ने बनाया और हम बने, सीधी बात है। कोई अगर-मगर नहीं। मैं यह कह रहा था, गधा बना तो कोई बात नहीं, मगर सिर पर सींग मुझे कतई मंजूर नहीं। बस यही डर मुझे सता रहा था। सो, मैं रह-रह कर अपने सिर पर हाथ फेर लिया करता था कि कहीं....सही में सींग उग रहा है। आखिर अपन भी न पुराने पढ़ाकू हैं, सींग के जन्म लेने से पहले ही प्रेम जनमेजय जी की अद्यतन व्यंग्य किताब खत्म कर ली... लो अब न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। यह पूर्णतः और शुद्धतः व्यंग्य विधा में लिखी गई किताब है, जिसमें कुल चालीस रचनाएँ हैं। मैंने पूर्णतः और शुद्धतः शब्दों का इस्तेमाल इसलिए किया है कि प्रेम जी जब जिस विधा में लिखते हैं, मानो उसी विधा के हो जाते हैं। वैसे, व्यंग्य की बाबत कई साहित्य मनीषियों का कथन है कि यह हर एक विधा का जरूरी शृंगार है, अलंकार है। पर यहाँ तो समग्र पुस्तक ही उसी शृंगार और अलंकार में सजाई गई है। अर्थात, पूरी की पूरी किताब सूक्ष्म और तीक्ष्ण व्यंग्य को प्रतिबद्ध है। प्रेम जनमेजय जी की यह लेखकीय खासियत है कि वह व्यंग्य लिखते नहीं, पर जो लिखते हैं वही व्यंग्य हो जाता है। इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि व्यंग्य खुद इनसे लिखवा लेता है, जब ये लिखने को होते हैं। यह मैं नहीं कह रहा, बल्कि इनकी किताब कहती है। जैसे, पेन से जब हम कुछ लिख रहे होते हैं तो स्याही सोचकर नहीं लिखते, लेकिन हर लफ्ज से स्याही निकल रही होती है, और इसी तरह इनका व्यंग्य नमूदार होता रहता, जब वे लिखते हैं। नतीजतन, हरेक पंक्ति किसी न किसी कटाक्ष, तंज, प्रहार तो कहीं चुटकी को समेटे चलती है। कहने का अभिप्राय यह कि बगैर कोई अतिरिक्त प्रयास के इनके कथन व्यंग्य उगलते चलते हैं और पाठक को भी इसे समझने के लिए बहुत 'मशक्कत' या 'कुश्ती' करने की जरूरत नहीं पड़ती। संभवतः यह इनकी सम्प्रेषणीय शक्ति का कमाल हो। इससे यह बात भी साबित होती है कि व्यंग्य की इनकी समझ-परख और पैनी दृष्टि इतनी मजबूत और समृद्ध हो गई है कि हमें कोई भी वाक्य एक धारदार, पर गुदगुदाते व्यंग्य का आस्वादन करा जाता है और वह भी बड़े सरल तरीके से। दूसरे, जब ये अपनी बात कह रहे होते हैं, तो कहीं भी बनावटी या आडम्बरपूर्ण भाषा और वाक्य-विन्यास का मानो सहारा लिए बगैर कह जाते हैं और पढ़ने वाला जब पंक्ति खत्म कर लेता तब अचानक भीतर से, स्फूर्ति ऐसे शब्द-भाव प्रस्फुटित होते जो पाठक को किसी तीखे और मीठे व्यंग्य का रसपान करा जाते। हो सकता है, भले ही कोई इस पर सपाटबयानी अथवा सतहीपन का आरोप मढ़ दे, लेकिन दुनिया इस सच्चाई को स्वीकार करती है कि सरल लिखना जितना कठिन है उतना शायद कठिन लिखना नहीं। सवाल यह भी है कि भाषा सरल हो या

कठिन, उसकी सम्प्रेषणीयता असरदार है या नहीं, तो इस मामले में भी प्रेमजी बाजी मार जाते हैं। पूरी किताब को पढ़ने के बाद मैंने ऐसा पाया कि किताब के कोने-कोने में व्यंग्य छुपा हुआ है, बस खोजने वाला चाहिए। शीर्षक कथा—सींगवाले गधे को ही लें, गधे को प्रतीक बनाकर आज की बीमार और स्वार्थी राजनीतिक व्यवस्था पर इतना महीन कटाक्ष किया गया है कि शायद गधा भी शर्मा जाए। और पढ़ने वाला सोच में पड़ जाए कि क्या एक गधा जिसे मूर्ख और मंदबुद्धि प्राणी की श्रेणी में रखा गया है, जो मानव-निर्मित विसंगतियों को उकेरने के लिए इस तरह भी कारगर साबित हो सकता है, यकीन नहीं होता। माना कि यह लेखक का शिल्प-कौशल है, लेकिन ऐसा मुमकिन हो पाया है गधे के बलबूते ही। अब इस हकीकत को तो नहीं ठुकराया जा सकता है, बेशक गधे को ही ठुकरा दिया जाए, किताब पढ़ने के बाद। इस कथा में प्रश्न के माध्यम से वर्तमान राजनीतिक नेताओं पर कटाक्ष किया जाता है, क्या सभी सींगधारियों की समान भाव से पूजा-अर्चना की जाती है? नहीं सींगधारी! जो दुधारू होते हैं, उनकी अधिक होती है। गधे दुधारू भी होते हैं?

सभी प्रकार के प्रभु चारि फलदायक होते हैं। गधा भी तभी प्रभु होता है, जब वह दुधारू होता है। वही सींगवाला गधा समाज में सम्मान पाता है जो दुधारू होता है। प्रेम जनमेजय जी के यहाँ न तो व्यंग्य-विषय की कमी है, न ही व्यंग्य-दृष्टि की, इसलिए जहाँ हमारी नजर और सोच पहुँच भी नहीं पाती, वे वहीं से व्यंग्य लपक लेते हैं। ऐसा मेरा अनुमान नहीं है, बल्कि इनकी किताब के पन्ने इस बात की तस्दीक कर रहे हैं। दूसरी तरफ अगर मुद्दे पुराने व सामयिक भी हैं तो उनकी प्रस्तुति बिलकुल अलग और नायाब है। मानो पुरानी बोतल में नई शराब पैक कर दी गई हो, न कि नई बोतल में पुरानी शराब। कहीं प्रभु और जनता आती है तो दूसरी जगह राजनीति और चुनाव। वहीं मौसम, प्रदूषण, बसंत, साहित्य, लेखक, आलोचक, बुकर प्राइज, होली, लॉकडाउन, सावन, क्रेडिट कार्ड आदि विषयों को केंद्र में रखकर जो कटाक्ष किए गए हैं, वे व्यंग्य के सारे मानदण्डों और मापदण्डों को पूरा करते हैं। साथ ही बीच-बीच में फिल्मी गीत, संवाद और कहावतों का इतना सुँदर समावेश हुआ है कि पाठक कुछ देर के लिए ठहराव महसूस करते हुए गुदगुदा जाता है और फिर आगे उसी शिद्दत से पढ़ने लगता है, जिस शिद्दत से शुरू किया होता है। यह व्यंग्य लेखन कला की तासीर है और कुछ नहीं। मैं यहाँ प्रेमजी के व्यंग्य के कुछ नमूने उद्धरित करना चाहूँगा, जो इसी किताब से लिए गए हैं, हालाँकि ज्यादा पेश करना संभव नहीं है, फिर भी दो-चार ही सही, ताकि व्यंग्य की दृष्टि से इनका नजरिया प्रकट हो सके : ''पुरस्कार अच्छे-अच्छों को ज्ञानी बना देवे है। ज्ञानी क्या धार्मिक भी बना देते हैं।'' (दो वैष्णवन की वार्ता) मैंने संपादक को आइडिया समझाया तो वह चहक गया और बोला, ''वाह! लंगोट लाइनर... बहुत हिट होगा...पैंट को लंगोट बनाएँगे...वाह सर! व्यंग्य में धमाका हो जाएगा।'' (मेरा लाइनर)

'तेरी दो टकियां दी नौकरी, मेरा लाखों का सावन जाए।' पर आजकल तो लाखों की नौकरी है टके सेर सावन है। (टके सेर सावन) सही कहा राधेलाल ने, जैसे जहर को जहर काटता है, वैसे ही प्राकृतिक प्रदूषण को राजनीतिक प्रदूषण काटता है। चुनाव के सामने कोरोना नहीं टिक पाता है तो प्रदूषण क्या टिक पाएगा। (वसंत चुनाव लड़ रहा है) आजकल हिंदी के कुछ अखबारों को पढ़कर हिंदी और अंग्रेजी भाषा के अखबारों को एक साथ पढ़ने का सुख मिलता है। (दुविधाभोगी)

'हमें लड़की तीन कपड़ों में चाहिए' से आरम्भ हुआ लड़के वालों का वाक्य तब तक समाप्त नहीं हुआ, जब तक हमारे तन पर तीन कपड़े नहीं रह गए।(अथ क्रेडिट कार्ड महिमा)। मैं प्रस्तुत किताब के लिए प्रेम जी को बधाई देते हुए पाठकों से कहना चाहूँगा कि वे इसे जरूर पढ़ें और सिर्फ व्यंग्य का ही नहीं, अपितु धारदार व्यंग्य का आनंद लें। मैं इस मुहिम के लिए भी लेखक का शुक्रिया अदा करना चाहूँगा जो उन्होंने व्यंग्य को समृद्ध करने के वास्ते छेड़ रखी है। इसका सबसे बड़ा सबूत है त्रैमासिक 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका जो इनके संपादकत्व में इनके द्वारा वर्षों से नियमित निकल रही है।

संवाद

प्रेम जनमेजय से एक संवाद

संवादकर्ता : देवेंद्र गुप्त

प्रश्न 1 : 'हमारे यहाँ व्यंग्य को एक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है, किसी विधा, शैली या रस के रूप में नहीं। हास्य साहित्य का रस है, जबकि व्यंग्य एक शक्ति'—आप में व्यंग्य के प्रति प्रतिबद्धता सर्वविदित है। आप व्यंग्य को साहित्य में विधा का दर्जा दिलाने में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इस दिशा में कहाँ तक उपलब्धि मिली और इस व्यंग्य यात्रा में क्या-क्या व्यवधान झेलने पड़े?

प्रश्न 2 : व्यंग्य की परंपरा और विकास को देखें तो कहा गया कि व्यंग्य अब शूद्र नहीं, बल्कि ब्राह्मण का दर्जा हासिल कर चुका है, परन्तु ब्राह्मण अर्थात स्थापित विधाएँ व्यंग्य को स्थान/स्पेस देने को तैयार नहीं दिखतीं? बिलकुल सामाजिक स्थिति की तरह जहाँ ऊँची जातियाँ छोटी जातियों के साथ स्पर्धा में रहती हैं ----

प्रश्न 3 : आप व्यंग्य को विधा की जगह रचना शैली नहीं मानते हैं। यह मुद्दा कब तक चलेगा? पहले भी इस मुद्दे पर बहस या मत मतान्तर देखने को मिलते रहे हैं। व्यंग्य के मसीहा परसाई जी व्यंग्य को विधा नहीं, वरन् स्पिरिट मानते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि व्यंग्य का कोई स्ट्रक्चर नहीं है। श्रीलाल शुक्ल भी व्यंग्य की टेरिटरी के एक्सटेंशन की बात करते हैं। समालोचक भी व्यंग्य को लेकर आज तक अपने विचार रिजर्व रखे हुए हैं। परन्तु आप-जैसे शीर्ष व्यंग्यकार और आलोचक नित्यानन्द तिवारी व्यंग्य को विधा मानने के पक्षधर हैं। क्या यह बहस अपनी परिणिति को प्राप्त हो गयी है?

प्रेम जनमेजय : देवेंद्र गुप्त जी! सबसे पहले तो आपका शुक्रिया कि आपने हिंदी व्यंग्य को लेकर कुछ जिज्ञासाएँ व्यक्त कीं। आप जैसे, विभिन्न विधा के व्यक्ति जब तक व्यंग्य से जुड़कर उसे व्यापक सोच नहीं देंगे वह कुएँ का मेंढक बना रहेगा। मेरा मानना है कि सभी सजग रचनाकारों की दृष्टि सामाजिक विडंबनाओं और विषमताओं पर रहती है, पर तथाकथित व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को जिस तरह से कुआँ बना लिया है उसमें व्यापक दृष्टि का रचनाकार झाँकने से डरता है। वह तो आसपास भी नहीं फटकना चाहता है। उसे भय रहता है कि उस पर 'हास्य-व्यंग्यकार' का लेबिल चिपकाकर उसे सीमित न कर दिया जाए। कबीर से आरंभ हुई व्यंग्य की धारा ने ऊबड़-खाबड़ राहों पर चलती एक नदी का रूप धारण किया, पर आज यह एक कुएँ में सिमटती जा रही है। कुएँ के अंदर मेंढक आपस में प्रतियोगिताएँ कर रहे हैं। उनका आकाश उतना ही टुकड़ा है जो उन्हें दिखाई दे रहा है। साहित्य का आकाश उनकी दृष्टि में एक टुकड़ा भर है और वे इस टुकड़े से प्रसन्न हैं। अपनी राह पर चलती 'व्यंग्य यात्रा' के आरंभ का मकसद स्वयं को पूरे आकाश का हिस्सा मानना रहा है। हम व्यंग्यकार बाद में हैं पहले साहित्यकार हैं और हमारे वही सामाजिक सरोकार हैं जो किसी साहित्यकार के हैं। इसी सोच के तहत मैंने प्रवेशांक का लोकार्पण निर्मला जैन, नरेंद्र कोहली, सुधीश पचौरी, विष्णु नागर, दिविक रमेश और

गोविंद व्यास से करवाया था। इसी कारण से बलराम, दिविक रमेश, सुधा ओम ढींगरा-जैसे रचनाधर्मियों ने जब मुझसे संवाद किया था तो व्यंग्य को लेकर नए सवाल सामने आए थे। मुझे उम्मीद है कि इस संवाद में भी कुछ नया आएगा।

आपके पहले तीन प्रश्न एक ही प्रिज्म से निकले व्यंग्य जिज्ञासा के अलग-अलग शेड हैं। व्यंग्य विधा को लेकर मैं अनेक बार अपना मत प्रस्तुत कर चुका हूँ। मेरी व्यंग्य संबंधी अवधारणा में आरंभ से आज तक कोई बदलाव नहीं आया है। इस सवाल पर मैने श्रीलाल जी, त्यागी जी से अनेक बहसें की हैं। और इस सवाल पर परसाई जी की मान्यता की विसंगति पर सवाल भी उठाया है। मेरे आदर्श हरिशंकर परसाई इस प्रश्न पर अपने लेखन के पूर्वार्द्ध में व्यंग्य की विधा को लेकर संघर्षशील रहे, जबकि बाद में इसे स्प्रिट मानने लगे। शरद जोशी स्वयं को व्यंग्यकार मानते थे। श्रीलाल जी का मानना था कि व्यंग्य की स्वीकार्यता बढ़ी है और अब उसका अपना भिन्न्न व्यक्तित्व निर्मित हो गया है। के. पी. सक्सेना को केवल अपनी व्यावसायिक दृष्टि के कारण मंच से लेना-देना था। इसलिए वे इस 'पचड़े' में नहीं पड़े। रवींद्रनाथ त्यागी, गोपाल चतुर्वेदी, सूर्यबाला, यज्ञ शर्मा आदि व्यंग्य को विधा मानने के पक्षधर हैं। 21 वीं सदी के लगभग सभी व्यंग्य रचनाधर्मी इसे विधा मानते हैं।

चाहे व्यंग्य शाश्वत न हो, पर हिंदी व्यंग्य का यह शाश्वत प्रश्न है और शाश्वत कभी पुराना नहीं होता। मेरा उत्तर भी पुराना है, घिसा-पिटा भी कह सकते हैं या फिर इसे मेरा शाश्वत उत्तर भी मान सकते हैं—व्यंग्य मेरी दृष्टि में विधा है। मैंने कहा भी है कि व्यंग्य विधा-जैसा प्रश्न बहुत घिस चुका है और अपनी चमक ही नहीं, पहचान भी खोने लगा है। अब यह सवाल ऐसा लगता है जैसे आपके पास व्यंग्य आलोचना में बहस के लिए और कोई मुद्दे नहीं हैं, सो आप इसे ही घिसे जा रहे हैं। इसे बंद कर दिया जाना चाहिए।

व्यंग्य 'विधा' है कि नहीं, के विवाद को उत्पन्न करने वाले परसाई जी ही हैं। पहले परसाई जी ने इसे विधा स्थापित करने और उसके वैशिष्ट्य को रेखांकित करने के लिए कबीर की तरह मुराड़ा उठाया हुआ था। मैंने कभी कहा था कि परसाई मेरे जीवन में साकार और निराकार दोनों रूप में विद्यमान हैं। परसाई का साकार रूप एक व्यंग्यकार है। अपने इस रूप में वे व्यंग्य को शूद्र से ब्राह्मण का दर्जा दिलाने में सृजनरत थे। उनके आरंभिक संकलनों की भूमिकाएँ पढ़ जाइए। पर अचानक व्यंग्य के स्वरूप को लेकर उनके विचार प्रगतिशील हो गए। उन्होंने घोषणा की कि मैंने निबंध, कहानियाँ आदि लिखे हैं और व्यंग्य क्योंकि स्प्रिट है, इसलिए वह उनमें है। व्यंग्य क्योंकि स्प्रिट है अतः वह विधा नहीं हो सकता। परसाई क्योंकि हिंदी व्यंग्य की धार्मिक पुस्तक हैं अतः अंधभक्तों ने इस घोषणा को शिरोधार्य किया और समूहगान किया कि व्यंग्य 'विधा' नहीं है। यह दीगर बात है कि ये सब न केवल परसाई को श्रेष्ठ व्यंग्यकार सिद्ध करने के लिए किताबें, आलेख, शोध, वेबिनार-शैबिनार आदि करते रहे, अपितु स्वयं को अपने समय का श्रेष्ठ व्यंग्यकार सिद्ध करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाते रहे। कभी परसाई ने मुक्तिबोध के साहित्य का विश्लेषण करने के संदर्भ में कहा था, ''सामान्यतः किसी भी समकालीन रचनाकार के विषय में प्राप्त और प्रदत्त भाषा से विचार किया जा सकता है, लेकिन हिंदी में शायद मुक्तिबोध ऐसे कवि हैं जिनके बारे में चर्चा करते हुए प्राप्त भाषा से काम नहीं चलता।'' देवेंद्र जी मेरा भी मानना है कि परसाई, श्रीलाल शुक्ल, जोशी के कहन को विश्लेषित करने के लिए निबंध, कहानी, उपन्यास आदि की प्राप्त भाषा से काम नहीं चलता है।''

मेरा कहना है कि क्या विधा के लिए जिस शास्त्र और ढाँचे की आवश्यकता होती है क्या वह व्यंग्य लेखन के पास है? इस पर बहस की आवश्यकता है। व्यंग्य के औजारों की पहचान की आवश्यकता है। व्यंग्य लेखन अलग पहचान लिए कैसे है, इस पर चर्चा की आवश्यकता

है। इन्हीं सब सवालों पर बहस के लिए ही तो 'व्यंग्य यात्रा' का जन्म हुआ है। और यह सब व्यंग्य आलोचना के विभिन्न मुद्‌दों पर बात करने से होगा। श्रीलाल शुक्ल पर केंद्रित अंक में मैंने बातचीत के आधार पर नित्यानंद तिवारी जी से एक आलेख लिखवाया। उसमें उन्होंने कहा—मैं व्यंग्य या अतिरंजना को यथार्थ उभारने का एक 'टूल' नहीं मानता हूँ, बल्कि ये एक ऐसा मॉडल है जो पूरे के पूरे इस दौर को और आज तक के इस दौर को परिभाषित कर सकता है।' आपको याद होगा कि नित्यानंद जी ने 'राग दरबारी' के प्रकाशन पर अपने आलोचनात्मक लेख में इसे घटनाओं का जंजाल कहकर इसकी कटु आलोचना की थी। वही प्रो. नित्यानंद तिवारी अनेक वर्षों बाद जब पुनः इस कृति की आलोचना करते हैं तो उसे 'मैला आंचल' से भी श्रेष्ठ कृति मानते हैं। यह सिद्ध करता है कि व्यंग्य रचना को यदि आप उसके टूल पर नहीं कसेंगे तो उससे न्याय नहीं कर सकेंगे। आज आवश्यकता है, ऐसे ही टूल के खोज की। नित्यानंद तिवारी जी ने एक स्वागत योग्य शुरुआत की है, आवश्यकता है इसे आगे बढ़ाने की। परसाई की रचनाओं में व्यंग्य के बंधन को लेकर उन्होंने कहा था, ''क्या हरिशंकर परसाई ने यह संभावना पैदा नहीं की कि कहानी और निबंध एक ही हो सकते हैं, एक-दूसरे में मिले-जुले हो सकते हैं। उनकी व्यंग्य रचनाओं को कहानी में या निबंध में रिड्यूस करना संभव नहीं है। बहुत से लोगों की तरह मैं भी 'मैला आंचल' को व्यंग्य उपन्यास मानता हूँ। लेकिन आप 'मैला आंचल' को व्यंग्य के रूप में, व्यंग्य उपन्यास, कथा के रूप में पढ़ सकते हैं, लेकिन परसाई कहने को केवल कथा के रूप में नहीं पढ़ सकते या केवल निबंध के रूप में नहीं पढ़ सकते। विधा का बंधान, उसका स्ट्रक्चर बहुत मजबूत होता है। तो रचना में मात्र व्यंग्य कह देना एक बात है और बंधन को तोड़ देना बहुत बड़ी बात है, हरिशंकर परसाई ने यही काम किया।

परसाई की रचनाओं में व्यंग्य का बंधन है, उसकी संरचना व्यंग्य की संरचना है। हमारा आने वाला यथार्थ, स्वाधीन भारत का आने वाला यथार्थ, अगर पूरी तरह समझा जा सकता है, तो वह व्यंग्य के बंधन में ही समझा जा सकता है। बहुत सारी ऐसी चीजें उत्पन्न हो रही थीं जो हमारी आस्थाओं को, हमारे विश्वासों को तोड़ रही थीं और तोड़ते समय नए प्रकार के साहित्य की बात कर रही थीं। नई कहानी, नई कविता का नाम जो दिया गया वह वस्तुतः इसलिए दिया गया कि हमारी वास्तविकताएं नई हो गईं, हमारी भूमिकाएं नई हो गईं। ये एक प्रॉब्लम एरिया है।''

प्रश्न 4 : हास्य-विनोद की मंचीय कविता ने व्यंग्य का ह्रास करके रख दिया है। इसको लोकप्रिय विधा बताते हुए प्रचलित किया जा रहा है। टी. वी. चैनलों पर तो और भी भौंडा, विकृत और अश्लील रूप सामने आ गया है। टी.आर.पी. का खेल चल रहा है। ऐसे में तो व्यंग्य का पतन निश्चित है। हास्य और व्यंग्य में किस हद तक सीमा रेखा खींची जानी चाहिए? व्यंग्य विधा का विशेषण और पद कैसे सुनिश्चित किया जाये?

प्रेम जनमेजय : मेरा मानना है कि कूड़ा हर विधा की शोभा बढ़ाता है। समय उसे छानता है और कालांतर में उसका श्रेष्ठ हमारे सामने आता है। परसाई, जोशी, शुक्ल या त्यागी के समय में क्या कम कूड़ा लिखा गया। कूड़ेदान की शोभा बढ़ाने वाले आज कहाँ हैं। कूड़े पर चंदन का लेप कुछ समय तक ही रहता है। और फिर उसका लेप उसके बाहरी आवरण को तो छिपा सकता है पर उसकी बदबू को नहीं छिपा सकता। जैसे देशसेवा के नाम पर मेवा खाने वालों का चरित्र धिक्कारा जाता है वैसे ही हास्य-व्यंग्य के नाम पर अपनी दूकान खोलने वालों की पहचान होती है और वे धिक्कारे जाते हैं। साहित्यकार का मूल लक्ष्य तो समाज को अपने लेखन द्वारा बेहतरीन मानवीय समाज के संस्कार देना ही है। ऐसा ही हर माता-पिता भी करते हैं, पर सभी नहीं करते

हैं। आपको वह लोक कथा याद होगी कि जब एक चोर को फाँसी होने लगी तो उससे आखिरी इच्छा पूछी गई। उसने कहा कि वह अपनी माँ के कान में कुछ कहना चाहता है। उसे अनुमति दी गई। उसने माँ के कान में कहने के बहाने से उसका कान काट लिया। राजा ने गुस्से में उससे इस हरकत का कारण पूछा तो उसने कहा कि इस माँ ने यदि मुझे पहली चोरी पर ही टोका होता तो मैं एक बड़ा चोर नहीं बनता और फाँसी पर नहीं चढ़ता। स्वयं की टीआरपी बढ़ाने और एक-एक रात के कवि सम्मेलन का भौंडे हास्य के नाम पर लाखों लेना मेरे विचार से वेश्यावृत्ति है।

जहां तक आज की मंचीय स्थिति का प्रश्न है, इसपर मैं अनेक बार अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। हिंदी व्यंग्य के क्षेत्र में ये अजब विसंगति है कि इसका आरंभ तो पद्यात्मक साहित्य के रूप में हुआ, परन्तु गद्य व्यंग्य इतना विकसित हो गया है कि व्यंग्य कविता आज जैसे हाशिए पर छूट गयी है। ऐसा नहीं है कि गद्य की अपेक्षा कविता में एक तरह का सन्नाटा छाया हुआ है और न ही युवा कवियों का स्वर मध्यम पड़ गया है। ऐसा भी नहीं कि व्यंग्य की संरचना के लिए आवश्यक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि विसंगतियाँ दृश्य से गायब हैं, अपितु इसके विपरीत इन विसंगतियों में अनपेक्षित प्रगति हुई है। इसका प्रमाण है गद्य के क्षेत्र में व्यंग्य रचनाकारों का निरन्तर आगमन। जैसे आजादी की मूरत को संतों नें अपनी-अपनी भावना से देखा, वैसे ही व्यंग्य को सरस्वती पुत्रों नें अपने-अपने चश्मे से दुनिया देख डाली। कुछ के लिए व्यंग्य एक गंभीर कर्म था, अपनी पीड़ा और आक्रोश को देश की जनता तक पहुँचाने का एक माध्यम था, परन्तु बहुत ऐसे सम्राट थे जिन्होंने हास्य के साथ व्यंग्य की ऐसी जुगलबंदी की कि वह मंचों पर चुटकुले सुनाने तथा साली, पत्नी और जीजा के भद्दे मजाकों का पर्याय बन गया। ऐसे में व्यंग्य और हास्य का एक ऐसा घालमेल उपस्थित हुआ कि हास्य-व्यंग्य के नाम पर कुछ भी परोसा जाने लगा। जिस मंच पर निराला, दिनकर, बच्चन, भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर आदि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं का पाठ करके उसे एक गरिमा प्रदान की थी, कविता को लोकप्रिय बनाया था। उसी मंच पर बाद के तथाकथित हास्य-व्यंग्य के मंचित कवियों ने अपनी फूहड़ रचनाओं द्वारा उसकी गरिमा को कम किया। हाँ, अपने को 'लोकप्रिय' अवश्य बना लिया। कवि की कविता का मापदंड उसकी कविता नहीं, मंच से मिलने वाली राशि हो गयी। मंच गलत माध्यम नहीं है, यह जन साधारण से सीधे जुड़ने का एक सशक्त माध्यम है। लगभग वैसे ही जैसे दूरदर्शन एक सशक्त माध्यम है। सवाल यह उठता है कि इन माध्यमों का प्रयोग कौन कर रहा है और किस नीयत से कर रहा है।

मैंने पिछले दिनों 'व्यंग्य यात्रा' का 'कबीरी धार की कविता' पर विशेष अंक निकाला है। इस अंक के संपादकीय में मैंने इसी प्रश्न से मुठभेड़ की है। व्यंग्य कविता की एक सुदृढ़ परंपरा कबीर से आरंभ होती है। कबीर जनप्रिय/लोकप्रिय कवि थे और कविता को जनोन्मुख बनाने के लिए उन्होंने पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग कर उसे सहज, सरल एवं संप्रेषणीय तो किया, परंतु लोकप्रियता के 'मोह' में 'हास्य' की चाशनी लपेटकर कविता को परोसने के, यह कहकर समझौते नहीं किए कि क्या करें श्रोता इसी पर वाह-वाह करते हैं। व्यंग्य का हथियार के रूप में प्रयोग करने की कबीरी-परंपरा में, दरबारी कवि होने के बावजूद, बिहारी आते हैं, जिन्होंने व्यंग्य को कुंद नहीं होने दिया। (सीकरी की गोद में बैठे संत, कुछ सीख सकते हैं।)

जैसे व्यंग्य विधा को लेकर अनेक बार अनसुलझे-से अनिर्णित युद्ध लड़े गए हैं वैसे ही हास्य-व्यंग्य के प्रश्न को लेकर वर्षों से सुर और असुर युद्धग्रस्त हैं। अब ये न पूछिएगा कि कौन सुर में है और कौन बेसुरा है। करुणा को लेकर बहुत कम बात हुई है, इसलिए ही कह रहा हूँ कि यह एक नया-सा प्रश्न है। पहले हास्य-व्यंग्य के संबंध में अपने बेसुरे सुर की चर्चा कर दूँ। मुझे हास्य के साथ

सुर न मिलाने के कारण हास्यद्रोही माना जाता है। कुछ का मानना है कि हँसी बिक रही है, मैं साहित्य का उद्देश्य बिकाऊ होना नहीं मानता हूँ। मेरा हास्य से कोई विरोध नहीं है और मेरा मानना है कि व्यंग्य की अपेक्षा श्रेष्ठ हास्य लिखना अधिक कठिन है। पर जिस तरह हमारे जीवन में निरंतर विसंगतियों का 'विकास' हो रहा है ऐसे में साहित्य के माध्यम से हास्य परोसना अपने साहित्यिक दायित्व से उदासीन होना होगा। व्यंग्य मेरे लिए वर्तमान विसंगतियों पर प्रहार करने का जनवादी हथियार है।

मेरा मानना तो यह है कि व्यंग्य के लिए हास्य की बैसाखी का प्रयोग करना अनावश्यक है। हास्य के नाम पर जिस तरह हास्यास्पद रचनाओं का उत्पादन हो रहा है, उस माहौल में व्यंग्य को हास्य से जितना दूर रखा जाए अच्छा है।

हास्य और व्यंग्य दोनों का आधार विसंगति है, ऐसे में संभव है कि किसी रचना में विसंगति का चित्रण करते समय दोनों के दर्शन हो जाएं, परंतु व्यंग्य रचना में उत्प्रेरक के रूप में आने वाली हँसी व्यंग्य की हँसी होती है। ऐसी हँसी व्यंग्य की प्रखरता एवं संप्रेषणीयता में वृद्धि करती है, न कि उसे अपनी फूहड़ता से कुंद करती है। मैं व्यंग्य के साथ हास्य के अनावश्यक प्रयोग का विरोधी हूँ। व्यंग्य में हँसी भी यदि आती है तो व्यंग्यात्मक। कोई आपके पेट पर चक्कू रखे तो आपको हँसी नहीं आती है, हाँ आपकी चमड़ी मोटी हो, पेट थुलथुल हो तो चक्कू भी आपको गुदगुदाता है।

यह कहना मूर्खतापूर्ण होगा कि बिना हास्य के व्यंग्य सशक्त नहीं हो सकता और पठनीय नहीं हो सकता। मेरा मानना तो यह है कि श्रेष्ठ व्यंग्य हास्यविहीन ही होता है। शुद्ध व्यंग्य लेखन प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। परसाई की ही रचना 'अकाल उत्सव' नरेंद्र कोहली के पाँच एब्सर्ड उपन्यास आदि अनेक रचनाएँ हैं जिनसे हँसी नहीं आक्रोश उत्पन्न होता है। मैं ऐसी ही रचना को श्रेष्ठ मानता हूँ। ऐसी व्यंग्य रचना करुणा उत्पन्न करती है। व्यंग्य में करुणा की उत्पत्ति ही हमें वंचितों पर व्यंग्य करने से रोकती है और व्यंग्य के सौंदर्यशास्त्र की आधारभूमि बनती है।

प्रश्न 5 : बड़े-बड़े साहित्यकारों ने व्यंग्य की फसल तो खूब काटी, पर उन्हें व्यंग्यकार कहलाना रास न आया। क्या इसलिए कि साहित्यकार का ध्वन्यार्थ सामाजिक मकबूलियत के हिसाब से व्यंग्यकार से कहीं बड़ा, सम्मानजनक और स्वीकार्य है?

प्रेम जनमेजय : ऐसा नहीं है। मैं बड़े साहित्यकारों को दोष नहीं दूंगा। इसमे मेरा मानना है कि सिक्का हमारा खोटा है और हम बाजार को दोष दे रहे हैं कि वहां चलता नहीं। यदि आप 'व्यंग्य यात्रा' के पिछले बीस वर्ष के अंक खंगालें तो आपको सटीक उत्तर मिल जाएगा।

'व्यंग्य यात्रा' का 'आरंभ' से मकसद व्यंग्य को एक वृहद् परिप्रेक्ष्य में देखना रहा है। जैसा मैंने आरंभ में कहा कि सभी सजग रचनाकारों की दृष्टि सामाजिक विडंबनाओं और विषमताओं पर रहती है, पर तथाकथित व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को जिस तरह से कुआँ बना लिया है उसमें व्यापक दृष्टि का रचनाकार झाँकने से डरता है। वह तो आसपास भी नहीं फटकना चाहता है। उसे भय रहता है कि उस पर 'हास्य-व्यंग्यकार' का लेबिल चिपकाकर उसे सीमित न कर दिया जाए। आप श्रीलाल शुक्ल और मेरे द्वारा संपादित तथा नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'हिंदी हास्य-व्यंग्य संकलन' पढ़ें, तो उसमें सम्मिलित रचनाकारों की सूची देखकर समझ जाएंगे कि किन-किन ने व्यंग्यकार कहलाना सम्मानजनक माना है। इस संकलन के 18 संस्करण हो चुके हैं।

प्रश्न 6 : व्यंग्य में स्तम्भ लेखन/ कॉलम राइटिंग की बहुत धूम रही है। इतनी कि शरद जोशी जी के नवभारत में लिखे जाने वाले कॉलम पहले पढ़े जाते थे बाद में खबरें या अन्य सामग्री। लेकिन ऐसा माना जाता है कि कॉलम लेखन ने बड़े-बड़े लेखकों की मेधा को लील लिया और बहुत स्तरीय विधात्मक

व्यंग्य लेखन सामने नहीं आ पाया। आप का क्या कहना है?

प्रेम जनमेजय : स्तंभ लेखन का हिंदी व्यंग्य साहित्य को लोकप्रिय बनाने में विशिष्ट योगदान है। शिवशंभु के कल्पित नाम से बालमुकुंद गुप्त ने लॉर्ड कर्जन के काल में भारतीय जनता की दुर्दशा की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए आठ चिट्ठे लिखे थे जो 'भारत मित्र' में प्रकाशित हो लोकप्रिय हुए। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, गोपाल चतुर्वेदी, विष्णु नागर, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, राजेंद्र धोड़पकर, आलोक पुराणिक आदि ने स्तंभ लेखन किये। शरद जोशी का नवभारत टाइम्स में 'प्रतिदिन' और नवभारत में ही 'काँटे की बात' बहुत चर्चित रहे। निश्चित ही इससे हिंदी व्यंग्य लोकप्रिय हुआ। उसे संपादकीय पृष्ठ पर स्थान मिला। लोकप्रियता के कारण खतरे भी बढ़े।

व्यंग्य की बढ़ती लोकप्रियता ने इसे बहुत हानि पहुँचाई, विशेषकर अखबारों में प्रकाशित होने वाले स्तम्भों ने नई पीढ़ी को बहुत दिग्भ्रमित किया है। आज सात-आठ सौ शब्दों की सीमा में लिखी जानी वाली अखबारी टिप्पणियों को ही व्यंग्य रचना मानने का आग्रह किया जाता है।

क्षेत्रीय अखबारों में स्तम्भ लिखने वाले रचनाकार अपनी कमीज का कॉलर उठा, व्यंग्यकार का तमगा लगा, घूमते हैं तथा आग्रह करते हैं कि उनकी अखबारी टिप्पणियों के कारण उन्हें व्यंग्यकारों की जमात में शामिल कर ही लिया जाए। पनपती हुई शॉर्टकट संस्कृति के कारण जैसे-तैसे व्यंग्यकार की मोहर लगवाने की एक बहुत बड़ी लालसा पलती रहती है। यहाँ लेखन में श्रम के स्थान पर उसके छपने पर अधिक श्रम किया जाता है, और इसके बाद पुरस्कारों के जुगाड़ पर और अधिक श्रम किया जाता है। व्यंग्य जहाँ एक ओर लोकप्रिय हुआ है वहीं उसके खतरे भी बढ़े हैं। अखबारों के इन स्तम्भों के कारण विषय भी सीमित हो गए हैं। ले-देकर सामयिक राजनीति ही व्यंग्य का लक्ष्य रह गयी है। सामयिक विषयों पर आधारित होने के कारण इन रचनाओं का प्रभाव भी क्षणिक होता है। ऐसी रचनाएँ लगभग उसी दिन के अखबार के साथ मर जाती हैं। यह शायद सन् 1990 की बात है, लखनऊ में 'माध्यम' संस्थान द्वारा आयोजित एक व्यंग्य गोष्ठी में, जिसमें शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी भी थे, मैंने व्यंग्य की शाश्वतता को लेकर प्रश्न उठाया था। इस संदर्भ में मेरा आग्रह था कि व्यंग्य रचना और व्यंग्यात्मक टिप्पणी में अंतर किया जाए। अखबारी कॉलम में छपने वाली अधिकांश रचनाएँ व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ होती हैं। कुछ तो दिनभर समाचार बन उसी दिन मर जाती हैं। इस प्रश्न पर उस गोष्ठी में एक सार्थक बहस हुई थी।

प्रश्न 7 : अब मैं लघु पत्रिकाओं के संदर्भ को उठाने जा रहा हूँ। व्यंग्यपरक पत्रिकाएँ बहुत कम देखने में आती हैं। जो भी थोड़ी-बहुत हैं वह हास्यपरक ज्यादा हैं, लेकिन सम्पादक प्रेम जनमेजय के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' को पाठ पुस्तक की संज्ञा से अभिहित किया गया है। व्यंग्य पर आज जो विमर्श दिखाई पड़ता है उसका आधार और श्रेय व्यंग्य यात्रा ने ही दिया है। मैं भी एक नियमित पाठक हूँ। इसके माध्यम से एक पीढ़ी तैयार हो रही है और युवा लेखकों को संजीदा सोच दे रही है। इसके पीछे की पृष्ठभूमि बताएँ? क्या-क्या दिक्कतें आयीं और कैसे निरंतर 18 वर्षों से निकाल पा रहे हैं। लक्ष्य के नजदीक हैं या पा लिया है?

प्रेम जनमेजय : आपसे सहमत हूँ कि व्यंग्य में अच्छी पत्रिकाओं का अभाव है। अधिकांश व्यंग्य या कहूँ हास्य-व्यंग्य पत्रिकाएँ, रचनाओं का संकलन मात्र रहीं। एक बार बलराम ने पूछा था कि तुमने 'व्यंग्य यात्रा' जैसी कुल्हाड़ी अपने पाँव पर क्यों दे मारी, तो मैंने उसे काफी विस्तृत उत्तर दिया था। कभी एलबर्ट कामू ने लेखन के

उद्देश्य को रेखांकित करते हुए कहा था—एक लेखक का उद्देश्य सभ्यता को खुद से नष्ट होने से रोकना है।' निश्चित ही यह एक महत् उद्देश्य है।

व्यंग्य लेखक के रूप में मेरा भी यही उद्देश्य है और व्यंग्यकर्मी के रूप में भी मेरा प्रयत्न रहा है कि व्यंग्य को खुद से नष्ट होने से रोकूँ। मैंने देखा कि व्यंग्य लिखा तो बहुत जा रहा है पर व्यंग्य पर कैसा लिखा जा रहा है इस पर बात ही नहीं होती। हम जानते हैं कि जितनी मात्रा में कहानी या कविता लिखी गई उतनी ही मात्रा में उन पर बहस भी हुई। व्यंग्य में विमर्श इसलिए नहीं हुआ कि उसका कोई मंच नहीं था। हिंदी व्यंग्य के अग्रज व्यंग्यकारों ने इसे सार्थक दिशा दी है, इसकी स्वीकार्यता बढ़ाई है। अब हमारा दायित्व है कि इस धरोहर की रक्षा करें।

हिंदी व्यंग्य को शूद्र से ब्राह्मण करने वालों के संघर्ष को व्यर्थ न किया जाए। हिंदी व्यंग्य चाहे ब्राह्मण हुआ हो या क्षत्रिय उसे जातिवाद से बचाना बहुत आवश्यक है। व्यंग्य एक जाति नहीं है, वह बहुत बड़े साहित्यिक समाज का एक हिस्सा है। बहुत आवश्यक है जानना—व्यंग्य किस दिशा में जा रहा है? व्यंग्य पर आलोचकों की दृष्टि क्या है? व्यंग्य कैसा होना चाहिए? व्यंग्य में करुणा क्यों आवश्यक है? कौन-कौन से विदेशी रचनाकार हैं जिनको पढ़ना चाहिए? लेखन के साथ-साथ अध्ययनशीलता परम् आवश्यक है। व्यंग्य सुशिक्षित मस्तिष्क की विधा है। व्यंग्य के घाट पर संतों की लगी भीड़ देखकर अच्छा लगता है। चंदन घिसने का और तिलक करने का मन करता है, पर मन शंकित होता है कि चंदन किसी व्यापारी संत के माथे पर न लग जाए।

'व्यंग्य यात्रा' का अंकुर चिंता की ऐसी ही ऊर्वर भूमि में फूटा और मुख्य मकसद बना। लगा कि यदि व्यंग्य की चिंता नहीं करेंगे तो व्यंग्य और चिंता का 'अंग बिंदु' नष्ट हो जाएगा एवं इस कारण व्यंग्य निस्तेज हो 'व्यग्य' रह जाएगा और 'चिंता' व्यंग्य की चिता। आज से उन्नीस वर्ष पूर्व 'व्यंग्य यात्रा' के मात्र पाँच अंक, प्रयोग के तौर पर निकालने के संकल्प के साथ व्यंग्य केंद्रित पत्रिका की एक यात्रा आरंभ की थी। पत्रिका निकालने के अपने लक्ष्य, विवशता, आवश्यकता, मकसद, शक्ति और सीमाओं को 'आरंभ' में ही स्पष्ट कर दिया था। इसलिए बलराम ने जब पूछा कि तुमने 'व्यंग्य यात्रा' का कुल्हाड़ा अपने पैर पर क्यों दे मारा, तो मैंने कहा था—'व्यंग्य यात्रा' नामक कुल्हाड़ी का आरंभ हिंदी व्यंग्य में सार्थक विमर्श एवं रचनाओं के प्रकाशन के लिए एक सामूहिक सोच के अंतर्गत किया गया था। 'व्यंग्य यात्रा' निकालने का मेरा यह भी एक लक्ष्य था कि व्यंग्य पर विमर्श का मंच तैयार हो। प्रयोगात्मक रूप में इसके केवल पाँच अंक निकालने की मैंने घोषणा की थी।

उन्नीस वर्ष से निरंतर चल रही इस पत्रिका का मैं कभी आजीवन सदस्य नहीं बना, क्योंकि मुझे स्वयं ही इसके जीवन के बारे में निश्चितता नहीं थी। अब यह एक मिशन के रूप में चल रही है जिसके लिए मैं आवश्यकतानुसार भिक्षा माँग लेता हूँ। जिन रचनाकारों को मुझे पारिश्रमिक देना चाहिए वे भिक्षा के रूप में मुझे पारिश्रमिक दे देते हैं। उनका यह लगाव ही इसे निरंतर किए हुए है। 'व्यंग्य यात्रा' में केवल रचनाएँ नहीं जातीं। यह एक सोच के साथ, एक मिशन के साथ निकल रही है।

इसका उद्देश्य निरंतर निखर रहा है। 'व्यंग्य यात्रा' मंच बन चुका है जो देश के विभिन्न राज्यों में स्थानीय रचनाकारों के सहयोग से संगोष्ठियाँ आयोजित करता है। साहित्य अकादमी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, कहानी मंच जबलपुर, मुंबई विश्वविद्यालय एवं परसाई मंच, गुजराती साहित्य परिषद्, हिमाचल साहित्य अकादमी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, हिंदी भवन, हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नेशनल बुक ट्रस्ट, हरियाणा साहित्य अकादमी, 'मधुबन' कोटा, बिलासुपर आदि में व्यंग्य विमर्श से जुड़े मुद्दों पर अनेक कार्यक्रम हो चुके हैं। इसका उद्देश्य व्यापक ही हुआ है।

प्रश्न 8 : व्यंग्य एक विवशताजन्य हथियार है—ऐसा आपने व्यंग्य यात्रा के एक सम्पादकीय में लिखा था। व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय के निशाने

पर वो कौन-सी शक्तियाँ हैं जिन पर व्यंग्य का प्रहार अवश्यम्भावी है?

प्रेम जनमेजय : मैं व्यंग्य को विवशताजन्य हथियार ही नहीं सुशिक्षित मस्तिष्क के प्रयोजन की विधा भी मानता हूँ। यह एक सायास अभिव्यक्ति है। व्यंग्य अपने स्वभाव में आक्रामक, सायास एवं बौद्धिक आधार ग्रहण किए हुए होता है। व्यंग्य कृति की सबसे बड़ी विशिष्टता उसकी कथावस्तु है।

इसका कथानक बिम्बात्मक होता है। बिम्ब-प्रधान शृंखलायुक्त क्षेपकों का प्रयोग व्यंग्य को उपन्यास, कहानी और निबंध आदि से भिन्न करता है। इन रचनाओं में कथासूत्र अथवा निबंध-तत्व के स्थान पर बिम्बों की संरचना विसंगति चित्रण को मुख्य मानकर व्यंग्य रचना का सृजन करती है।

कथानक में क्षेपकों का यह प्रयोग एक नये आयाम को सामने लाता है। इसके प्रयोग में बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है। इसका लक्ष्य मात्र विसंगतियों का उद्घाटन करना ही नहीं है, अपितु उस पर प्रहार करना है। यहाँ प्रश्न उठता है कि इस प्रहार की प्रकृति क्या हो? व्यंग्य अगर हथियार है तो इसके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता भी है। तलवार को लक्ष्यहीन हाथ में पकड़कर घुमाने से किसी का भी गला कटकर अराजक स्थिति पैदा कर सकता है तथा स्वयं की हत्या का कारण भी बन सकता है। आज हिंदी व्यंग्य में इस तरह का अराजक माहौल पनप रहा है। इससे व्यंग्य अपने लक्ष्य से भटक रहा है। जिस व्यंग्य को नैतिक तथा सामाजिक यथार्थ की गहराई से जुड़कर, पाठक को सही सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करना चाहिए, वही सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में सतह पर ही घूम रहा है।

प्रश्न 9 : अंतिम प्रश्न तो कभी नहीं होता, फिर भी प्रेम जनमेजय की नजर में व्यंग्य क्या है? सबसे बड़ा प्रश्न है?

प्रेम जनमेजय : इस बड़े प्रश्न के मैंने छोटे-छोटे उत्तर अनेक स्थल पर दे दिए हैं, फिर भी कुछ और की चाह में कुछ कह रहा हूँ। व्यंग्य एक विवशताजन्य हथियार है। यह हथियार आपको विवश करता है कि आप अपनी कलम में इसका प्रयोग करें। जब किसी को समझाने बुझाने के माध्यम चुक जाते हैं और वह एक के बाद एक विसंगत कर्म करता है, तो विवश होकर व्यंग्य किया जाता है। मैं इसे विवशताजन्य इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि इसका प्रयोग किसी उस अपने पर किया जाता है जिसे आप सुधारना चाहते हैं। व्यंग्य भी विसंगतियों से पीड़ित व्यक्ति के तरकश का आखिरी बाण है। व्यंग्य एक गंभीर विधा है, जिसमें गंभीर होने के लिए आपको अपनी व्यंग्य चेतना संपन्न होना होता है। गंभीरता का मास्क आप खरीद सकते हैं, बुर्का पहन सकते हैं, पर गंभीरता का सत्य नहीं खरीद सकते।

हमारे समय की विसंगतियों को उद्घाटित कर, आलोचनात्मक दृष्टि से दिशायुक्त सार्थक व्यंग्य रचना एक कठिन कर्म है। हर विधा में पूरी रचना के रूप में व्यंग्य को गूँथना बहुत कठिन कर्म है। यह एक कठिन रचनात्मक प्रक्रिया है। आप व्यंग्यपूर्ण प्रेम गीत नहीं लिख सकते हैं।

मैं अक्सर कहता हूँ कि आप रचना एक पर्यटक की तरह रचते हैं या गोताखोर की तरह। दिशायुक्त सार्थक व्यंग्य रचना कठिन कर्म है, तो उससे अधिक कठिन कर्म है उसके साहित्यिक सौंदर्य का विश्लेषण करना। व्यंग्य को परिभाषित करने को कहेंगे तो मैं कहूँगा, ''कथानक शून्य, बिम्बात्मक व्यंग्य विसंगतियों की सार्थक आलोचना से उत्पन्न आक्रोश को रचनात्मक प्रहार की दिशा देता है। सामाजिक यथार्थ एवं नैतिकता से युक्त बौद्धिक एवं जागरूक पाठक को बेचैन कर सामाजिक परिवर्तन की ओर निरंतर प्रेरित करता है। व्यंग्य का प्रभाव सार्वकालिक होता है। व्यंग्य में हँसी आ सकती है, परंतु वह कचोटती है।''

कथा-कहानी

टूटते पहाड़ की लालसा

प्रेम जनमेजय

दास बाबू अभी-अभी अपने बड़े लड़के अनिल से बहस करके हटे थे।

बहस के दौरान उनका उत्तेजित रक्तिम चेहरा बहुत ही अस्वाभाविक हो रहा था। मैं सारी बहस में मूकदर्शक के समान तटस्थ रहा था। बहस की परिणिति पिछली बहसों के ही समान परिणामहीनता की स्थिति में हुई। दास बाबू सदा के समान अपनी बात पर अन्त तक अड़े रहे और उनका लड़का भी अपने व्यवहार के अनुरूप अपनी मन-मरजी करने की धमकी देकर चला गया।

बात जहां से शुरू हुई थी, वहीं आकर समाप्त हुई। पिता और पुत्र ने अपने बीच चली आती हुई दरार को और पुष्ट किया। उनकी ऐसी हर बहस में मैं मौन रहता हूँ और अन्त में दास बाबू को सांत्वना दे घर चल देता हूँ। आज भी मैं पुरानी प्रक्रिया को पूरी तरह दोहराकर घर लौट गया।

दास बाबू और उनके बेटे में इस तरह की छुट-पुट झड़पें अकसर हो जाया करती हैं। यह उनके दैनिक जीवन का बड़ा सामान्य-सा क्रम है। अनिल किसी नई वस्तु की माँग करता है जो दास बाबू को पसन्द नहीं होती है। दास बाबू माँग का विरोध करते हैं और अनिल उसकी अच्छाइयों का विवरण देता है। बहस चाहे अनिर्णीत समाप्त होती है, परन्तु अनिल बाद में उस वस्तु की माँग पूरी कर लेता है।

अनिल, दास बाबू का बड़ा लड़का है। इंजीनियरिंग कॉलेज में चौथे वर्ष में है, परन्तु पढ़ाई के नाम पर एकदम गया-बीता है। डिग्री कोर्स के चौथे वर्ष में वह छह वर्षों में पहुँचा है, किन्तु व्यावहारिक डिग्रियों की उसके पास कमी नहीं है। वह चरस, गांजा, शराब तथा इस जाति की अन्य चीजों का सेवन साधारण व्यक्ति से बहुत अधिक सरलता एवं सुविधा से कर सकता है। रोज नये-नये कपड़ों का अनुरोध उसके मानसिक विकास का द्योतक है। आधुनिकता की दौड़ में वह इतना आगे निकल चुका है कि अनिल जैसा अपना नाम उसे काफी दकियानूसी लगता है। अपने मित्रों में वह गोटू के नाम से जाना जाता है। गोटू का अर्थ क्या है, यह मैं तो क्या वह स्वयं भी नहीं जानता। अर्थहीनता को वह आधुनिकता का अनिवार्य अंग मानता है, अतः सिवाय इस नाम के अन्य किसी नाम से पुकारे जाने पर वह उत्तर नहीं देता।

दास बाबू की बड़ी लड़की सीता अपने भाई की सही किस्म की सगी बहन है। उसे भी अपना यह नाम पसन्द नहीं, इसलिए उसकी सहेलियाँ उसे मोना कहती हैं। मुहल्ले की सारी लड़कियों के लिए 'फैशन और मोना' पर्याय हैं। मोना ने कपड़े उतार दिए तो वह भी फैशन हो गया।

इन दोनों प्रिय सन्तानों के अतिरिक्त दास बाबू का एक छोटा लड़का है जो ग्यारह वर्ष का है और दो छोटी लड़कियाँ हैं जो दस और पांच वर्षो की हैं। लड़कियाँ दोनों समझदार हैं, परन्तु लड़का अपने बड़े भैया का अनुगामी लगता है। छुपके सिगरेट पीते मैं उसको कई बार देख चुका हूँ। दास बाबू की पत्नी से मैंने एक बार कहा भी था, ''भाभी! दोनों बड़ों का छोटों पर बुरा असर पड़ेगा, और पड़ने भी लगा है, तुम समझाती क्यों नहीं?''

दास बाबू की पत्नी बहुत कम बोलती हैं। तब भी उन्होंने इसके जवाब में एक फीकी-सी मुस्कुराहट भरके सिर को हल्का-सा झटका देकर कहा था, ''भैया ! अब तुमसे क्या छिपा है।''

दास बाबू से कभी इस विषय में बात करता हूँ तो वे रो पड़ते हैं। एक-एक करके अपने टूटे स्वप्नों को फिर से समेटने लगते हैं और फिर दरकों से जुड़े उस स्वप्न को मेरे सामने बिछा देते हैं। उनका अतीत धीमे-धीमे उदास शब्दों में घिरा कमरे में बिखरने लगता है। उनके अतीत में एक आदर्श बसा हुआ है। उसे याद करते ही मेरे सामने कभी न हारने वाला एक युवा चेहरा आ जाता है। सोचता हूँ, क्या यह वही अदम्य विश्वासों से भरा युवक है जो अपनी ही सन्तान से दिन-प्रतिदिन हारता जा रहा है।

दास बाबू कलर्क से उन्नति करते-करते आज अफसर बन चुके हैं, परन्तु फिर भी वे अपने-आपको 'दास बाबू' कहलवाना पसन्द करते हैं। इस विशेषण से उन्हें विशेष लगाव है। सारा दफ्तर उन्हें इसी नाम से जानता है और पुकारता है।

दास बाबू ने मुझे कई बार बताया है। तब वे बारह वर्ष के थे जब उनके पिता ने उन्हें खस् की टट्टियों पर पानी छिड़कने के काम पर लगवा दिया था।

घर की हालत कुछ ऐसी ही थी। यह उनका सौभाग्य था कि उन्हें नौकरी इतनी जल्दी मिल गई। वर्षभर में ही दास बाबू चपरासी बन गए थे। पढ़ने का उन्हें बेहद शौक था, परन्तु एक तो घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी और दूसरे अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना असंभव था। पर पिता सदा सिर पर नहीं रहे। जब दास बाबू अच्छा-बुरा समझने योग्य हुए तो उन्होंने नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई भी आरम्भ कर दी।

दास बाबू के लिए वह जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दिन था, जिस दिन उन्होंने बी.ए. पास की थी। सारा घर खुशी से पागल हो उठा था। रामदास अब बाबू हो जाएगा। सारे मुहल्ले में मिठाई बँटी थी। रामदास अपने गंतव्य की ओर एक सीढ़ी चढ़ गया था, अतः बहुत प्रसन्न था और रामदास की माँ ने उसी दिन अपने-आपको सही अर्थों में पुत्रवती समझा था।

रामदास चपरासी अब दास बाबू कहलाने लगा था। यही दास बाबू की उन्नति की प्रथम सीढ़ी थी। इसी कारण 'दास बाबू' को अपना यह नाम अत्यन्त ही प्रिय है। और बाबू बनकर दास बाबू को अच्छी पत्नी पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई थी।

दास बाबू अपनी पत्नी के साथ शहर आ गए। घर में हर महीने वे इतने रुपये भेज दिया करते थे जिससे उनकी माँ सुविधापूर्वक रह सके। नयी-नयी पत्नी और नयी-नयी नौकरी के मोह में वे कुछ वर्षों तक पढ़ाई से कटे रहे, परन्तु शीघ्र ही और आगे बढ़ने का आकर्षण उन्हें खींचने लगा। इसके बाद उन्होंने बी. ए. किया और विदेश मंत्रालय में असिस्टेंट हो गए। अब तक अनिल और सीता का जन्म हो चुका था, पर दास बाबू कोई बाधा मानने को तैयार नहीं थे।

दास बाबू के सामने ढेर सारे सपने थे। सपने ही सपने। अपने लिए और अपनी संतान के लिए। जहां तक जा सकेंगे, दास बाबू स्वयं जाएंगे, उससे आगे उनकी संतान जाएगी। दोनों बच्चे पढ़ने में बहुत तेज थे। अनिल जब सातवीं में आया था तो दास बाबू का तबादला लंदन में भारतीय हाई कमीशन में हो गया था।

दास बाबू तीन वर्ष तक विदेश में ही रहे और इसी बीच वह विभागीय परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर सेकेंड सक्रेटरी हो गए थे। विदेशी वातावरण ने दास बाबू को इतना अधिक प्रभावित नहीं किया जितना उनके पुत्र को। दास बाबू प्रसन्न थे कि उनका पुत्र देश के स्वतंत्र तथा स्वावलंबी वातावरण में पल रहा है। वे अपने बेटे को पिछड़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे, उसे नये युग के अनुरूप और उपयुक्त बनाना चाहते थे।

तीन वर्ष बाद दास बाबू स्वदेश लौटे, तब अनिल ग्यारहवीं में आया था। पश्चिम का वातावरण उसके मस्तिष्क में पहाड़ पर टंगे बादल के समान छाया हुआ था, परन्तु उसने बरगद की जड़ों के समान उसके मस्तिष्क की मिट्टी को इतनी गहराई से नहीं पकड़ा था। परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त अनिल इंजीनियरिंग कॉलेज में पहुँचा और यहीं से उसमें परिवर्तन आरम्भ हो गया। एक बार उन्मुक्त वातावरण में जाकर, वह पिता की पकड़ में

नहीं आ रहा था। परिणामतः पिता और पुत्र के सम्बन्धों में धीरे-धीरे दरारें पड़ने लगीं। पिता, पुत्र को जितनी सख्ती से पकड़ना चाहता, पुत्र पिता की उतनी ही उपेक्षा करने लगा। इस संघर्ष को सीता ने बड़ी सूक्ष्मता से देखा और उसने भी अपना मार्ग 'खोज' निकाला।

दास बाबू के देखते-देखते सब कुछ इतना बदल गया है कि वे अपनी ही सन्तान के सम्मुख विवश हो गए हैं। वे हर तरफ से टूट गए हैं। पहले वहाँ वे आदेश दिया करते थे, वहाँ अब वह केवल चीख-चिल्लाकर रह जाते हैं। बच्चे उनके चीखने को पागल कुत्ते के भौंकने से अधिक महत्त्व नहीं देते। बच्चों के इस व्यवहार से उनका अपने-आप पर से विश्वास उठने लगता है। कई बार अहसास होता है जैसे वे अपनी संतान के पिता नहीं उनकी दया पर जीने वाले उनके गुलाम हैं। वे मजबूर हैं कि अपनी कमाई से अपने बच्चों की अनुचित माँगें पूरी करें और उनकी उपेक्षा सहते रहें।

दास बाबू ने बड़ी शक्तिशाली आस्था से अपने स्वप्नों को संजोया था, परन्तु अपनी आँखों से क्रमशः इन स्वप्नों को टूटते देखकर उनके अपने व्यक्तित्व में दरारें पड़ने लगी हैं। उन्हें लगता है वे निढाल से बैठे, अपने पराजित-हताश स्वप्नों की साक्षी-भर हैं। शक्ति जो तीव्रता से स्वप्नों को संजोने में लगी थी, वही अन्त में टूटकर, सड़कर उनके व्यक्तित्व को निष्क्रिय और असंतुलित बना रही है। वे जरा से विरोध से बौखला उठते हैं। जरा-सी बात से खीझ जाते हैं। उनमें अब धैर्य नहीं है, विश्वास नहीं है, संतुलन नहीं, काफी दिन हो गए हैं, मैं न तो दास बाबू के घर ही जा पाया और न उनसे कहीं बाहर ही मिल पाया। जा तो आज भी नहीं पाता, परन्तु इसी बीच उनके एक परिचित मिल गए, जिनसे पता चला कि दास बाबू आजकल दफ्तर नहीं आ रहे हैं, शायद बीमार हैं। वैसे भी मैं दास बाबू के यहाँ जाना चाहता था और उनकी बीमारी के सम्बन्ध में सुनकर मेरा जाना आवश्यक-सा बन गया था। दास बाबू वैसे ही काफी परेशान रहते हैं, बीमारी में तो उन्हें और साँत्वना की आवश्यकता होगी। यह सोचकर ही मैं ऑफिस से सीधा उनके घर की ओर चल दिया।

उनके घर के समीप पहुँच, तो दूर से मोना आती दिखाई दी। पास ही लड़कों का एक झुंड खड़ा हुआ था। मोना को देखते ही सबकी नजरें उधर को घूम गईं। एक लड़के ने फिकरा कसा—डी.एल.टी. 554 ''पाँच सौ चौवन,'' मैं चौंका। यह तो दास बाबू के घर का नम्बर है। इतने में दूसरे लड़के ने फिकरा कसा—'टैक्सी खाली नहीं है।'

मोना उनके करीब आ चुकी थी। उसने घूरकर लड़कों को देखा। लड़कों ने दृष्टि छितरा ली। मैं भीड़ के पीछे छुप गया था, अतः मोना मुझे देख नहीं सकी। मुझे क्रोध तो बहुत आया पर जब अपने ही सोने में खोट हो तो दोष किसको दिया जाए। न मैं उन लड़कों से लड़ सकता था, न मोना को ही अपने तौर-तरीके सुधारने को कह सकता था। उन लोगों से छिप सकता था, कतराकर निकल सकता था। वही किया, कतराकर दास बाबू के घर की ओर चल दिया। सोचा, अगर दास बाबू ने कभी यह सब सुन लिया तो? क्या गोटू को यह सब मालूम नहीं है। ये सब उसी के तो मित्र हैं। जानता होगा अवश्य !

मैं अपने-आपको घसीटता हुआ-सा दास बाबू के घर लाया। दरवाजे पर मैं ठिठककर खड़ा रह गया। दास बाबू के चिल्लाने की आवाज आ रही थी। वे किसी को डाँट रहे थे—''तुम, हरामखोर ! क्या इसलिए तुम्हें पैदा किया था ! कोई काम कहो तो साहबजादे को टाइम नहीं है। साले तूने मुझे समझ क्या रखा है ! क्या मैं इतना कमजोर हो गया हूँ कि चल भी न सकूँ! मैं खुद चला जाऊँगा, जा दफा हो जा, मुझे तेरी जरूरत ही नहीं है।''

''अनिल, कुछ लाज-शर्म है कि नहीं ! संतान इसलिए होती है कि बुढ़ापे में माँ-बाप को सुख दे और एक तू है कि तू इनके साथ अस्पताल जाता क्यों नहीं ?''

यह दास बाबू की पत्नी का स्वर था।

''मैंने कहा न मम्मी, कल मेरे फ्रेंड की बर्थ-डे पार्टी है। डैड भी बेकार की जिद कर रहे हैं। परसों जाने में क्या हर्ज है। थोड़ा-सा बुखार ही तो है, नथिंग सीरियस'',

अनिल ने झुंझलाकर कहा।

''पार्टी ज्यादा जरूरी है या तुम्हारा बाप?'' दास बाबू की पत्नी अपनी आदत छोड़कर पहली बार चीखकर बोलीं।

''मोना नहीं जा सकती?''

''घर में तेरे जैसे जवान लड़के के होते हुए वह क्यों जाए? और फिर वह भी तेरी ही बहन है। उसे कल अपनी सहेलियों के साथ पिक्चर जाना है। वह अपना प्रोग्राम खराब नहीं कर सकती। तुम पार्टी को नहीं छोड़ सकते। तुम्हारा बाप चाहे जिए या मरे। किसकी हिम्मत पर यह सब ऐश कर रहे हो-हरामखोरो !'' ''आई कांट गो अंडरस्टेंड।'' ''नालायक! निकल जा इसी वक्त मेरे घर से। मैंने बच्चे नहीं साँप पैदा किए हैं जो अब मुझे ही डस रहे हैं। निकल जा हरामी, मेरी आँखों से दूर हो जा।'' दास बाबू पागलों के समान बदहवास होकर चीख रहे थे। गोटू के कदमों की आहट दरवाजे की ओर आई और मैंने बाहर से धक्का देकर दरवाजा खोल दिया। गोटू मेरे सामने था। मुझे देखकर वह चौंका और फिर तीखी-सी 'हैलो' करके तेजी से बाहर चला गया।

कमरे में दास बाबू अभी भी ऊँची आवाज में चीख रहे थे—''देख लिया न अपने श्रवणकुमार को! इन्हीं के लिए तुम पैसा जमा करती हो। इसी सीता और अनिल की शादियों के तुम सपने देख रही हो। मैं कहता हूँ मैं मर जाऊँ तो इस अनिल को चिता में आग देने की फुर्सत न मिलेगी। उस दिन भी इसके लिए कोई पार्टी जरूरी होगी।''

''आप ऐसी बात क्यों करते हैं!'' उनकी पत्नी उनके करीब पहुँच गई थी और मैं कमरे में समा गया था। दास बाबू ने मुझे देखा और बोले- ''आओ श्रीवास्तव ! देख लिया तुमने सन्तान का क्या सुख होता है ?''

दास बाबू गुस्से में थे, अतः मैंने उनकी पत्नी से पूछा—''क्या बात है भाभी ! क्या हुआ ?''

''मैं कल अकेला ही चला जाऊँगा।'' दास बाबू उसी प्रवाह में बोल रहे थे।

''आखिर बात क्या है?'' मैंने फिर प्रश्न किया।

''कुछ नहीं भैया, इनकी आँख में कुछ तकलीफ है। दर्द रहता है, इसलिए यह कई दिनों से ऑफिस भी नहीं जा पाए हैं। अब बुखार भी आ गया है। डिस्पेंसरी के डॉक्टर को दिखाया तो उसने सफदरजंग अस्पताल रेफर कर दिया है। सफदरजंग वालों ने कहा है कि माइनर ऑपरेशन होगा, सो कल इन्हें अस्पताल में भर्ती करवाना है। इन्होंने अनिल से कहा था कि वह साथ चला चले, सुविधा रहेगी। उसने टाल दिया। अब अकेले जाने की जिद कर रहे हैं।''

''भाभी, आप चिन्ता न करें, कल मैं चला जाऊंगा।''

''रहने दो श्रीवास्तव।''

''दास बाबू, मैंने आपसे तो कुछ नहीं कहा। हाँ भाभी, कितने बजे जाना है। मैं पहुँच जाऊँगा।''

''भैया, रहने दो। तुम्हें कष्ट होगा।''

''कष्ट-वष्ट की बात छोड़ो। मैं जो पूछ रहा हूँ, उसका उत्तर दो। कितने बजे जाना है ?''

''यही सुबह के समय, दस-ग्यारह बजे, कभी भी निकल जाना।''

कल के लिए कह मैं घर लौट पड़ा।

अस्पताल में भर्ती होने के तीन दिन बाद दास बाबू की आँख का ऑपरेशन हुआ। इन तीन दिनों में एक दिन तो मैं उनके पास रहा था, शेष दो दिन उनकी पत्नी। तीन दिनों में एक बार गोटू उन्हें देखने आया जरूर था, तब दास बाबू सो रहे थे। उस दिन भी वह जल्दी में था। किसी दोस्त के साथ कहीं जा रहा था, मार्ग में अस्पताल पड़ता था, इसलिए आ गया था जैसे कहीं जाते हुए, रास्ते में क्षण-भर को रुककर फुटपाथ पर बैठे सिगरेट वाले से कोई सिगरेट खरीदकर सुलगा ले और फिर अपनी राह चला जाए। अगले दिन दास बाबू की आँख का ऑपरेशन था, परन्तु उसने आने के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं दिया और पाँच मिनट बैठकर चला गया। दास बाबू जब सोकर उठे तो मैंने गोटू के आने के बारे में बताया तो वह शब्दों को चबाकर बोले, ''वह हरामखोर आया था, अच्छा हुआ

मैंने उसे नहीं देखा।'' मैं खिंचकर रह गया। सन्तान के प्रति इतनी विरक्ति।

ऑपरेशन छोटा था, ठीक-ठाक हो गया। पर दास बाबू का चेहरा न जाने क्यों उदास था। उनकी ऑपरेशन की हुई आँख तो पट्टी से बंधी हुई थी, परन्तु दूसरी में से उदासी बिखरी पड़ रही थी।

मैं उनकी बाईं ओर एक स्टूल पर बैठा हुआ था और दास बाबू सामने दीवार की ओर शून्य में घूर रहे थे। उनकी पत्नी अभी-अभी घर गई थीं। मुझे कोई बात नहीं सूझ रही थी। ऑपरेशन के बाद अभी तक न तो गोटू ही उन्हें देखने आया था और न ही मोना। दास बाबू की उदास आँख शायद दीवार के पार उन्हीं को खोज रही थी। सहसा दास बाबू ने मुझे संबोधित कर मौन तोड़ा—''श्रीवास्तव ! कितना अच्छा होता, दूसरी आँख भी इसी तरह बन्द होती और कान कुछ भी न सुन पाते।''

मेरी जगह दास बाबू की पत्नी होती तो झट उनके मुँह पर हाथ रख देती और कहती, ''कैसी अशुभ बातें करते हैं आप!'' पर मैं केवल 'दास बाबू !' कहकर रह गया। दास बाबू मेरा संबोधन सुनकर रुके, उन्होंने मेरे चेहरे की ओर दृष्टि फेंकी, जैसे पूछ रहे हों, 'क्या मैं गलत कह रहा हूं,' और फिर से उसी सफेद दीवार की ओर देखने लगे।

मैंने दास बाबू के कंधों को सांत्वना देने के अन्दाज में थोड़ा-सा दबाया और जैसे समझाता हुआ-सा बोला-''दास बाबू ! आप इतनी जल्दी हार मान रहे हैं ?''

''हार मान रहा हूँ? मैं तो सब कुछ हार चुका हूँ। अब हारने को शेष रह गया है, मेरा यह शरीर। यह भी एक दिन हार जाऊँगा। हारकर जीतने में उतनी अधिक प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी हारकर टूट जाने में व्यक्ति को असह्य पीड़ा होती है। मैं जीतते-जीतते जब लक्ष्य के करीब पहुँचा तो ऐसा हारा कि और हारने की संभावना शेष नहीं रही है।''

''दास बाबू !''

''ओह डैडी !'' यह दास बाबू की लड़की मोना की आवाज थी। दास बाबू ने बस उसकी ओर देखा, कुछ बोले नहीं। यह जानते हुए भी कि वह दास बाबू को देखने आई है। मैंने उससे पूछा—''आओ मोना! कैसे आई?''

''अरे अंकल ! यहां मॉल में अपने लिए कुछ कपड़े देखने आई थी, सोचा डैडी को भी देखती चलूँ।''

''मोना!'' मैं पहली बार कुछ ऊँची आवाज में बोला।

''उसे कुछ न कहो, श्रीवास्तव!'' दास बाबू की आवाज कड़ुवा गई थी, ''संतान उत्पन्न करके पाप मैंने किया है, इसलिए भुगत रहा हूँ। उन लोगों की दृष्टि में बाप का इतना ही मूल्य है।''

''ओ.के. डैडी सी यू !'' मोना कमरे से बाहर जा चुकी थी।

दास बाबू ने एक झटके से अपनी ठीक आँख से, खुले दरवाजे से बाहर दूर तक फैले हुए बरामदे को घूरा और घूरते ही रह गए। मैंने देखा उस घूरती हुई आँख में कुछ नमी-सी झलमलाई और आँसू की एक बूँद जैसे मचलकर उनके गाल पर गिर पड़ी।

दास बाबू अचकचा गए। मैं जानता हूँ, इतनी जल्दी हार मान जाना उनका स्वभाव नहीं है।

उन्होंने आस्तीन से आँसू पोंछ डाला। ''शायद आँख में कुछ पड़ गया है।'' मुझे सुनाते हुए वे बड़बड़ाए।

वे बलात् अपने चेहरे पर एक मुस्कान ले आए। उनकी आँख फिर से उस सफेद दीवार को घूरने लगी थी और उसमें पहले जैसी ही एक अज्ञात प्रतीक्षा पनपने लगी थी।

शायद उनके लिए गोटू के आने की संभावना, अब भी कहीं शेष थी।

भैरवी

डॉ. रमाकांत शर्मा

जब वह साथ होती है तो लगता है, मैं हवा में उड़ रहा हूँ। मेरा यह अहसास जब शब्दों में ढलने लगता है तो वह हँस देती है, कहती है, "ज्यादा हवा में मत उड़ो जमीन पर उतर आओ।''

"आ जाओ नाए साथ-साथ उड़ते हैं", मैं कहता हूँ।

"बिलकुल नहीं, पता नहीं तुम उड़ाकर कहां ले जाओ...।''

"बस, दूर कहीं सुरम्य घाटियों में ले चलूँगा जहां तुम्हारे और मेरे सिवाय और कोई न हो।''

"अब तो तुम सचमुच हवा में उड़ने लगे। तुम्हारे साथ मैं किसी निर्जन जगह में क्यों जाने लगी?"

"तुम्हें नहीं लगता, ऐसी जगह हो जहां हमारे अलावा कोई न हो और तुम सारी दुनिया भूलकर मेरी बाँहों में आ समाओ...।''

"धत्, पागल हुए हो? ऐसा सोचना भी मत।''

"क्यों गलत क्या है इसमें, ऐसे माहौल में दो प्यार करने वाले, एक-दूसरे में समा जाने को आतुर नहीं हो उठेंगे क्या?"

"बेकार की बातें रहने दो, मेरे लिए इसकी कल्पना भी असंभव है।''

"ऐसा क्या कह दिया मैंने?"

"बस भी करो, शरीर से आगे भी कुछ सोच लिया करो।''

वह उठ खड़ी हुई है।

"रुको ना, और थोड़ी देर यहीं बैठते हैं। किनारे से टकराती समुद्र की लहरें और वह डुबकी लगाने के लिए आतुर सूरज शाम को कितना खुशनुमां और रोमांटिक बना रहे हैं।''

"फिर वही बात, कितनी बार कहूँ, मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।''

"मतलब, तुम मुझसे प्यार नहीं करतीं?"

"करती हूँ बाबा, पर जब तुम मेरे प्यार को समझने में गलती करने लगते हो तो मैं...।''

"ओ.के. चलो जाने देते हैं। बचाकर रखो खुद को।''

"अब चलते भी हो या मैं जाऊँ?"

"अच्छा बाबा, मेरा हाथ पकड़कर उठाओ तो सही।''

मैं उसके हाथ के स्पर्श को तन-मन में सहेजते हुए उठ खड़ा होता हूँ। अब वह मेरे साथ चल रही है, मैंने धीरे से उसके कंधे पर हाथ रख दिया है, उसने आँखें तरेर कर मुझे देखा है और फिर कंधे से मेरा हाथ झटक दिया है। मैं खिसियाया सा आसपास नजर डालता हूँ। कमर में हाथ डाले और मस्ती में भरे जोड़ों को देखता हूँ तो मेरे दिमाग की नसें तन जाती हैं।

कभी-कभी सोचता हूँ, ऐसी लड़की के साथ अपना समय क्यों बरबाद कर रहा हूँ। जब मेरे दोस्त अपनी गर्लफ्रेंड्स के साथ के अपने अनुभव बताते हैं, तो मुझे उनसे जलन होने लगती है। मैंने कई बार सोचा है, काश मुझे भी कोई वैसी मिली होती, पर जब भी भीतर बैठे पशु को हटाकर देखता हूँ तो मैं यह महसूस करने लगता हूँ कि वह कोई ऐसी-वैसी लड़की नहीं है। वह मुझे चाहती है और मैं उसे। कभी ख्यालों में उसे अपनी ज़िंदगी से बाहर करके देखता हूँ तो मन घबरा जाता है, उसके बिना ज़िंदगी का अर्थ ही क्या रह जाएगा? शायद मैं, मैं ही ना रहूँ। दीपक की लौ की तरह चमकीली, गीले बादलों में उगे इंद्रधनुष सी और अपने दामन में गंगा की पवित्रता समेटे बहने वाली उस शालीन लड़की की अन्य लड़कियों से तुलना करना बेमानी लगने लगता है।

पर, दिल है कि मानता नहीं। आज भी वह मेरे साथ है। आज हम समुद्र की रेत पर चक्कर लगा रहे हैं। लहरें

आती हैं और हमारे पैरों को छूकर चली जाती हैं। मैंने उससे कहा है, "चलो, समुद्र में साथ-साथ नहाते हैं। वह बिदक गई है, "ऐसी बातें करोगे तो मैं अभी चली जाऊँगी।''

"ऐसी कैसी बातें?"

"ज्यादा भोले बनने की जरूरत नहीं है। मैं सब समझती हूँ तुम्हारे इरादे।''

"कौन-सा गलत इरादा किया है...? देखो, कितने जोड़े इन सुनहरी शीतल लहरों का आनंद ले रहे हैं।''

"तो कोई वैसी लड़की चुन लो जो तुम्हारे साथ किसी भी हद तक जाने को तैयार हो।''

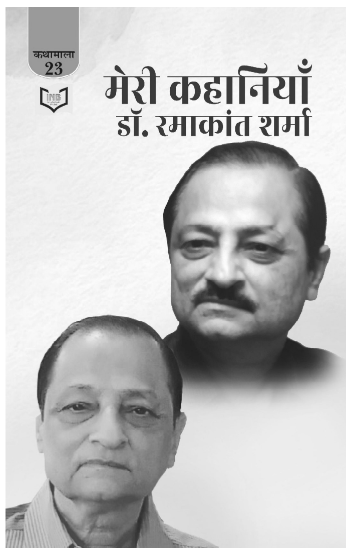

"नाराज हो गई हो, मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। ज़िंदगी में रोमांस नहीं होना चाहिए क्या? फिर, जब हम एक-दूसरे से प्यार करते हैं तो फिर थोड़े से रोमांस में बुराई क्या है?"

"ठीक है, तुम्हारा हाथ पकड़कर इस गीली रेत पर चल सकती हूँ। नाराज तो नहीं हो ना?"

'नाराजगी की कोई बात नहीं है। तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हारा साथ चाहता हूँ, तुम्हें महसूस करना चाहता हूं...।''

"साथ तो हूं तुम्हारे। सबसे छुपकर तुमसे मिलने चली आती हूँ, पर मैं अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकती। जो तुम चाहते हो, वह मुझे अच्छा नहीं लगता, बस।''

"मुझसे भी ज्यादा इंतजार होता नहीं। चलो, शादी कर लेते हैं।''

वह चुप रही तो मैंने फिर दोहराया, "शादी करना चाहता हूँ तुमसे। इसमें तो कुछ बुरा नहीं। अपनी आत्मा को धोखा देने के लिए नहीं कह रहा हूँ तुमसे।''

"कैसे बताऊँ तुम्हें...मेरे पापा ने बचपन में ही अपने दोस्त के बेटे से मेरी शादी तय कर दी है। आजकल घर में यही बात होती रहती है कि अब मैं शादी लायक हो गई हूँ, शादी हो जानी चाहिए मेरी।''

"ओह, यह तो तुमने मुझे कभी बताया नहीं, मैं वैसे ही इतने सारे सपने सजाए बैठा हूँ।''

"मैंने अपनी माँ को बताया था कि मैं किसी और से प्यार करती हूँ और उससे शादी करना चाहती हूं। बस, घर में कोहराम मच गया। सच कहूं, मैं चाहकर भी तुम्हारे साथ ज़िंदगी नहीं बिता पाऊंगी।''

उसकी आँखों में मोती छलक आए। उसकी बात सुनकर मैं स्तब्ध हूँ। ऐसा लग रहा है जैसे किसी ने पहाड़ की चोटी से मुझे धक्का दे दिया है। मैं बड़ी मुश्किल से बोल पाया हूँ, "मैं बात करूं तुम्हारे घरवालों से?"

"कोई फायदा नहीं। पापा ने जबान दे रखी है और फिर वह लड़का हर तरह से लायक है। मैं चाहकर भी उसमें कोई कमी नहीं निकाल सकी। इज्ज़तदार घरबार है और लड़का डॉक्टर है।''

"एक बात पूछूँ तुमसे?"

"हां पूछो।''

"क्या इसीलिए तुम मुझसे अलग-अलग रहती आई हो। किसी और के लिए संभाल कर रखा है खुद को?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। तुम्हारा साथ मुझे अच्छा लगता है। पर अपने शरीर को खिलवाड़ बनाने का मन नहीं करता मेरा।''

मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा है। उसे लेकर मेरे मन में जो उम्मीदें बंध गईं थीं, वे औंधे मुँह गिर चुकी हैं। वह कह रही है, "मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगी। इसी शहर में रहूंगी और मिलती रहूंगी।''

मैं कुछ सोच-समझ पाता उससे पहले ही उसकी शादी हो गई। ऐसा लगा जैसे एक दिन में पूरी दुनिया

ही बदल गई हो।

मैं इस सबसे उबरने की कोशिश कर ही रहा था कि उस दिन वह समुद्र के उसी किनारे पर अपने पति के साथ घूमती हुई मिल गई। मेरी तो जैसे साँसें ही थम गईं। मैं बचकर निकलने ही वाला था कि उसने आवाज देकर मुझे रोक लिया और अपने पति से परिचय कराते हुए कहा, "अविनाश, ये हैं मयंक। हम एक ही कॉलेज में पढ़े हैं।''

अविनाश ने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा, "मयंक जी, बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर। हम घूमते-घूमते थक गए हैं, आइये वहां सामने बेंच पर बैठकर बात करते हैं।''

"नहीं, नहीं मियाँ-बीवी के बीच में कबाब की हड्डी क्यों बनूँ मैं", मैंने अपने अंदर हो रही उथल-पुथल को संभालते हुए कहा।

"ऐसी कोई बात नहीं है, हमारी शादी को दो महीने गुजर चुके हैं", अविनाश ने हँसकर कहा और मेरा हाथ पकड़कर बेंच की तरफ बढ़ गया।

हम तीनों बेंच पर बैठ गए। मैं खुद को बहुत अजनबी पा रहा हूँ। लेकिन, अविनाश की जिंदादिली ने कुछ ही क्षणों में मेरे संकोच को खत्म कर दिया है। हमारी बातों में वह भी हिस्सा लेने लगी है तो मुझे बहुत अच्छा लग रहा है।

अविनाश बहुत जहीन और सुलझा हुआ लगा। हम कब पुराने दोस्तों की तरह बातें करने लगे पता ही नहीं चला। चलते समय उसने कहा, "आप हमारे घर आइये, हमें बहुत अच्छा लगेगा, क्यों प्रिया?"

प्रिया ने हाँ में अपनी गर्दन हिला दी तो वह हँसकर बोला, "अब तो आपको आना ही पड़ेगा कब आ रहे हैं हमारे घर? परसों छुट्टी है, आ जाइये, लंच पर। कोई बहाना नहीं चलेगा।''

उनके घर जाते समय मैं बहुत संकोच से भरा हूँ और बहुत घबराहट हो रही है। कहीं मुझसे या फिर प्रिया से कोई ऐसी भूल न हो जाए कि अविनाश को हमारे रिश्ते की भनक लग जाए और सबकुछ चूर-चूर हो जाए। मैं उनके घर पहुँच गया हूँ। जो कुछ सोच रहा था, वैसा कुछ नहीं हुआ है। उनके साथ समय बहुत अच्छा गुजर रहा है। मुझे खुद पर आश्चर्य है कि हम दोनों अच्छे दोस्त की तरह व्यवहार कर रहे हैं, बस।

अविनाश से बहुत अच्छी दोस्ती हो गई है। वह डॉक्टर है, व्यस्त रहता है, पर जब भी फुर्सत होती है, मुझे लंच पर या डिनर पर बुला लेता है। उनके साथ समय बिताना मुझे अच्छा लगता है। सबसे बड़ी खुशी इस बात की है कि प्रिया और मेरे बीच का वह कोमल भावनाओं वाला रिश्ता अब सचमुच दोस्ती में बदल गया है। सच कहूँ तो अविनाश के खुले व्यवहार ने और विश्वास ने हमें सहज बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है।

आज रविवार है। सुबह ही सुबह अविनाश का फोन आया है, "क्या कर रहे हो भाई?"

"कुछ नहीं, अभी थोड़ी देर पहले उठा हूं।''

"गुड ऐसा करो तुरंत निकल आओ, आज चाय-नाश्ता साथ करते हैं।''

"कोई खास बात?"

"हाँ, है तो खास ही। आ जाओ फिर बात करते हैं।''

अविनाश बहुत खुश नजर आ रहा है। उसने चाय का कप पकड़ाते हुए कहा है, "पूछोगे नहीं, खास बात क्या है?"

"वही तो जानना चाहता हूँ, सच कहूँ तो बहुत उत्सुक हूँ...।''

"चलो बता ही देता हूं, हम पेरेंट्स बनने वाले हैं।''

"अरे वाह! यह तो सचमुच बहुत खास बात है। बधाई दोनों को।'' मैंने देखा, प्रिया ने नजरें झुका ली हैं और शर्म से उसके गाल लाल हो उठे हैं।

प्रिया की देखभाल के लिए अविनाश की माँ आ गई है, इसलिए उनके घर मेरा आना-जाना कम हो चला है। फिर भी, महीने में एकाध चक्कर लग ही जाता है।

अविनाश ने ही मुझे फोन पर यह खुशखबरी दी कि

उनके बेटा हुआ है। खुशी की बात थी। उनकी खुशी में मैं भी खुद को खुश पा रहा था। लेकिन, यह खुशी ज्यादा दिन कायम नहीं रह सकी। दो-तीन महीने में ही स्पष्ट हो गया कि बच्चा नॉर्मल नहीं है। प्रिया का बुरा हाल है। वह बहुत दुःखी है और हमेशा परेशान रहती है। परेशान तो अविनाश भी है। उसके हँसी-ठहाके न जाने कहाँ गायब हो गए हैं। वह खुद डॉक्टर है। उसने हर वो उपाय अपना कर देख लिया है जो विशेषज्ञ डॉक्टरों ने बताया, पर जरा भी लाभ नहीं हुआ।

डाष्क्टरों के सारे प्रयासों की असफलता देखकर जहाँ अविनाश हतोत्साहित हो चला है, वहीं प्रिया हर उस टोने-टोटके को आजमाने में लगी है जो उसे कहीं से भी मालूम पड़ जाता है। ऐसा कोई सा भी उपाय वह नहीं छोड़ना चाहती, जिसके बारे में उसे पता चला हो। वह हर देवी-देवता के दर पर जाकर अपने बच्चे के अच्छा होने की भीख माँग चुकी है। यहाँ तक कि वह मजारों पर चादर भी चढ़ा आई है। पर, कोई लाभ नहीं मिला है।

मैं जब कभी उनके घर जाता हूँ तो वहाँ का माहौल देखकर बड़ा अजीब-सा लगता है। बच्चा दिनोंदिन बड़ा होता जा रहा है और उसकी एबनार्मिलिटी खुलकर सामने आ रही है। मैं वहाँ पहले की तरह ज्यादा देर बैठ नहीं पाता। अविनाश और प्रिया की हालत देखकर मेरा मन खिन्न हो जाता है। मैंने कई बार बहुत मन से उस ऊपर वाले से प्रार्थना की है कि वह उनके बच्चे को अच्छा कर दे। पर काश ऐसा हो पाता।

आज बहुत दिन बाद मैं उनके घर आया हूँ। अविनाश बहुत परेशान और उद्विग्न नजर आ रहा है। मेरे बार-बार पूछने पर उसने बताया है, “मयंक भाई, मैं डॉक्टर हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ कि इस तरह की जन्मजात कमियाँ दूर नहीं होतीं। प्रिया को भी समझा-समझाकर हार गया हूँ, ईश्वर ने जो हमें दिया है, उसे स्वीकार कर लेने के अलावा हमारे पास और कोई चारा नहीं है। पर, वह इस बात को समझती ही नहीं। उसने हर तरह के नुस्खे आजमा लिये हैं। पर, अब...।''

“पर अब, क्या?”

“किसी ने उसे एक तांत्रिक से मिलवाया है। तांत्रिक का कहना है कि वह विशेष तांत्रिक क्रिया करके सबकुछ ठीक कर देगा। प्रिया समझ नहीं रही है, वह किस गोरखधंधे में फँस जाना चाहती है।''

“यह भी करके देख लेने दो उसे...।''

“क्या देख लेने दूँ उसे, वह इस तांत्रिक क्रिया में भैरवी बनने को तैयार है।''

“क्या कह रहे हो तुम...भैरवी? उसे मालूम है, भैरवी क्या होती है, तांत्रिक क्रिया में भैरवी की क्या भूमिका होती है?”

“मालूम नहीं, उसे कितना पता है। वह अपने बच्चे के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है। मैं तो उसे समझा-समझाकर हार गया हूँ। तुम उसके पुराने मित्र हो, उसे समझाओ यार।''

मुझे प्रिया से पूरी सहानुभूति है, पता नहीं किस तांत्रिक के चक्कर में पड़ गई है। वास्तविक तांत्रिक ऐसे ही पड़े हुए नहीं मिल जाते। बहुत लंबी और कठोर साधना के बाद कोई सच्चा तांत्रिक बनता है। ये गली-मोहल्लों में पाए जाने वाले तथाकथित तांत्रिक मजबूर लोगों का कैसा आर्थिक और शारीरिक शोषण करते हैं, इसकी खबरें आए दिन अखबारों में पढ़ने को मिलती रहती हैं। प्रिया मेरा पहला प्यार है। मैंने तय किया है कि मैं उसे समझाने का प्रयास करूँगा।

मैं उनके घर आया हुआ हूँ। हम तीनों ड्राइंग रूम में बैठे हैं। अविनाश मुझे इशारा करके जान-बूझकर वहाँ से उठकर चला गया है। मैंने सिर झुकाए बैठी प्रिया से कहा है, “मैं यह क्या सुन रहा हूँ, तुम किसी तांत्रिक से पूजा करवाने जा रही हो?”

“इसमें बुरा क्या है? अगर कोई तांत्रिक अपनी शक्तियों से मेरे बच्चे को अच्छा कर सकता है, तो मैं इसके लिए तैयार हूँ।''

“भैरवी बनने के लिए भी।”

"मैं अपने बच्चे के लिए कुछ भी कर सकती हूँ।''

"तुम्हें पता है, भैरवी क्या होती है?"

"हाँ, उसे तांत्रिक के साथ कुछ क्रियाएँ करनी होती हैं।''

"तुम्हें पता है, वह तांत्रिक सच्चा साधक है?"

"हाँ, मैं उससे कई बार मिली हूँ, उसका दावा है कि कुछ विशेष तांत्रिक क्रियाओं से वह मेरे बच्चे को बिलकुल ठीक कर देगा। बस, मुझे उन क्रियाओं में भैरवी बनकर उसका साथ देना होगा।''

"सुनना चाहोगी भैरवी कैसे साथ देती है उसका?"

"मैंने कहा ना बस मेरा बच्चा ठीक हो जाए। मैं उसके लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ।''

"पता नहीं, उसने तुम्हें क्या बताया है और क्या छुपाया है...।''

"मतलब क्या है तुम्हारा? क्या तुम नहीं चाहते कि मेरा बच्चा सामान्य ज़िंदगी जिए?"

'क्यों नहीं चाहूँगा, इससे बड़ी खुशी मेरे लिए और क्या होगी? पर, मेरा फर्ज बनता है कि अगर कोई तुम्हें अँधे कुएं की ओर धकेल रहा हो तो तुम्हें रोकूँ।''

"क्या कहना चाहते हो साफ-साफ कहो।''

"सुनो, यह साधना स्त्री-पुरुष की आपसी सहमति से की जाती है। जहाँ तक मैंने पढ़ा है, इसमें साधक-साधिका एक-दूसरे को भैरव-भैरवी के रूप में संकल्पित करके विशिष्ट विधि से पूजा करते हैं।

किसी एकांत में भैरवी का अंकन सिंदूर, आटा, रक्त, चंदन से करके उसकी पूजा करने के बाद प्रतिदिन महाकाल रात्रि में एक-दूसरे को गोद में बैठाकर मानसिक एकाग्रता के साथ मंत्रों का जाप किया जाता है। ऐसी साधना में रति क्रीड़ा भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्या तुम इसके लिए तैयार हो? फिर क्या तुम्हें सच्चा साधक मिल गया है? क्या तुम विश्वासपूर्वक कह सकती हो कि तुम किसी के फरेब में नहीं आ रहीं? एक सच्चा तांत्रिक बनना जितना कठिन है, उससे भी ज्यादा कठिन है सच्चा साधक मिलना। फिर क्या गारंटी है कि इस सबके बावजूद तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाए?"

वह विस्फारित नेत्रों से मुझे देखने लगी। फिर बोली, "तुम्हें पता है कोई सच्चा साधक, मुझे ले चलो उसके पास। बस मेरा बच्चा ठीक हो जाए।''

मैं हैरानी से भर उठा हूँ। मतलब साफ है कि अगर किसी सच्चे साधक से उसे मिला दिया जाए, तो वह यह सब कुछ जानने के बाद भी भैरवी बनने के लिए तैयार है। मैं बड़ी मुश्किल से बोल पाया हूँ, "तुम वही हो ना जो मुझे, अपने प्रेमी को भी अपने शरीर से दूर रखती रहीं? तुम वही हो ना जो कहती थीं, अपने शरीर को खिलवाड़ बनाने का मन नहीं करता मेरा।''

वह दोनों हाथों में मुंह छुपाकर फूट-फूट कर रोने लगी है, "हाँ, मैं वही हूँ। बस चाहती हूँ, कैसे भी मेरा बच्चा ठीक हो जाए। मैं उसे ऐसे नहीं देख सकती।''

उसके रोने की आवाज सुनकर अविनाश भागता हुआ यहाँ आ पहुँचा है। उसने प्रश्नभरी नजरों से मुझे देखा है। मैंने उसे चुप रहने का इशारा किया है। मेरे उस इशारे में आश्वस्ति कम, चिंता ज्यादा भरी है। प्रिया उठकर अंदर चली गई है। वहाँ और बैठे रहना मेरे लिए असह्य हो गया है, मैं भी अविनाश से इज़ाजत लेकर चला आया हूँ।

आज अविनाश का फोन आते ही कपड़े पहनता हुआ मैं तुरंत बाहर आ गया हूँ। मुझे बहुत घबराहट हो रही है। पता नहीं, रात में उस बच्चे के अचानक चले जाने के बाद प्रिया किस हाल में होगी।

सचमुच प्रिया का रो-रो कर बुरा हाल है। डॉक्टर अविनाश ने खुद को संभाला हुआ है। बच्चों के लिए माँ के वात्सल्य की गहराई के बारे में सुना तो बहुत था, पर जो कुछ सामने था, उसे देखकर विस्मित हूँ। मेरे जेहन में अचानक मेरी माँ का चेहरा तैरने लगा है। वह मेरे छुटपन में ही भगवान के पास चली गई। मैं सोच रहा हूँ, काश मेरी माँ मेरे पास होती और मैं उसके वात्सल्य की गहराइयों के तल में गोते लगा रहा होता।

पढ़े-लिखे का कचरा

प्रेम जनमेजय

सुबह घंटी बजी। सुबह का समय घंटियों का होता है। मंदिर में बजने वाली घंटियों की बात नहीं कर रहा हूं, क्योंकि मंदिरों के मामले पेचीदा होने लगे हैं और न्यायालय तक पहुँचने लगे हैं। मैं सुबह-सुबह भिन्न-भिन्न समय पर, भिन्न-भिन्न कामों के लिए बजने वाली घंटियों की बात कर रहा हूं। सुबह दूधवाला, कूड़ेवाला, सब्जीवाला, कामवाली आदि हमारे सेवार्थ आते हैं और घंटियां बजाते हैं। हम द्वारपाल बने इनके लिए द्वार खोलते रहते हैं। सबका समय लगभग निश्चित है। इतना निश्चित कि अपने समय पर कामवाली घंटी न बजाए तो दिल डूबने लगता है।

हार्टअटैक जैसा दर्द उठने लगता है। गृहस्वामिनी हनुमान चालीसा का पाठ छोड़ सुबह-सुबह, 'जरा-सी आहट होती है तो दिल सोचता है कि कहीं ये वो तो नहीं', वाले गीत का पाठ करती है। गृहस्वामी घड़ी-घड़ी कभी घंटी और कभी घड़ी को चेक करते हैं। बड़ी खराब आदतें डाल दी हैं इन घंटियों ने। कूड़े वाले के टाइम पर घंटी बजते ही कूड़ादान उठाते हैं, दरवाजा खोलते हैं, उसे थमाते हैं और दरवाजा बंद कर देते हैं। प्रजातंत्र में भी तो चुनाव की घंटी बजते ही ऐसे ही कूड़ादान किया जाता है। विज्ञापन की दुनिया में कचरा भी बाई वन गेट वन फ्री की शैली में बिकता है और राजपथ की शोभा बढ़ाता है। एक दिन, कूड़ादान के समय पर घंटी बजी तो मैंने आदतन कूड़ादान उठाया, द्वार खोला, कूड़ा पकड़ाया और दरवाजा बंद कर दिया। हमें कूड़ादान करने से मतलब होता है, किसको दान कर रहे हैं उससे क्या लेना? हमें तो इससे मतलब है कि अपने घर का कचरा बाहर गया, कहां गया और कौन ले गया, इससे क्या मतलब! उस दिन तत्काल दूसरी घंटी बजी। अब कौन आ मरा टाईप भावना से मैंने पुनः द्वार खोला। मेरे सामने मेरा कॉलेज का भूतपूर्व सहकर्मी भाटिया खड़ा था। उसके हाथ में मेरे द्वारा दान किया कूड़ेदान था और कूड़ादान लिए रूप के भयंकर अवमूल्यन-सा गिरा लज्जित खड़ा था। वह कॉलेज में पढ़ाता है और दिमागी कचरा साफ करता है, पर मैंने...। मैं कॉलेज से सेवानिवृत्त हो चुका हूं पर मेरे कुछ मित्र अभी भी शिक्षक बन देश की 'सेवा' कर रहे हैं। यह वैसी वाली सेवा नहीं है जैसी सेवा हमारे देशसेवक मंत्री-संत्री या चौकीदार बन करते हैं। यह वो सेवा है जो यदि मन से करो तो और सेवा मिलती है। मैं कॉलेज से निवृत्त हो चुका हूं पर बड़ी बात है कि मेरे मित्रों ने मुझे मित्रता से निवृत्त नहीं किया है। वे अभी भी मेरे मित्र हैं। मुझे कॉलेज से सेवानिवृत्त हुए वर्षों हो गए इसके बावजूद वे मेरे मित्र बने हुए हैं। अन्यथा होता तो ये है कि कार्यालय/विश्वविद्यालय/संस्थान से सेवानिवृत्त होते हैं तो बहुत देर से जल रहे दीये की धीमी पड़ती लौ से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अंततः वीरगति को प्राप्त होते हैं। स्नेह सूख जाता है। और क्या चल रहा है टाईप फोन भी मौन साध लेते हैं। पर उनका स्नेह नहीं छूटा है। यदा-कदा ही नहीं सदा मिलने की इच्छा रखते हैं, मिल न पाएं, तो फुनवा लेते हैं। मुझे अच्छा लगता है कि संवादहीनता के दौर में भाटिया जैसे दुर्लभ प्राणी मेरी जिंदगी मे हैं। पर उस दिन तो मैंने घंटीकाल के कारण उसका कचरा कर दिया था।

आज सुबह की घंटी बजी। यह घंटीकाल किसी का नहीं था और जो काल किसी का नहीं होता है वो मुसीबतकाल होता है। मैंने दरवाजा खोला तो सामने गरीब हुलिए में, देश के विरोधीदल जैसा निस्तेज जीव

खड़ा था। उसके चेहरे पर वोटर से मिली उपेक्षा का दर्द था। निचुड़ चुके उस वंचित वोटर पर मैंने सत्ताधारी दृष्टि डाली और बोला—''क्या बात है?'' वो थाने में बयान देती उस रेप पीड़िता-सा हकलाया, जो किसी मंत्री की शिकार थी, और बोला- मेरे पेट में भयंकर दर्द है।

- तो मैं क्या करूं?
- आप डॉक्टर हैं, मेरा इलाज करें।
- तुमसे किसने कहा कि मैं डॉक्टर हूं।
- एक बॉसकेट पहिने आदमी ने मुझे आपके घर की दिशा दिखाते हुए कहा कि वहां डॉक्टर साहेब रहते हैं।
- जिसने तुम्हें दिशा दिखाई, उसने कुर्ता-पायजामा के ऊपर बॉसकेट पहनी थी?
- हां।
- उसने तुम्हें गलत दिशा दिखाई है। वह पूरे देश को गलत दिशा दिखाता है। मैं तुम्हारा इलाज नहीं कर सकता।
- क्यों, क्या आप डॉक्टर नहीं हैं?
- मैं डॉक्टर हूं पर इलाज वाला नहीं। मैं पढ़ाई-लिखाई वाला डॉक्टर हूं।
- जो इलाज करते हैं वे बिना पढ़े-लिखे डॉक्टर होते हैं?
- मैं हिंदीवाला डॉक्टर हूं।

- आप हिंदी में डॉक्टरी पढ़े हैं...आपका तो फीस भी कम होगा ... हिंदीवाला तो बहुत दयालु होता है, गरीब की भाषा समझता है। हमारा इलाज कर दें, बहुतो दर्द हो रहा है।

अब उस अज्ञानी आमजन को मैं पीएचडी डॉक्टर कैसे समझाता कि मैं कैसे वाला डॉक्टर हूं। मैंने पीछा छुड़ाने की शैली में कहा—''उसने तुमसे गलत कहा, मैं कोई डॉक्टर-वॉक्टर नहीं हूं।''

इतनी देर में अभिवादन गूंजा-''नमस्कार डॉक्टर साहेब!'' सामने भाटिया खड़ा था।

- ''देखिए ये भी आपको डॉक्टर साहेब कह रहे हैं?'' और फिर भाटिया की ओर हाथ जोड़कर बोला—आप ही हमारी मदद करें। कल रात से पेट में भयंकर दर्द हो रहा है। हम इनके पास आए कि कोई दवाई दे दें पर ये कह रहे हैं कि हम कौनो डॉक्टर नहीं हैं। आप भी तो इलाज को आवे हैं, हमारा भी करवा दें।''

भाटिया के घर के पास इलाज वाले डॉक्टर भल्ला रहते थे। वह ऐसे भ्रम का अनेक बार सामना कर चुका था। बोला—''हम समझाते हैं। तुमने 'चुपके चुपके' फिल्म देखा है?''

- फिल्म देखेंगे तो दिहाड़ी पे कौन जाएगा? हम क्यों देखें?

- ''हमने देखी है। देखो डॉक्टर कई तरह के होते हैं। आदमियों के होते हैं, जानवरों के होते हैं, घासपूस के होते हैं....इन्हें घासपूस वाला डॉक्टर समझो और जाकर किसी आदमी का इलाज करने वाले डॉक्टर के पास जाओ।'' वो चला गया, पर उसके चेहरे पर नेताई आश्वासन का अविश्वास था।

वो बाहर गया और मैं भाटिया को अंदर लाया। भाटिया बतरसी है अतः मैंने बतरस का आनंद लेने के लिए पूछा—''और कॉलेज में क्या चल रहा है?''

भाटिया गिरते सैंस्कस के कारण किसी निवेशक-सा उदास हो गया और बोला..पढ़ाई के इलावा सब चल रहा है। स्टूडेंट भावशून्य आपकी ओर ऐसे देखता है जैसे चुनौती दे रहा हो..पढ़ा के तो दिखा। कॉलेज 'सांस्कृतिक सप्ताह' के नाम पर अय्याशी का अवसर बन गए हैं। डरपोक प्रिंसिपल कबूतर सा आँख बंद किये कमरे में एक बार देखी फाइलों में पुनः सिर गड़ा, व्यस्त दिखने की नौटंकी करता है। पाँच सितंबर को 'शिक्षक दिवस' होता है और उस दिन ट्विटर, दूरदर्शन, पास दर्शन, भाषणों द्वारा गुरुओं का वंदन किया जाता है। पर गुरु कहता है- हमारा वंदन न करें, हमारा क्रंदन सुनें। ये क्रंदन केवल 'शिक्षक दिवस' के लिए नहीं है। यह क्रंदन केवल आज नहीं उपजा है। ये क्रंदन तो पिछले अनेक वर्षों से हो रहा है। बस अंतर इतना है कि पहले सहनीय था अब असहनीय हो चला है। मैंने कहा—''तूं कबीर नहीं है, भाटिया है, काहे उदास होता है। कबीर ने गुरु को गोविंद

से श्रेष्ठ बताया है, पर आजकल गुरु श्रेष्ठ से श्रेष्ठी हो गए हैं। उनके हाथ में तराजू आ गया है। गुरु गोविंद हो गए हैं। धार्मिक शिक्षा के गुरु, जैसा चढ़ावा वैसा फल देने वाले हो गए हैं। गुरु गोविंद बन वरदान दे रहे हैं। इस चक्कर में गुरुओं ने बाबा का चोला धारण कर लिया है। भक्तों की बूँद-बूँद श्रद्धा से उनका सागर भर रहा है। आश्रम फल-फूल रहा है और अनेक फूल-सी बालाएं उसकी शोभा बढ़ा रही हैं।

राजनीतिक गुरु तो और महान् हो गए हैं। वे देवत्व धारण कर आते हैं। उनके देवगुणों का प्रचार होता है, पर जब जनता जनार्दन से संबोधित होते हैं तो देवता से प्रभु हो जाते हैं। आप उनके भक्त हों न हों वे आपको वरदानों के दनादन आश्वासन से आपकी झोली भर देते हैं। इन वरदानों के समक्ष आपको अपना मत क्षुद्र लगता है और आप उनके चरणों में चढ़ा आते हैं। ये दीगर बात है कि आपकी जिस झोली को वे भरते हैं उसमें, मतोपरांत तत्काल छेद हो जाता है। सारे वरदान झर जाते हैं। अच्छे दिन के सपने निराकार प्रभु हो जाते हैं।

अधिकांश गुरु अपनी शरण में आए चेलों को सुरक्षा का अभयदान देते हैं। ये दीगर बात है कि स्वयं सुरक्षा के घेरे में रहते हैं।''

भाटिया ने चाय के साथ बिस्कुट को ऐसे कुतरा जैसे आजकल शिक्षा कुतरी जा रही है। बोला—गुरुदेव! एक समय था जब खेलने-कूदने वाले खराब होते थे और पढ़ने वाले नवाब होते थे। आजकल नवाब बनने के लिए खेलना-कूदना पड़ता है। पहले खेल के मैदान, मैदानों में होते थे, आजकल संसद के गलियारों, न्यायालय, मंदिर-मस्जिद, मॉल-शॉल, साहित्य -वाहित्य, अफतर-दफ्तर, कंक्रीट के जंगल में जहां, तहां और वहां खेल चालू हैं। केवल 'खेल' खेलना ही नहीं होता उसे जीतना भी पड़ता है। जो जितना 'दंगई खेल'(रफ गेम) खेलता है उतना ही जीतता है। जीतने वाले को नवाब कहते हैं। नवाब कभी हारा नहीं करते। आजकल के नवाब तो पूरा खेल खरीद लेते हैं। एक बार नवाब बन जाएं तो बिन खेले जीत सकते हैं। चलिए छोड़े ये रंडी रोना, जितना रोएंगे उतने आँसू सूखेंगे। ये बता, गुरुदेव! लेखन कैसा चल रहा है? मेरा लेखक मन उदास होकर बोला- ''ठीक ही चल रहा है भटिया! पर देखता हूँ चार-पाँच साल खिलाड़ी बढ़िया खेल ले तो खूब पैसे में खेलता है। या किसी का गाना हिट हो जाए, फिल्म हिट हो जाए तो सेलीब्रेटी हो जाता है। उसका म्यूजम में पुतला लगता है, जवानी में पद्मश्री मिल जाती है। यहाँ हम ज़िंदगीभर किताबों में सर मारते रहे, कागज़ काले करते रहे। भ्रम पालते रहे कि समाज के आगे चलने वाली मशाल हैं। हमें क्या, प्रेमचंद जैसों को क्या मिला? एक मूरत जिस पर कबूतर बीठते हैं। एरकंडिशन में पुतला लगा? हम पुतले देखने जाएं तो लाइन में लगा दिए जाते हैं, टिकेट अलग खरीदना पड़ता है।

कलम घंसीटू इतिहास तो बन सकते हैं, नवाब नहीं।'' ''...गुरुदेव! आप मुझे कह रहे थे कि तूं कबीर नहीं है, काहे उदास होता है। ये कबीरों का जमाना भी नही है। शिक्षा प्रोडेक्ट बन गयी है। जब नैतिकताएँ प्रोडेक्ट बन गई हैं तो....आजकल शिक्षा नहीं दी जाती प्रशिक्षित किया जाता है। या तो शिक्षा का व्यापार करें या फिर अपने पर हँसें। संवेदनशील कमजोर होता है, वह दूसरे पर नहीं अपने पर हँसने की हिम्मत रखता है। दर्द जितना बड़ा होता है उसकी मजबूरी उतना ही उसे अपने पर हँसने को मजबूर करती है।

आप हँसकर दर्द को टाल नहीं रहे होते हैं, अपितु अपने 'मनुष्य' होने पर हँस रहे होते हैं। आप हँस रहे होते हैं कि आप मनुष्य का अनमोल जन्म पाए जीव हैं पर अनमोल सुख लग्जरी कार में बैठा कुत्ता उठा रहा है।'' इतनी देर में घंटी बजी। मैंने कहा- ''लगता है कूड़े वाला आया है।'' भाटिया हँसा और बोला- ''आज शिक्षा पर हमने बहुत कचरा फैलाया है। ये हम पढ़े-लिखों का कचरा है। न जाने इसके कूड़ेदान का कब स्वच्छता अभियान आरंभ होगा। गुरुदेव! आज 11 बजे की क्लास है, चलूँ दीवारों को पढ़ा आऊँ।''

मैंने भी हँसकर कहा, ''मेरी शुभकामना, तुम्हें एक दीवार तो कान वाली मिले।''

मन चंदा तो कठौती गंगा

अशोक गौतम

मैं आठ पहर चौबीस घंटिया चंदाधारी जीव हूं। मेरी आय का पूरा अवैध साधन चंदा है। जिस तरह वे पॉलिटिक्स के होल टाइमर हैं उसी तरह मैं चंदे के धंधे में संलिप्त होल टाइमर हूं। मैं सोए-सोए भी चंदे का धंधा करता रहता हूं।

आज समाज में दो ही जीव चांदी कूट रहे हैं—एक चंदा लेने वाले तो दूसरे चंदा देने वाले। वे चंदा लेकर धंधा करते हैं तो वे चंदा देकर धंधा करते हैं। सरकारी नौकरी में पीउन को भी इनकम टैक्स स्टेटमेंट भरनी पड़ती है पर मैं चंदे को कहीं शो नहीं करता। जिसका हिसाब ही नहीं, उसे शो भी क्यों करना?

मेरे पिताजी भी चंदाधारीजीव ही थे। मतलब, मेरे पिताजी के टाइम से हमारे परिवार की मौज-मस्ती का आधार ये चंदा ही है। चंदे के धंधे के चलते उनके समय से ही हमारा परिवार 'दिन दुगुनी रात सौ गुनी' उन्नति कर रहा है। ये तो वे मुझे बताकर नहीं गए थे कि उन्होंने क्या सोच कर पुराना खानदानी धंधा बंद कर चंदे का धंधा अपनाया था, पर जैसे भी अपनाया था, उनके सारे कदमों में ये सबसे समझदारी का कदम था। मैं अपने पिताजी की पूजा उनके इसी कदम को लेकर करता हूं। अब तो मेरी बीवी मेरे बेटे को चंदा मामा का गीत सुनाते हुए नहीं सुलाती, वह चंदे की लोरी सुनाते हुए सुलाती है। और मजे की बात! चंदे की लोरी की पहली लाइन सुनते ही वह घोड़े बेच कर सो जाता है।

हो सकता है, तब मेरे पिताजी को सपने में चंदे में छुपी तीव्र विकासात्मक क्वालिटी का पता चल गया होगा। चंदे के धंधे में उन्होंने बहुत दूर-दूर की यात्राएँ की थीं। वैसे पूरे समय में एक ही जगह रहकर चंदा नहीं उगाहया जा सकता। एक ही बात को लेकर चंदा माँगते हुए चंदा लेने वाले की नीयत पर चंदा देने वालों को शक सा हो जाता है। अगर उस समय मेरे पिताजी ने आदरणीय-परमादरणीय चंदेश्री को धंधे के रूप में न अपनाया होता तो आज जहां आप मुझे देख रहे हैं, वहां मैं दस बार जन्म लेने के बाद भी न होता।

बंधुओ! शेयर बाजार में शेयर गिर सकते हैं, पॉलिटिक्स की मार्किट में नेताओं के भाव गिर सकते हैं, पर चंदे के बाजार में चंदा हमेशा चाँद छुआ, रहता है।

जब मेरा मन पुण्य कार्यों में सर्वसाधारण की सहभागिता के लिए चंदा लेने को करता है, मैं कभी इस मुहल्ले से मंदिर निर्माण के नाम पर फर्जी रसीदें छपवा चंदा इकट्ठा करने निकल पड़ता हूं तो कभी उस मुहल्ले मस्जिद निर्माण के नाम पर।

कभी गुरुद्वारे के नाम पर फर्जी रसीदें छपवा जनता से हँसते हुए त्यागी तपस्वी की मुद्रा बनाए उगाह लेता हूं तो कभी चर्च के नाम पर। जनता से चंदा उगाहने के कारण अनंत हैं।

चंदे की महिमा अपरंपार है। हाथों से दान दिया अकारथ हो सकता है, पर चंदा हर स्वार्थ की सहज पूर्ति करता है। मेरे पड़ोस में एक गरीब पढ़े-लिखे थे। बार-बार प्रोफेसर का इंटरव्यू दे रहे थे।

पर चयन न होता, तो एक दिन मुझे उन पर दया-सी आई तो मैंने उन्हें छोटी-सी सलाह दी, 'चंदा दो और प्रोफेसरी का धंधा लो। इंटरव्यू देते बार-बार क्यों बदनामी करवाते हो चंदे में धंधा दिलवाने की असीम शक्ति होती है।'

फिर वही हुआ। उन्होंने विश्वविद्यालय कल्याण के नाम पर कहीं चंदा दिया और प्रोफेसरी के मनवाँछित धंधे को प्राप्त हुए। बोलो! चंदाजी महाराज की, जय!

जरूरतमंद से जरूरतमंद भिखारी को भी कंगाल हजार रुपये की गालियाँ देकर दस रुपये देते हैं, पर धर्म के नाम पर लोग दस के बदले सौ हँसते हुए देते हैं। अपना पेट तक काट कर। भीख और चंदे में यही बेसिक अंतर है।

इसलिए समझदार भीख का नहीं चदे का धंधा करते हैं। भीख माँगते हुए इज्जत पानी-पानी करनी पड़ती है, जबकि चंदा देते हुए चंदा देने वाला सौ की ताकत रखते हजार देता हुआ भी सिर झुकाए पानी-पानी होता रहता है। धर्म के नाम पर चंदे के नाम पर जितने मजे से हर धर्म के विद्वानों तक को ठगा जा सकता है, उतने मजे से किसी और के नाम पर नहीं।

धर्म के बाद जिसके नाम पर बड़े-बड़े अपनी कंपनी की कमाई से अधिक चंदा देते हैं वह है राजनीति। समझदार पूँजीपति पार्टी की हवा देखकर उस पर चंदा लगाता है, पर दूसरे दलों पर भी वह बाजार की ताजा समझ के हिसाब से सब पर लगता है।

लोकतंत्र में चुनाव में जनता की हवा का कुछ पता नहीं चलता। क्या पता, कब किस ओर मुड़ जाए। इसलिए समझदार पूँजीपति हर खड़े पड़े उम्मीदवार पर चंदे का दाँव लगाता है। बाद में उनमें से जो जीत कर आ गया उसको दिए चंदे की आड़ में लाख के बदले करोड़ कमाता है। राजनीति के बाजार में लगाए चंदे की यही रीत होती है। पूँजीपतियों की बस इतनी ही चंदा लेने वालों से प्रीत होती है।

कल फिर दूसरे शहर में गऊ सेवा सदन निर्माण की रसीदें झोले में डाल कूड़े के ढेर पर कूड़ा खाती गाय का रूप धारण कर निकला था कि सामने चंदामामा! हाय! धंधे पर जाते किसका मुँह दिख गया! चंदामामा को छोड़ जब से मैं चंदे के सहारे मस्ती कर रहा हूँ तब से ही चंदामामा मुझसे नाराज चल रहे हैं। उन्हें लगता है कि जो बचपन में उनसे प्यार करता था, वह चंदे के चक्कर में पड़ उनको विवाह हो चुके प्रेमी की तरह अपनी एक्स प्राणों से भी प्यारी प्रेमिका को भूल गया है। चंदामामा ने मेरा रास्ता रोकते पूछा, 'और भानजे क्या चल रहा है?'

'वही सब जो पिताजी के समय में चला करता था।'

'देख रहा हूँ तुम अब अपने चंदामामा से अधिक प्यार चंदे से करने लगे हो।'

'करूं क्यों न! चंदामामा का प्रेम उतना नहीं देता जितना चंदा दे रहा है।'

'क्या मतलब तुम्हारा?' चंदामामा का मुँह मुक्तिबोध के चाँद से टेढ़ा हुआ।

'देखो चंदामामा! तुमने फिल्मों को दो-चार गीत क्या दे दिए, अपने को बड़ा मानने लग गए? शायरों को दो-चार हजार दिलाने वाला यथार्थ के धरातल पर एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर जीने वालों का प्यारा कैसे हो सकता है? इधर चंदे को देखो! देश में कितनों के परिवार मजे से पाल रहा है। कितनी पार्टियों का कल्याण कर रहा है।

अब तो औसत से औसत माँएं भी अपने बच्चों को तुम्हारे वाली लोरी नहीं सुनातीं मामा! वे भी बच्चे के पास अपने मोबाइल की यूट्यूब ऑन कर रख देती हैं और उसमें कुछ भी सुनता बच्चा लंबी तान कर दो पल में ही सो जाता है।

अब रही बात प्रेमियों की! तो उनके पास अपनी प्रेमिका के मुखड़े से तुम्हारी उपमा देने का समय ही कहाँ है! बेचारे गले में एक से एक उम्दा डिग्रियाँ लटकाए इधर-उधर अप्लाई करते थक चुके हैं। ये तो शुक्र है नरक में नौकरियाँ नहीं खुल रहीं। वर्ना वे वहाँ भी अप्लाई करने से न हिचकते। ऐसे में चंदे से प्रेम न करूँ तो किससे करूँ?' मैंने उलाहना देते हुये कहा तो चंदामामा ने हौले से मेरे कान पकड़ मुझे पाजी कहा और अपने रस्ते हो लिए।

स्वास्थ्य साहित्य

कुंडलिनी योग एवं मेडिकल साइंस–एक विवेचन

डॉ. श्याम सखा श्याम

सबसे पहले हम यह समझ लें कि जीवन में ऐसा कोई क्षण नहीं होता जब हमारे शरीर का मन पर प्रभाव न हो और न ही ऐसा कोई क्षण होता है जब मन का शरीर पर प्रभाव न हो।

इसे मन शरीर [psycho–somatic] संबंध कहा जाता है। हम जानते हैं कि मन हर समय सोचता रहता है और इन विचारों से उत्पन्न होने वाली भावनाओं के माध्यम से शरीर मन से जुड़ा होता है। विचार भाव पैदा करते हैं। भावनाएँ बहुत विशिष्ट हार्मोनल केंद्रों को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, हमारा डर हमेशा हमारी रक्षा प्रणाली से जुड़ा होता है, जो हमें लड़ो या भागो व्यवहार [fight or flight mode] के लिए प्रेरित करता है। इसी प्रकार अन्य अनेक अवाँछित स्थितियों जैसे क्रोध, पीड़ा आदि में जैव-रासायनिक अभिक्रियाओं के कारण कुछ विशिष्ट हॉर्मोन केंद्र सक्रिय हो जाते हैं।

आमतौर पर हमारे विचार निचले ऊर्जा केंद्रों में संग्रहीत या कैद होते हैं–

चक्र और ऊर्जा केंद्र

Name	Colour	body part	Emotion
1. मूलाधार	orange नारंगी। Above genitals		सुरक्षा, संतुलन
2. त्रिक चक्र (स्वाधिष्ठान)	Red लाल		
			भावनाएँ कामुकता एवं रचनात्मकता
Sacral Chakra			
		Base of spine	Conneted with strenglt-vitality
		[Perinium]	
3. मणिपुर Solar Plexus Chakra		Yellow पीला	नाभि चक्र

Name	Colour	body part	Emotion
		आत्मसम्मान	emotions (solidarity) compassion, gratitude
4. **अनाहता चक्र** **Heart Chakra** (Anahata)	हरा Green	हृदय स्थान	करुणा का भाव।
5. **विशुद्ध चक्र** Thraot chakara	नीला	कंठ	संवाद करने और अभिव्यक्ति की क्षमता
6. **अजना चक्र** C (Ajna)	Indigo	तृतीय आँख स्थान पर	अंतर्ज्ञान और स्पष्टता Wisdom that extends beyond logogic
7. **सहस्रार** **Sahasara** Crwon			the highest level of consciousness And understanding

हमारे शरीर में सात चक्र होते हैं। कुंडलिनी का एक सिरा मूलाधार चक्र में है, और दूसरा सिरा रीढ़ के चारों ओर लिपटा हुआ है, ऊपर की ओर बढ़ता है, तो इसका लक्ष्य सातवें चक्र, सहस्रार तक पहुँचना होता है। कुंडलिनी के जाग्रत होने पर व्यक्ति का झुकाव सांसारिक सुखों से हटकर अध्यात्म और रहस्य की ओर हो जाता है। कुंडलिनी जागरण से शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा में वृद्धि होती है तथा व्यक्ति स्वयं में शक्ति एवं सिद्धि का अनुभव करने लगता है।

कुंडलिनी योग और न्यूरोलॉजी

इसके लिए हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—एलोपैथी का सहारा लेंगे।

एलोपैथिक एनाटॉमी और फिजियोलॉजी अध्ययन कंप्यूटर के समान हैं। एनाटॉमी को हार्डवेयर कहा जा सकता है और फिजियोलॉजी को सॉफ्टवेयर कहा जा सकता है। कंप्यूटर के पुर्जों की तरह, इसमें कई प्रणालियाँ हैंए जिनमें आहार प्रणाली—भोजन संबंधी, और एक हृदय प्रणाली हृदय और रक्त वाहिकाएँ शामिल हैं। इन प्रणालियों में से एक तंत्रिका तंत्र है, जिसमें एक उप-प्रणाली होती है जिसे स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र [utonomous Nervous system] कहा जाता है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को समझने से हमें कुंडलिनी योग को समझने में मदद मिलेगी।

[Autonomous Nervous systemorANS] स्वतंत्र तंत्रिका प्रणाली :

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र के

रूप में भी जाना जाता है। ANS सचेत, स्वैच्छिक नियंत्रण के बिना कार्य करता है और शरीर में अधिकांश ऊत्तकों और अंग प्रणालियों की गतिविधि को प्रभावित करता है। इसलिए, ANS शरीर के कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान देता है। रक्तचाप का विनियमन, भोजन के लिए जठरांत्र संबंधी प्रतिक्रियाएँ, मूत्राशय के संकुचन, आँखों पर ध्यान केंद्रित करना और थर्मोरेग्यूलेशन (शारीरिक ताप का संतुलन) द्वारा विनियमित कई होमोस्टैटिक (रक्त प्रवाह संतुलन) कार्यों में से कुछ नियम हैं।

ANS दो शारीरिक और कार्यात्मक रूप से अलग-अलग डिवीजनों से बना है : sympathatic प्रणाली और पैरासिम्पेथेटिक सिस्टम।

अभिवाही affarent न्यूरॉन्स और अपवाही efferent न्यूरॉन्सः

अभिवाही affrent न्यूरॉन्स त्वचा और अन्य अंगों के संवेदी रिसेप्टर्स से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (यानी, मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी) तक जानकारी ले जाते हैं, जबकि अपवाही efferent न्यूरॉन्स केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से शरीर की माँसपेशियों और ग्रंथियों तक मोटर जानकारी ले जाते हैं।

अभिवाही affrent **न्यूरॉन्स** संवेदी न्यूरॉन्स के रूप में भी जाना जाता है। बाहरी दुनिया से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क) में संवेदी जानकारी लाने के लिए जिम्मेदार तंत्रिका फाइबर हैं।

जब बाहरी दुनिया से उत्तेजना संवेदी रिसेप्टर्स द्वारा महसूस की जाती है (जैसे, एक गर्म पतीले को छूना), संवेदी शुभ न्यूरॉन्स [sensory afferent neurons] मस्तिष्क को उस उत्तेजना के बारे में जानकारी भेजते हैं। मस्तिष्क में न्यूरॉन्स तब तय करते हैं कि कैसे प्रतिक्रिया दें, और ये एसोसिएशन न्यूरॉन्स मोटर ई न्यूरॉन्स के साथ संवाद करते हैं और रीढ़ की हड्डी के नीचे और माँसपेशियों को जानकारी भेजते हैं। यह संचार इंगित करता है कि किस गति को निष्पादित करना है (उदाहरण के लिए गर्म पतीले से कितनी जल्द हाथ खींचना)।

संक्षेप में, efferent न्यूरॉन्स पूरे शरीर में पाए जाने वाले संवेदी रिसेप्टर्स से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की ओर जानकारी लेते हैं, जबकि अपवाही efferent, मोटर सूचना को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से दूर शरीर की माँसपेशियों और ग्रंथियों में कार्रवाई शुरू करने के लिए ले जाते हैं।

अभिवाही [efferent] न्यूरॉन्स की एक अनूठी संरचना होती है जो अधिकांश अन्य न्यूरॉन्स से भिन्न होती है। इनका कोशिका शरीर मेरू रज्जु के बाहर पृष्ठीय मूल नाड़ी में स्थित होता है। अधिकांश अन्य न्यूरॉन्स के

विपरीत, कोशिका शरीर में एक अक्षतंतु खंवद, होता है, जो दो अलग-अलग शाखाओं में विभाजित होता है। एक संवेदी अंग से जुड़ा होता है और दूसरा संवेदी जानकारी को पृष्ठीय जड़ के माध्यम से रीढ़ की हड्डी तक ले जाता है। दूसरी ओर, अपवाही efferent न्यूरॉन्स का कोशिका शरीर रीढ़ की हड्डी के वेंट्रल हॉर्न में स्थित होता है। चूँकि ये प्रणालियाँ विशेष रूप से किसी दिए गए ऊत्तक पर प्रभाव डालती हैं, एक प्रणाली की गतिविधि को बढ़ाने के साथ-साथ अन्य परिणामों की गतिविधि को कम करती हैं, ऊत्तक कार्य का एक तेज़ और सटीक नियंत्रण होता है।

कुछ ऑटोनोमिक रिफ्लेक्सिस, जैसे कि मिक्चुरेटिंग

रिफ्लेक्स (मूत्र) और शौच संबंधी रिफ्लेक्सिस को रीढ़ की हड्डी के स्तर पर संसाधित किया जा सकता है, हालाँकि ये प्रतिबिंब उच्च तंत्रिका केंद्रों से प्रभावित हो सकते हैं, वे मस्तिष्क से इनपुट के बिना हो सकते हैं।

एनर्जी सेंटर v/s ऑटोनोमिक प्लेक्सस

ऑटोनोमिक प्लेक्सस में सिम्पेथेटिक और पैरासिम्पेथेटिक न्यूरॉन्स दोनों होते हैं।

कार्डिएक प्लेक्सस महाधमनी चाप और श्वासनली के कैरिना के पास स्थित है।

पल्मोनरी प्लेक्सस ब्रोन्कियल ट्री को संरक्षण प्रदान करता है।

सीलिएक या सोलर प्लेक्सस, सीलिएक ट्रंक [कलेज] के आसपास स्थित होता है और इसमें सीलिएक गैन्ग्लिया होता है। सोलर प्लेक्सस सबसे बड़ा ऑटोनोमिक प्लेक्सस है और कई उदर और श्रोणि अंगों को संरक्षण प्रदान करता है।

सुपीरियर मेसेन्टेरिक प्लेक्सस में सुपीरियर मेसेन्टेरिक गैन्ग्लिया शामिल है और यह सुपीरियर मेसेन्टेरिक धमनी के आसपास स्थित है। अवर मेसेन्टेरिक प्लेक्सस में अवर मेसेन्टेरिक गैन्ग्लिया शामिल होता है और यह अवर मेसेन्टेरिक धमनी के आसपास स्थित होता है। साथ में, ये प्लेक्सस आँतों को संक्रमित करते हैं।

कुछ अन्य प्लेक्सस में बेहतर और निम्न **हाइपोगैस्ट्रिक प्लेक्सस, रीनल प्लेक्सस, हेपेटिक प्लेक्सस, स्प्लेनिक प्लेक्सस, गैस्ट्रिक प्लेक्सस, पैनक्रिएटिक प्लेक्सस और टेस्टिकुलर प्लेक्सस/ओवेरियन प्लेक्सस शामिल हैं।**

कुछ अन्य प्लेक्सस

सरवाइकल प्लेक्सस :

सर्वाइकल प्लेक्सस ऊपरी चार सर्वाइकल नसों के वेंट्रल रेमी और पाँचवें सर्वाइकल वेंट्रल रेमस के ऊपरी हिस्से से बनता है। सर्वाइकल प्लेक्सस गर्दन की माँसपेशियों और सिर, गर्दन और छाती पर त्वचा के क्षेत्रों को संक्रमित करता है।

गहरी शाखाएँ माँसपेशियों को संक्रमित करती हैं, जबकि सतही शाखाएँ त्वचा के क्षेत्रों की आपूर्ति करती हैं। एक लंबी शाखाएँ मुख्य रूप से C3 और C5 (नर्वस फ्रेनिकस) के तंतुओं के योगदान के साथ C4 के तंतुओं से बनी होती हैं, डायफ्राम की माँसपेशियों को संक्रमित करती हैं। सर्वाइकल प्लेक्सस कपाल नसों, वेगस तंत्रिका और हाइपोग्लोसल तंत्रिका के साथ भी संचार करता है।

ब्रैकियल प्लेक्ससः

ब्रैकियल प्लेक्सस C5-C8-1 स्पाइनल नर्व के वेंट्रल रेमी और C4 और C2 स्पाइनल नर्व के निचले और ऊपरी हिस्से से बनता है। मोटर और संवेदी तंतुओं के साथ कंधे और ऊपरी अंग की नसें ब्रैकियल प्लेक्सस से उत्पन्न होती हैं।

लम्बर प्लेक्सस-काठ जालः

चूँकि लम्बर प्लेक्सस और सैक्रल प्लेक्सस आपस में जुड़े हुए हैं, इसलिए उन्हें कभी-कभी लुंबोसैक्रल प्लेक्सस कहा जाता है। प्लेक्सस की नसें निचले पेट की दीवार, जाँघ और बाहरी जननांग की त्वचा और माँसपेशियों की सेवा करती हैं।

प्लेक्सस की नसें पेरिनियल क्षेत्र, नितंबों और निचले अंगों में भी प्रवेश करती हैं। कटिस्नायुशूल तंत्रिकाएँ मानव शरीर में सबसे बड़ी तंत्रिका, मुख्य शाखा है जो जाँघ, पैर और पैर की माँसपेशियों के मोटर संक्रमण को जन्म देती है। सामान्य पेरोनियल तंत्रिका और इसकी शाखाएँ पैर की त्वचा के कुछ हिस्सों, पैर की पेरोनियल माँसपेशियों और पैर की पृष्ठीय माँसपेशियों को जन्म देती हैं।

Coccygeal plexus-अनुत्रिक जाल

अनुत्रिक जाल रीढ़ की हड्डी S4, S5, और सह के उदर रमी से निकलती है। यह सैक्रल प्लेक्सस के निचले हिस्से से जुड़ा होता है। प्लेक्सस की एकमात्र तंत्रिका कटिस्नायुशूल तंत्रिका है, जो कटिस्नायुशूल क्षेत्र में त्वचा के संवेदी संक्रमण के लिए कार्य करती है।

विधि साहित्य

समान नागरिक संहिता की आवश्यकता

डॉ. संजीव कुमार

भारतीय प्रवासी, देश के सबसे विविध समाजों में से एक है। अपनी स्थापना के बाद से भारतीय अधिकारियों ने समाज की इस विविध संरचना को बनाए रखा है और इसे राष्ट्र की ताकत के रूप में चित्रित किया है। स्वतंत्रता के समय, भारत में कई अलग-अलग धार्मिक संस्थाएँ थीं, और इन विभिन्न संस्थाओं के नागरिकों के साथ बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार किया जाना था। भारत में धर्मनिरपेक्षता को दो तरीकों से अपनाया जा सकता था, पहला तरीका पश्चिमी सभ्यताओं से अपनाया जा सकता था, जहाँ राज्य और धर्म को एक से दूसरे में हस्तक्षेप किए बिना पूरी तरह से अलग छोड़ दिया गया है। इसी अर्थ में धार्मिक प्रतीकों और प्रथाओं को सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं लाया जा सका। भारत में अपनाई गई पद्धति धर्मनिरपेक्षता का एक अलग रूप है जहाँ राज्य धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों में बदलाव कर सकता है और वास्तव में करता भी है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 44 सरकारी प्राधिकरण को देश के नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता (यूसीसी) बनाने के लिए बाध्य करता है। संविधान सभा ने यूसीसी बनाने के सवाल पर संघर्ष किया और इसे भविष्य के नेताओं पर फिर से विचार करने और पूरा करने के लिए छोड़ने का फैसला किया, यही कारण है कि इसे राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के भीतर रखा गया था। संविधान के निर्माता भारतीय प्रवासियों को उनके व्यक्तिगत कानूनों या यूसीसी, जो भी उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप होगा, का पालन करने का विकल्प देना चाहते थे। देश मुख्य रूप से हिंदू है, जिसमें अल्पसंख्यक समूह हैं; जिनमें मुस्लिम, सिख, यहूदी, ईसाई आदि कई अलग-अलग धर्म शामिल हैं। भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित करने का मतलब है कि इनमें से प्रत्येक धर्म का समान मूल्य है और बहुसंख्यक राज्य मशीनरी का उपयोग करके अल्पसंख्यक पर हावी नहीं हो सकते हैं। वास्तव में राज्य सक्रिय रूप से अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों की रक्षा करेगा। अल्पसंख्यकों की पहचान की रक्षा करने का एक तरीका यूसीसी की शुरुआत के माध्यम से था। अल्पसंख्यक हमेशा बहुसंख्यक में शामिल होने या बहुसंख्यकवादी आदर्शों का पालन करने के लिए मजबूर होने के बारे में चिंतित रहेंगे।

भारत द्वारा उपयोग की जाने वाली धर्मनिरपेक्षता की पद्धति को अपनाने का एक अन्य कारण यह है कि वे भारत के भीतर साझा समुदाय की भावना पैदा करना चाहते थे जहाँ हर धर्म का स्वागत हो, लेकिन साथ ही अल्पसंख्यक समूहों, विशेषकर महिलाओं के साथ होने वाले कुछ अन्यायों को भी दूर किया जा सके। सभी धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के साथ गलत व्यवहार किया गया है और सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के उत्थान का समर्थन करने के लिए, राज्य ने विभिन्न समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों के अलावा एक समान संहिता लागू करने की माँग की है।

हिंदू व्यक्तिगत कानूनों में, महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार नहीं थे, और यहाँ तक कि हिंदू कोड बिल और हिंदू धार्मिक प्रथाओं के तहत महिलाओं को

समान अधिकार देने के लिए कई अन्य कानूनों के बावजूद, कानून अभी भी कम था। 2005 तक महिलाओं को हिंदू अविभाजित परिवार में संपत्ति विरासत में नहीं मिल सकती थी, वे किसी भी संपत्ति की बिक्री या बंधक शुरू नहीं कर सकती थीं या पारिवारिक संपत्ति में सहदायिक नहीं हो सकती थीं। महिलाएँ अपनी मर्जी से किसी बच्चे को गोद नहीं ले सकती थीं और जब तक पति जीवित होता था, तब तक उन्हें अपने बच्चे का प्राकृतिक संरक्षक नहीं माना जाएगा, जबकि मुस्लिम व्यक्तिगत कानूनों के तहत, महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम अधिकार प्राप्त थे, क्योंकि पुरुष एक समय में चार शादियाँ कर सकते थे और वे अतिरिक्त-न्यायिक तरीकों (तीन तलाक) के माध्यम से तलाक की पहल कर सकते थे। स्वतंत्रता के पहले दशक के भीतर, हिंदू कानूनों में जैन, सिख, पारसी, बौद्ध धर्म आदि की प्रथाओं को शामिल माना जाता था, भले ही इन धर्मों के बीच सूक्ष्म, लेकिन ध्यान देने योग्य अंतर थे। जब विधायिका ने व्यक्तिगत कानूनों में संशोधन करने का फैसला किया, तो उन्होंने "हिंदू व्यक्तिगत कानूनों" के शीर्षक के तहत इन सभी धर्मों को प्रभावित किया, लेकिन मुस्लिम व्यक्तिगत कानूनों में संशोधन नहीं किया, क्योंकि कानून निर्माताओं ने सोचा कि मुस्लिम समुदाय अभी भी विभाजन की भयावहता से जूझ रहा था और उन्होंने ऐसा किया। वे अपने जीवन में और अधिक तनाव नहीं लाना चाहते। कई कानूनी विद्वानों और महिला अधिकार कार्यकर्ताओं ने सोचा कि यह एक गलती थी और धर्मों के बीच समानता महत्वपूर्ण थी, क्योंकि विभिन्न संशोधनों के बाद, हिंदू महिलाओं को अपने व्यक्तिगत कानूनों के तहत अधिक अधिकार मिल रहे थे, लेकिन मुस्लिम महिलाओं को नहीं। मोहम्मद के मामले में सुप्रीम कोर्ट अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम (एआईआर 1985 एस.सी. 985) ने सीआरपीसी धारा 125 के तहत भरण-पोषण के लिए एक याचिका की जाँच की, चूँकि शाह बानो को तीन तलाक के माध यम से तलाक दिया गया था, जो धार्मिक कानूनों के तहत शासित एक अतिरिक्त-न्यायिक प्रक्रिया थी, उनके पूर्व पति ने तर्क दिया कि शाह बानो मुस्लिम पर्सनल लॉ के अलावा देश के किसी भी संहिताबद्ध कानून के तहत भरण-पोषण की हकदार नहीं थी। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि सीआरपीसी की धारा 125 व्यक्तिगत कानूनों की परवाह किए बिना सभी महिलाओं के लिए सुलभ है और विधायिका को व्यक्तिगत कानूनों में समानता लाने के लिए यूसीसी के निर्माण पर विचार करने की जरूरत है। इस निर्णय से व्यक्तिगत धार्मिक कानूनों के विषय पर विधायिका और न्यायपालिका के बीच लड़ाई छिड़ गई। न्यायपालिका ने समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को बनाए रखा, जबकि विधायिका ने व्यक्तिगत कानूनों की पवित्रता की रक्षा पर जोर दिया। डैनियल लैथिफी बनाम भारत संघ (2001, 7 एससीसी 740) में सुप्रीम कोर्ट ने मुस्लिम महिला (तलाक अधिकार संरक्षण) अधिनियम 1986 के विरोध में शाह बानो के फैसले को बरकरार रखा। आगे के फैसलों के दौरान, सुप्रीम कोर्ट ने व्यक्तिगत कानूनों की समस्या का समाधान करना जारी रखा। न्यायिक घोषणाओं के माध्यम से, लेकिन अंततः कानून को बदलने का अंतिम अधिकार विधानमंडल का है, जिसे व्यक्तिगत कानूनों के बीच समानता सुनिश्चित करने के लिए एक समान संहिता लागू करने की बार-बार सलाह दी गई है। अदालत को उन मामलों से भी निपटना पड़ा जहाँ एक विवाह हिंदू विवाह अधिनियम के तहत संपन्न हुआ था, और फिर पति ने बाद में दूसरी शादी करने के लिए इस्लाम धर्म अपना लिया। इस रूपाँतरण को हिंदू कानून के तहत बहुविवाह निषेध को

खत्म करने की एक विधि के रूप में देखा गया था, न कि वास्तव में इस्लाम अपनाने के लिए। इनमें से कई मुद्दों और चुनौतियों से निपटने के लिए, अदालत ने गोवा और पुर्तगाली समान नागरिक संहिता की निरंतर प्रथा पर ध्यान दिया है। पुर्तगालियों से आजादी के बाद से गोवा यूसीसी के प्रभाव में रहा है और कम-से-कम भ्रामक और शोषणकारी धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों की तुलना में यह कई लोगों की नजर में सफल रहा है। गोवा के अनुभवों का उपयोग देश भर में यूसीसी के कार्यान्वयन के लिए एक मजबूत योजना बनाने में किया जा सकता है, चाहे वह प्रणाली में कमियाँ हों, या इसकी सफलता की कहानियाँ हों। हमारे संविधान ने अन्य संविधानों से सिद्धांत लिए और उन्हें भारतीय परिदृश्य के अनुरूप ढालने का प्रयास किया, जब समान नागरिक संहिता की बात आती है तो हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते। गोवा में प्रचलित यूसीसी भी सही नहीं है, यह महिलाओं को समान अधिकारों की गारंटी नहीं देता है, और यदि पत्नी 25 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले बच्चे को जन्म नहीं देती है तो पुरुष हिंदू को कई बार शादी करने की अनुमति देती है। इन अंतरालों को दूर किया जा सकता है यदि मुद्दा सुसंगत व्यक्तिगत कानून, कानून निर्माताओं के लिए प्राथमिकता से हो। वर्तमान में आबादी के बीच एक गलत धारणा मौजूद है कि यदि यूसीसी लागू किया जाता है, तो यह प्रकृति में बहुसंख्यकवादी होगा और हिंदू प्रवासी की जरूरतों को पूरा करेगा, हालाँकि ऐसा नहीं है और वास्तव में यह यूसीसी के लक्ष्य के बिल्कुल विपरीत है। यूसीसी के कार्यान्वयन से किसी को भी अपने धर्म या धार्मिक पहचान का पालन करने या उसका दावा करने से प्रतिबंधित नहीं किया जाएगा, यह केवल यह नियंत्रित करेगा कि कोई व्यक्ति राज्य मशीनरी के साथ कैसे बातचीत करता है। समान नागरिक संहिता में शामिल नियमों के कुछ उदाहरण विवाह अधिकार, तलाक अधिकार, बच्चों को गोद लेने और उत्तराधिकार अधिकार हैं। ये कानून वर्तमान में धार्मिक समूहों के बीच व्यापक रूप से असंगत हैं, जिससे न केवल लोगों, बल्कि कानूनी अधिकारियों के बीच भी भ्रम पैदा हो रहा है। ये मतभेद राजनेताओं को केवल अधिक वोट हासिल करने के लिए एक निश्चित धार्मिक समूह से अपील करके वोट बैंक की राजनीति में शामिल होने के लिए प्रेरित करते हैं। यूसीसी के कार्यान्वयन से न केवल कानून से ये विसंगतियाँ दूर होंगी, बल्कि राजनेताओं को वोट बैंक की राजनीति से दूर जाने और अपने कार्यालय के लिए अपने सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों पर चलने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। यूसीसी के कार्यान्वयन से किसी व्यक्ति की धार्मिक पहचान कम नहीं होगी। भारत विविधता पर आधारित देश है और इस विविधता के लिए खतरा राष्ट्र के मूल ढाँचे के लिए खतरा होगा, हालाँकि विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों को एक समेकित पाठ में लाने से, जिसे सभी द्वारा समझा और पालन किया जा सके, जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होगी, ऐसे व्यक्ति जो अपने या अन्य समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों को समझने के लिए संघर्ष करते हैं। आज की स्थिति के अनुसार, अलग-अलग धर्मों के दो व्यक्ति किसी भी धर्म के व्यक्तिगत कानूनों के तहत विवाह करना चुन सकते हैं या अपनी व्यक्तिगत आस्था को छोड़कर विशेष विवाह अधिनियम के तहत विवाह कर सकते हैं। यह तीन शाखाओं वाले परिदृश्य बनाता है जिनका पालन दम्पति कर सकते हैं और विवाह के बाद उन्हें दिए जाने वाले अधिकार, यदि कोई बच्चा पैदा होता है, और भले ही उन्हें अपने परिवार से कुछ भी विरासत में मिलता हो। एक यूसीसी इसका समाधान करेगी और सभी के अधिकारों और कर्तव्यों को बिल्कुल स्पष्ट कर देगी।

कविता/ग़ज़ल

प्रेम जनमेजय की कविताएँ

रक्त की नदी के रास्ते

कभी काटा था गोरे सर्प ने हमें
फैल गया था जहर
एक बूढ़े अहिंसक ने
चूसा था विष
बीत गई हैं शताब्दियाँ।
हम हो गए स्वस्थ
क्या हम हो गए पूर्ण स्वस्थ!
आज भी कटी शताब्दी के लोग
हैं जिंदा
आज भी विष है शेष
मेरे देश की धमनियों में
आज भी कुछ विशेष
विषाक्त
अशक्त
है मेरे देश का रक्त।
काश, मेरे देश!
हम रक्त की एक नदी पार कर आए होते
शहीदों की चिताओं की भस्म
बढ़ाती हमारे मस्तक की शोभा
समस्त विष हो जाते उस रक्तधारा में
निष्प्राण।
तब यह देश
होता एक प्रज्ज्वलित प्राण।
यही सार्थकता है युद्ध की।

.... और मैं

स्ट्रीट लाइट के फ्यूज बल्ब के
खूँसट अँधेरे में
फुटपाथ की आवारा धूल फाँकता
काला चश्मा बढ़ाए
और कई नींद की गोलियाँ निगले
बेखबर आदमी-सा
लेटा हुआ मैं
उल्लू का पठ्ठा बन जाता हूँ।

अनेक संबंधों के टोकरे
सर झुकाए उठा लेता हूँ
मैं
होठों को मछली के धागे से
सी रक्खा है मैंने
अधमरी गर्दन को
गरीबी के बोझ के कारण
जमीन पर टिका रक्खा
फिर भी उसकी ठोकर
मेरी भूखी अंतड़ियों की साड़ी खींच
निरवस्त्र करने का कर रही है प्रयत्न।

इसलिए कि शायद
मेरे पास
बी-ए, एम-ए की
(--इसकी बहन की शादियाँ हों कई)
डिग्री है
और मेरे माता-पिता सरकारी क्वार्टरों में
कर्ज के भार से दबे
फटी आँखों से
मेरी पाँच बहनों को रहे हैं घूर।

केशव दिव्य की कविताएँ

पक्षी शगुन का

मिटा मांडने
जो मन सहन में
बनाया था,
उजड़ा वंदनवार
जो दिल द्वार
सजाया था।

उड़ गया
आज पक्षी
शगुन का जो चहका था,
बदल गया
सहरा में
गुलिस्तां जो महका था।

बन गया श्मशान
बसेरा जो
बसाया था।

नहीं हो
सके आखिर
होकर भी तुम अपने,
पलकों पे
सजाए थे
बिखर गए वे सपने।

बुझा दीप
जो तुम पर मैंने
जलाया था।

दर्दों का मौसम

समझा
था अपना
मगर था वह भरम।

किया है
कैसे
फिर विश्वासघात,
दरवेश
बनकर
मचाया उत्पात।

अब भर
न सकेंगे
ये जिगर के जखम।

पीटता
ढोल जो
होने का यार,
वही अब
निकला
किस कदर गद्दार।

जाने
कब बदले
दर्दों का मौसम।

डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ

फूल झरते हैं

फूल झरते हैं
डालों पर नहीं चिपके
वह रास्ता देते हैं
नये फूलों के खिलने का
बगिया को महकाने का

फूल झरते हैं
एक पँखुड़ी
बिखर जाती है
धरती पर
महकाने के लिए हवा
महकाने के लिए माटी
धरती की।
फूल झरते हैं
जैसे आँखों से
झरते हैं आँसू।

फूल झरते हैं
गिरते हैं झील के पानी में
तैरने के लिए
बनाकर रंगोली।

फूल झरते हैं
जैसे भावों को पकड़कर
झरते हैं शब्द कविता में
और हो जाते हैं मुखर॥

सोने दो मुझे

अभी सुबह नहीं हुई
सोने दो मुझे
सूरज को तय करने दो
अपना रास्ता
मुझे इन बाँहों में ही
होता है मुक्तिबोध
कुनकुनाते हुए
अलसाते हुए
आँखें नहीं खोलना चाहती अभी
आने दो खिड़की से
अभी धूप अलसाई सी
नहीं बँधना मुझे
फिर से दिनचर्या की दासता में
ख्वाबों की मिठास घुली रहने दो
मन में चाशनी की तरह
याद करने दो
मुझे उनकी रूमानियत।
महसूस करने दो मुझे
रात की चर्या
और वह उष्मा भी
जो देती है
मेरे तन को
नया जीवन॥

पुस्तक समीक्षा-1

भ्रष्टाचार के सैनिकों से लड़ता एक व्यंग्य यात्री

समीक्षक : डॉ. मंजुला उपाध्याय

व्यंग्य की दुनिया में डॉ. प्रेम जनमेजय सुपरिचित नाम हैं। अभी हाल ही में उनका नया व्यंग्य-संग्रह 'भ्रष्टाचार के सैनिक' प्रकाशित हुआ है। प्रेम जनमेजय 'व्यंग्य यात्रा'

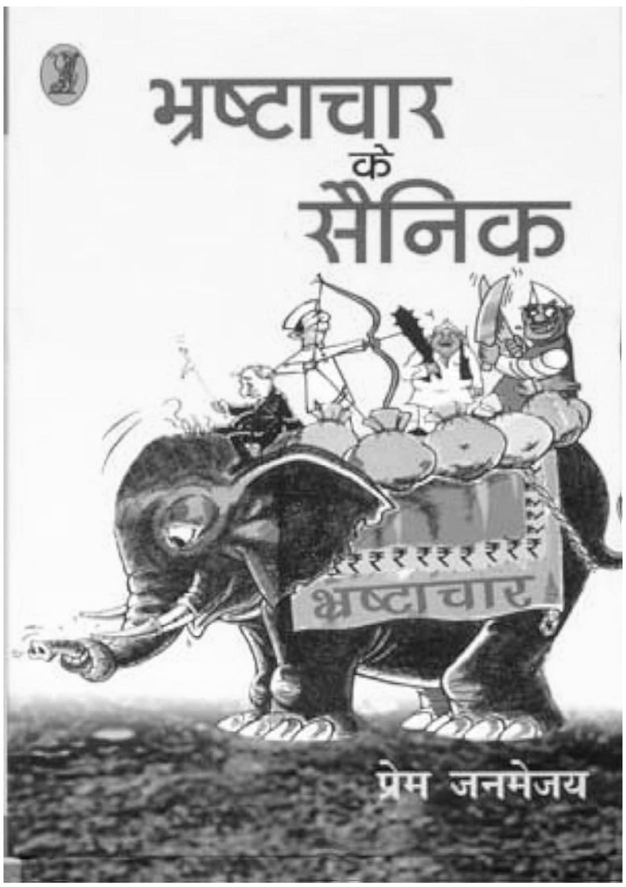

नामक पत्रिका का भी वर्षों से सम्पादन कर रहे हैं। वे व्यंग्य के माध्यम से निरन्तर लड़ाई लड़ रहे हैं। इस वक्त हिंदी में गिने-चुने व्यंग्यकार ही हैं, जो सही मायने में व्यंग्य लिख रहे हैं, वरना इधर अखबारी व्यंग्य लेखकों की भरमार हो गई है जो अखबारों में प्रकाशित हो कर स्वयं को व्यंग्यकार समझने का भ्रम पाले हुए हैं। अखबारों में प्रेम जनमेजय भी छपते हैं, लेकिन उनके व्यंग्य का साहित्यिक मूल्य भी होता है। ऐसे व्यंग्य किस काम के जो सुबह पैदा हों, और शाम होते-होते मृतप्राय हो जाएँ। ऐसे चलताऊ व्यंग्यकारों की भीड़ में प्रेम जी का चेहरा अलग नजर आता है। उनकी नई कृति 'भ्रष्टाचार के सैनिक' की रचनाएँ यह साबित करती हैं कि प्रेम जी निरंतर व्यंग्य को साहित्य का दर्जा दिलाने की अपनी रचनात्मक लड़ाई में सफल हो रहे हैं। इनके बारे में गौतम सान्याल जैसे सुलझे आलोचक अगर यह कहते हैं कि, 'प्रेम अन्यतम हैं' तो गलत नहीं कहते।

व्यंग्यकार सुशील सिद्धार्थ भी कहते हैं कि, ''प्रेम जनमेजय मूलतः साहित्यिक मूल्यों और सामाजिक सरोकारों से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।''

समीक्ष्य पुस्तक में प्रेम जी के इकतालीस व्यंग्य संगृहीत हैं। ये सभी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन इनका शाश्वत महत्व है। संग्रह में केवल एक ही व्यंग्य ऐसा है जो न भी होता तो संग्रह का कुछ भी नहीं बिगड़ता। यह व्यंग्य है 'मैं मैनपाट चला गया'। बाकी सारे व्यंग्य बेहद प्रभावी हैं। चिकोटी काटते हैं और इस निर्मम समय के गाल पर

तमाचा जड़ कर अपना व्यंग्य-धर्म निभाते हैं, हालाँकि इस कठिन समय में व्यंग्य लिखना किसी चुनौती से कम नहीं, क्योंकि कोई असर तो हो, फिर भी लड़ना तो है। प्रेम जी अपनी भूमिका में लिखते हैं कि, ''व्यंग्य बदलते सामाजिक परिवेश में उत्पन्न विसंगतियों के विरुद्ध लड़ने का एक सार्थक हथियार है।''

''अवसाद, मूल्यहीनता, एकाकीपन आदि की उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए व्यंग्य एक उपयुक्त माध्यम है।'' लेकिन वे सवाल उठाते हैं कि, ''पर क्या हम व्यंग्यकार व्यंग्य की इस भूमिका को समझ रहे हैं? क्या हम आज के समाज को समझ रहे हैं? कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है, पर क्या व्यंग्य के दर्पण में यह समाज दिखाई दे रहा है या राजनेताओं के मात्र कैरिकेचर?'' अपने इस वक्तव्य के माध्यम से प्रेम जी कहना चाहते हैं कि व्यंग्य के नाम पर राजनीतिक विषयों पर अत्यधिक लेखन हो रहा है और समाज के दूसरे मुद्दे पीछे छूटते जा रहे हैं, लेकिन जो सजग व्यंग्यकार हैं वे राजनीति के साथ-साथ अन्य मुद्दे भी देखते हैं और उन पर प्रहार करते हैं।

'भ्रष्टाचार के सैनिक' की सभी रचनाएँ नवीनता लिए हुए हैं। अनेक व्यंग्यों की भाषा में लालित्य है। कहीं-कहीं वे ललित-निबंध-सा आस्वादन भी देते हैं। जैसे 'टेसू के फूल बुढ़ा गए हैं' को ही देखें। जीवन से गायब होती जा रही उत्सवप्रियता पर चिंता व्यक्त करता व्यंग्यकार कहता है कि—''आजकल कैलेंडर मुझे सूचना देता है कि होली आ रही है।''

''एक समय के, हफ्तों पहले होली की तैयारियाँ करने और योजनाएँ बनाने वाले लोग मेरे जीवन से गायब हो गये हैं। 'लला फिर खेलन आइयो होली' कहने वाली ललनाएँ गायब हो गई हैं। ...बाजारवाद और खुली अर्थव्यवस्था के युग में घोड़े भी रेस कोर्स के मैदान में ही पाए जाते हैं।'' पूरा व्यंग्य बदलते परिदृश्य की व्यंग्यात्मक खबर लेता है।

कुछ और पंक्तियाँ देखें कि, ''मैं बूढ़ा हो रहा हूँ पर मेरा देश जवान हो रहा है। बूढ़ा आदमी गुलाल का एक टीका लगा कर होली की औपचारिकता निभा लेता है और जवान जब तक किसी पर कीचड़ न उछाले, उसे होली का मजा नहीं आता है। इन दिनों खूब कीचड़ उछाला जा रहा है। कीचड़ की डिमांड बढ़ गई है। बेचारे टेसू के फूल मुझ जैसे बूढ़े-से किसी कोने में पड़े कबीर की तरह उदास हैं।''

वैसे तो संग्रह के सभी व्यंग्य विमर्श के योग्य हैं, लेकिन समीक्षक की भी अपनी समय-सीमा होती है, इसलिए सभी पर दृष्टिपात संभव नहीं, लेकिन पाठकों से आग्रह है कि व्यंग्य के तेवर कैसे होते हैं, उनको महसूसने के लिए आप 'भ्रष्टाचार के सैनिक' जरूर पढ़ें। 'भ्रष्टाचार के सैनिक' शीर्षक रचना भी संग्रह की जान है। इसमें प्रेमजी दो टूक कहते हैं कि, ''इस देश में भ्रष्टाचार को खत्म करने की केवल लीला की जाती है।''

संग्रह की 'कबीरा भया उदास', 'अथश्वान शास्त्र कथनम्', 'रेल में ओम शांति', 'हिंदी के मारग', 'अहिंसक हिंदी', 'व्यंग्यकार शहीद हो', 'प्रभु जी तुम दीपक हम अँधियारा', 'लक्ष्मी कहाँ कैद है', 'सफाई अभियान चहुँ ओर बखाना', 'आह चिकनगुनिया', 'रुदालियाँ', 'लीला चालू आहे', 'तंबू उखड़ रहे हैं', 'शाकाहारी-मांसाहारी' आदि रचनाएँ विविधरंगी हैं। व्यंग्य साहित्य की दुनिया में स्तरीय व्यंग्यों की कमी को दूर करने में यह संग्रह सहायक होगा, ऐसा मैं सोचती हूँ।

पुस्तक समीक्षा-2

डॉ. संजीव कुमार की अद्‌भुत कृति "इन्दुलेखा"

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी

सुखद ही है, मुझे डॉ. संजीव कुमार के काव्य लेखन को पढ़ने, समझने और चिन्तन करने का सुअवसर मिल रहा है। प्रायः सभी रचनाकार, लेखक, कवि जीवन के नाना अनुभवों को अपनी साहित्यिक विधाओं का आधार बनाते हैं। आसपास समाज में व्याप्त संगतियों-विसंगतियों, विकृतियों, जटिलताओं व सुखद संयोगों की चर्चा करते हैं, सावधान करते हैं और आगाह भी करते हैं। कवि पहले अनुभव करता है, स्वयं डूबता है और लोगों को डुबाता है। उसका लिखा उस कालखण्ड का कोई ऐतिहासिक दस्तावेज ही होता है चाहे विधा कोई भी हो। कविता आनंद देती है, साथ ही हमारे भीतर संवेदनाओं, करुणा व प्रेम को जगाती है। इस तरह हर कवि या रचनाकार को सहजता से स्वीकार करना चाहिए और उसके लेखन को साहित्य में जगह देनी चाहिए। यह कोई जबरदस्ती का भाव-चिन्तन नहीं है बल्कि उसका अधिकार है और उसे उसके हक से दूर नहीं किया जा सकता। साहित्य कोई साधारण भाव-विचार नहीं है, यह हमारे सम्पूर्ण जीवन को सँभालता, सँवारता है और जटिल परिस्थितियों से बाहर निकाल लाता है। हम इसके सहारे जीवन की संगतियों को पहचानते हैं, सुखी, आनंदित होते हैं और विसंगतियों से बचते भी हैं।

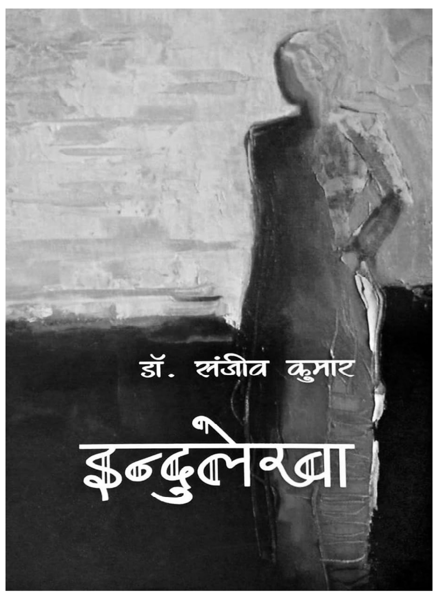

डॉ. संजीव कुमार की प्रतिभा काव्य लेखन के क्षेत्र में अद्‌भुत प्रभाव छोड़ती दिखती है। उन्होंने विपुल मात्रा में लेखन करके साहित्य जगत को चमत्कृत किया है। उनके काव्य-संग्रह और प्रबंध काव्यों की धूम है। उन्होंने 15-16 वर्ष की आयु से ही लिखना शुरू किया और आज उनके खाते में सैकड़ों पुस्तकें हैं, नाना पुरस्कार और सम्मान हैं। उनके लेखन में प्रेम है, पौराणिक आख्यानों के जीवन्त प्रसंग हैं और स्वयं की अपनी जबरदस्त उड़ान है। उन्हीं की पंक्तियाँ देखिए—

उस असीम की आकांक्षा
यात्रा के कितने ही पड़ाव।
चलता ही रहा अगम पथ में
देखे भी नहीं दुरूह घाव॥

"इन्दुलेखा" उनके द्वारा पूर्व में लिखे तीन काव्य-संग्रहों का एकल काव्य समूह है जिसे साहित्य की भाषा में 'त्रयी' की संज्ञा दी जा सकती है। डॉ. मनोरमा जी ने अपने आमुख में इस पर व्यापक चिन्तन करते हुए, पाठकों के लिए बहुत कुछ स्पष्ट किया है। वे लिखती हैं "उनकी रचनाओं में गुंजन, अंजिता और आकांक्षा में उनके जीवन यात्रा के कुछ सोपान स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं जो मिलकर एक जीवन इतिहास की रचना करते हैं।" तनिक और स्पष्टता के साथ लिखती हैं। "गुंजन, अंजिता एवं आकांक्षा में जीवन के तीन सोपानों तरुणाई, युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था काल की मनोस्थिति, तत्कालीन घटनाएँ, भावनाएँ एवं मानसिक द्वंद जैसी स्थितियों की झलक दिखाई देती है। इन रचनाओं में छायावादी शैली का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है, जिससे गेयता, गीतात्मकता, प्रकृति चित्रण, प्रेम, मनोवैज्ञानिकता

तथा रहस्यात्मकता जैसी विशेषताओं की स्पष्ट छाया मिलती है।"

डॉ. मनोरमा महत्वपूर्ण तथ्य बताती हैं—'गुंजन' में प्रेम और यौवन की व्याकुलता के साथ कठिन परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने आगे लिखा है "एक दशक की कहानी को समेटे कवि की पीड़ा जब समय के साथ समाप्त होती है और जीवन में घटित होने वाली नई घटनाओं की आवृत्ति प्रारम्भ होती है 'अंजिता' की कहानी जीवन के नए मोड़ पर पुनः नए सोपान पर आरंभ करती है। यह कालखण्ड भी लगभग दशक तक फैला हुआ है। कवि के जीवन में उनकी प्राण सखी का आगमन हो चुका है। वहाँ संघर्ष है, दुख है तो सुख और मोहकता भी है। वह धैर्य व उम्मीद बनाए रखता है और आशा, विश्वास नहीं खोता। रात-दिन की तरह सुख और दुख जीवन के दो पहलू हैं, आएंगे और जाएंगे। इसके बाद 'आकांक्षा' की गहन अनुभूति का दौर स्वतः ही धीरे-धीरे प्रकट होने लगता है। डॉ. मनोरमा ने लिखा है जीवन यात्रा के चौथे सोपान प्रौढ़ावस्था की अभिव्यक्ति में कवि की मनोदशा की स्पष्ट छाप 'आकांक्षा' में दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है अतः कवि की तीनों कृतियों गुंजन, अंजिता एवं आकांक्षा में परिस्थितिजन्य अभिव्यक्तियाँ एवं जीवन के क्रमिक विकास के तीनों सोपान स्पष्ट होते हैं। डॉ. मनोरमा जी का इन तीनों काव्य संग्रहों के संयुक्त संग्रह 'इन्दुलेखा' के प्रति जयशंकर प्रसाद जी की कालजयी रचना कामायनी से तुलना का आग्रह किंचित जल्दबाजी लगता है। डॉ. संजीव कुमार जी की अपनी स्वतंत्र समझ व पृष्ठभूमि है, उनका अपना काव्य कौशल है और उनका सृजन किसी भी तरह कमतर नहीं, बल्कि बहुत ही महत्वपूर्ण है। बिना किसी तुलना के उनका सृजन ध्यान खींचने वाला है। डॉ. मनोरमा जी ने स्वयं लिखा है अतः प्रसाद के आँसू एवं कामायनी की छाया इन्दुलेखा में दृष्टिगोचर होती है। किन्तु अर्धांश की कथा होने के नाते कामायनी जैसे महाकाव्य के वृहद तत्व से तुलना नहीं की जा सकती। इन्दुलेखा की कथा व्यावहारिक धरातल से अधिक मेल खाती है। फिर भी उन्होंने गहन विवेचना की है, बहुत से अनछुए पहलुओं को उजागर किया है और विशेष भाव दृष्टि की ओर संकेत किया है। शायद इतने गहन चिन्तन के बाद किसी दूसरे के कहने-सुनने के लिए बहुत कुछ रह नहीं गया है।

डॉ. मनोरमा ने बार-बार कामायनी, आँसू व कालजयी रचनाकार जयशंकर प्रसाद को याद किया है और कोई साम्यता का अनुभव करती हैं। गुंजन का रचनाकाल कवि के जीवन की तरुणाई का समय रहा है। वे लिखती हैं—गुंजन में प्रेम और यौवन की व्याकुलता के साथ कठिन परिस्थितियों का विशुद्ध चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसका विस्तार चार पंक्तियों वाली कुल 189 कविताओं में हुआ है। गुंजन में साँसों की वीणा, हृदय का मृदुल-सा स्पंदन, करुणा का सम्मोहन और स्मृतियों का अविरल प्रवाह है। यहाँ प्रकृति नाना रुपों में प्रकट हो रही है और मन में मिलन की ज्वाला जाग रही है। कवि बिंबों का सहारा लेता है और भीतर का अन्तर्विरोध प्रकट करता है। स्मृतियाँ हैं, शैशव में सन्ध्या का दृश्य उभरता है और गीतों की माला में आँसू के मोती सज रहे हैं, पंक्ति देखिए "युग-युग तक लहरायेगा, मेरे मन का दुख सागर।" कोई दुःसह पीड़ा है हिम गरल बन गया मुझको/मेरा वह मधुरिम जीवन/मन दीपशिखा-सा जलता/धुल गया मोम सा यह तन। इन पंक्तियों में मन की वेदनाएं, दुख व पीड़ा के भाव मूर्त हुए हैं सूखे अधरों पर छाई/भीषण अकाल की छाया/चटखे उर के सब छाले/सब शाप ताप की माया। कवि स्मृतियों में खोता है और लिखता है मेरा मन मौन अधर में/आकुल सा राग सुनाता। धवल रागिनी में भी वह अंधकार का संगीत बजाता है। उनका सबसे बड़ा दुख देखिए शैशव में ही सन्ध्या की/आ गई श्यामली छाया। इन पंक्तियों में सारे बिंब मनोभावों को स्पष्ट करते हैं और सम्यक दृश्य रचते हैं मन हुलस देखता छवि को/बजती मृदंग करतल में/रो देता फिर कोमल मन/घिरता तम से, जब पल में। इन शब्दों में अद्‌भुत सामर्थ्य है भाव रचना का और कवि की चीत्कार व्यंजित होती है। एक ओर कोमल भावनाएँ चित्रित हुई हैं, वहीं दूसरी ओर जीवन के संघर्ष, तमाम विषमताएँ व विसंगतियों का बोलबाला है।

मन की बेचैनी, इधर-उधर भागना, व्यथित होना, मरुस्थल

में निरुपाय भटकना, वन-उपवन में पतझर व मुरझाये फूलों को देखना और स्मृतियों में डूबे रहना कवि की लाचारी बन गई है। वह ऋतुओं की भाषा समझता है और उसका भीतरी मन उमड़ पड़ता है शैशव का मतवाला मन/उतरी बनकर मधु यौवन/वह ज्योति-किरण सी अनुपम/वह मधुर राग की गुंजन। कवि जन्मजात प्रेमी है, प्रकृति उसके प्रेम को परवान चढ़ाती है हँसती मालती मनोहर/छेड़ती पवन चंचल को/अधरों में कुहुक दबाती/सकुचाती-सी आँचल को। कवि द्वारा रचित भाव दृश्य देखिए मैं शिशु सा देखा करता/शशि सा उसको मुस्काता/अलियों सा उन्मन यह मन/गुंजन का राग सुनाता। वह धरती, आकाश, समुद्र, वायु, तारों, तुहिन कणों जैसे बिंबों से अपनी संवेदनाएं चित्रित करता है। उनका प्रेयसी के प्रति भाव देखिए वह कोमल कलिका, मधुरिम/अधरों में सुरभि समाये/रवि की छाया सी, यौवन/का चंचल भार उठाये।

'गुंजन' को डॉ. मनोरमा ने तीन सोपानो में समझाया है। प्रथम सोपान में दुख, पीड़ा व वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। द्वितीय सोपान में वस्तु स्थिति का विश्लेषण और आंतरिक द्वन्द के प्रति सोच-विचार है। तीसरे सोपान तक आते-आते भीतरी द्वन्द व्यावहारिकता में रुपान्तरित होता गया है। यहाँ तरुण मन का उल्लास है, आकर्षण है, प्रेम है और संयोगों-वियोगों के बीच पसरी हुई श्रृंगारिकता है। कवि का सृजन इतना भर ही नहीं है बल्कि चित्रण गहन अनुभूतियों से उपजा हुआ कोई मायाजाल सा है। कवि दृश्य रचता नहीं बल्कि सब कुछ स्वतः उतर आता है। यहाँ भाषा और शैली का चमत्कार अनुभव किया जा सकता है।

उनकी सहज कविताएं मन के भावों के साथ प्रकृति की मधुरता से ओत-प्रोत होती हैं। मौन, स्वप्न, मधुर काल, मधु कलिका का रस, नयनों में स्वप्न मंदिर, गीत-संगीत, झील सी आँखें, भौंरा, पुष्प, किरणों से भरा आसमान और न जाने कितने बिंब भिन्न-भिन्न भाव-दृश्य रचते हैं। कवि संसार के सुख-दुख को गहराई से समझता है, कोई दार्शनिक भाव-चिन्तन उभरता है और वह लिखता है करुणा भरकर रे मन में/करना है सुख का स्वागत/इस घनीभूत दुख के ही/आँचल में है सुख आगत। वह पूछता है इस करुणा भरे हृदय में/आँसू क्यों गुंजन करते/रह-रह कर चुपके-चुपके/यह उच्छ्वासें क्यों भरते? कवि के पास प्रश्नों की कोई शृंखला है, उत्तर पाना सहज नहीं है। उसकी उम्मीदें खत्म नहीं होती, पंक्ति देखिए अलसाई कलियों ने फिर/हँस-हँसकर ली अंगड़ाई/वह प्रलय निशा बीती सी/नव उषा बिहँसती आई। 'गुंजन' की इन कविताओं में कवि नाना भावों से गुजरता है, दुखों की अनुभूति करता है, जीवन के यथार्थ को समझता है, गहन चिन्तन करता है, अपने मन को समझाता है, सान्त्वना देता है और उम्मीदों को संजोता है।

'इन्दुलेखा' का दूसरा खण्ड है 'अंजिता' जिसमें चार पंक्तियों वाली कुल 208 कविताएं हैं और इस काव्य ग्रंथ का रचनाकाल 1985 से 1995 तक है। यह वह काल है, कवि के जीवन में उनकी प्राणप्रिया का आगमन हो चुका है और उनके लिए उन्होंने प्राणसखी का भाव रखा है। प्रियतमा या धर्मपत्नी के साथ होने से जीवन मोहक और प्रेम से परिपूर्ण होता है, पंक्ति देखिए—श्रद्धा से मधु पग धरती/नव संसृति सी द्युतिमान हुई/सौम्य दीप की छवि जीवन में/मधु ऋतु सी छविमान हुई। कवि सौन्दर्य चित्रण में पारंगत है, चार पंक्तियों वाली अनेक कविताओं में उनके मनोभाव व काव्य विन्यास खूब उभरे हैं यौवन भार सँभाले गुरुतर/मदिरा की मधु प्याली सी/आँचल फैला विहँस उठी/आँखों से ज्यों मतवाली सी। विस्तार से उन्होंने प्राणसखी के सौन्दर्य का, उनके हाव-भाव का और आनंद का बेजोड़ चित्रण किया है। उनके जीवन की सारी पीड़ा मानो तिरोहित हो गई है और जीवन में सुख ही सुख है। ये सारे बिंब काव्य ग्रंथ को विस्तार देते हैं और इनकी तुलना करना संभव नहीं है। जीवन के उतार-चढ़ाव की सहज अनुभूति भी है और कवि जीवन सत्य को समझता है कि जीवन यात्रा में संघर्ष और दुख के अनुभव ज्यादा होते हैं। डॉ. मनोरमा जी को उनके चिन्तन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखाई देता है। सुख-दुख को आधार मान कर बौद्ध धर्म से जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, हमारी भारतीय संस्कृति-सभ्यता में ऐसा चिन्तन सर्वदा होता रहा है। कवि प्रेम की अनुभूति करता है जिसके लिए हर प्राणी इच्छा करता है, पाना चाहता है। यहाँ देखने, समझने और महसूस करने के लिए भावनाओं, खुशियों और

आनंद का विस्तार है जो प्राणसखी के साथ होने से उनके जीवन में संभव हुआ है। कवि छिपाता या गोपन नहीं रखता बल्कि सहजता से सत्य को स्वीकार करता है। वह आनंदित है और सैकड़ों कविताओं में अपने आनंद को नाना बिंबों के साथ प्रदर्शित करता है। उसे पता है, जीवन का यही सत्य है, एक स्वप्न पूर्ण होते ही मनुष्य दूसरे स्वप्नों को देखने लगता है। कामनाएँ असीम होती हैं। वह जीवन की सच्चाई की बीच-बीच में चर्चा करता चलता है और लोगों को सत्य समझाता रहता है, एक भाव दृश्य देखिए मन में कुछ करुणा की छाया/मन में था दुख भार घना/उस पल में कोई भी संबल/आकर सहसा प्यार बना। कवि ने लिखा प्रेम अंततः जीत गया/दुर्गम जग के व्यवहारों से/जीवन नया बना उन्मेषी/जगमग चाँद सितारों से। कवि जीवनानुभव चित्रित करता है समय बड़ा परिवर्तनशील/घाव सारे भर देता है/किन्तु घाव पर घाव बने/नासूर उसे कर देता है। वह संकल्पित है, चुनौतियों को स्वीकार करना चाहता है, मौन साधना करते हुए आगे बढ़ना चाहता है। कवि गीता के ज्ञान को समझाना चाहता है जो भी हो परिणाम हमें/कर्तव्य निभाना होता है/कर्मों के तेजस प्रकाश में/फल को पाना होता है। वह कोई जरुरी उपदेश देता है चलो स्वयं ही मार्ग बनाकर/लक्ष्य प्राप्त तो होगा ही/कितना कठिन समय हो पर/संतोष सिद्ध तो होगा ही। कवि संकल्पित है, जीवनानुभवों से भरा है, पीछे हटने वाला नहीं है और न हार मानने वाला है। वह संसार की रीति-नीति की बात करता है जग की तो है रीति कि/हँसने पर ही साथ सभी देंगे/रोने की हो बात अकेले/आपको ही रोने देंगे। जीवन की नाना संगतियों-विसंगतियों पर उनका चिन्तन चमत्कृत करने वाला है। उन्हें लोगों के विचार व्यवहार की गहरी पहचान है जिनका साथ दिया जाता/जिनको अपना समझा जाता/वो ही विष वमन किया करते/फिर जाने क्यों कैसा नाता। कवि संदेश देता है इसलिए सार्थक जीवन की/परिभाषा पर कर लो विचार/सपनीले पल, संघर्ष, वेदना/करुणा के भी महासार। यह भी देखिए निर्माण और विध्वंस, कहानी/है सपनीले जीवन की/और मिलन विछोह साथ होता/अनुभूति मात्र होती मन की। अंत में कवि अपनी चिर कामना व्यक्त करता है—

हम तुम जीवन की यात्रा में
हर पल हो साथ सदा, हँस के
कटते जाये जीवन के पल
हँसते-हँसते, हँसते-हँसते।

वरिष्ठ साहित्यकार गिरीश पंकज ने लिखा है, डॉ. संजीव कुमार साहित्य और प्रकाशन जगत में पिछले कुछ वर्षों में धूमकेतु की तरह उदित हुए हैं। जब से मैंने उनके काव्य ग्रंथों को पढ़ा है, उनकी प्रतिभा आकर्षित करती है। गुंजन, अंजिता और आकांक्षा त्रयी में डॉ. संजीव कुमार की जीवन यात्रा के तीनों सोपानों को अनुभव किया जा सकता है। उन्होंने अपने जीवन के उस दौर को जिस तरह जीया और जो भाव-चिन्तन किया वह इन काव्य-संग्रहों में दिखाई देता है। उन्होंने आत्म-कथ्य या कोई भूमिका नहीं लिखी है इन पुस्तकों में, इससे पाठकों, समीक्षकों/आलोचकों को उनकी भावाभिव्यक्तियों को समझने में समय लगता है। उनका लेखन प्रवाह व्यापक और सतत है जिसे चिन्हित करना या पहचानना सहज नहीं है। यह कोई उनकी भटकन भी हो सकती है या सब कुछ मिला-जुला है जिसे अलग-अलग करके देखना, समझना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। तरुणाई, युवावस्था और प्रौढ़ावस्था की कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है। इन कविताओं में सुख-दुख साथ-साथ दिखाई देते हैं। कालक्रम या रचनाकाल के आधार पर इन विभाजनों को समझा जा सकता है। इन्हें उनकी गहन भावाभिव्यक्ति की सघनता से भी परखा जा सकता है। इसे काव्य-दोष न मानते हुए उनकी लम्बी काव्य-चिन्तन शृंखला से जोड़कर देखा जाना चाहिए।

'अंजिता' के परवर्ती काल की रचना है 'आकांक्षा' उसके आमुख के रुप में कविताओं के माध्यम से कवि ने माना है आदिकाल से ही जीवन में आकांक्षाएं होती हैं, विहग चंचल मन लिए दोनों पंख फैलाए वन-उपवन डोलते फिरते हैं परन्तु हर युग्म की कथा आकांक्षा के आधार पर किंचित भिन्न होती है। मनुष्य की इच्छा-आकांक्षा का कोई अंत नहीं है, ऐसे में उसके एन्द्रजालिक स्वरुप को समझना सहज नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया है आकांक्षाओं का पुंज/स्वप्नमय

यह/जीवन/आकांक्षाओं से मिलती/जीवन को स्पन्दन। शैशव, यौवन या जीवन पर्यन्त आकांक्षाएँ उपजती रहती हैं। कुछ पल दो पल की होती हैं और कुछ जीवन भर बनी रहती हैं। इन पंक्तियों में कवि ने आकांक्षाओं के विविध स्वरुपों और प्रकट होते भावों को चित्रित किया है, पंक्तियाँ देखिए कुछ तन की या मन की/कुछ कोमल, साध्य भाव/कुछ अनुरंजित/कुछ-कुछ भंजित/कुछ करुण घाव। उनकी ये पंक्तियाँ भी देखिए पथ खोज अनवरत/उगती आकांक्षा पल-पल/चलता रहता यह क्रम/निशि दिन, प्रतिपल, अविरल। हमारा जीवन उम्मीदों, इच्छाओं, आकांक्षाओं का दास बना रहता है और न जाने क्यों मन पागल हुआ रहता है? जब मन में प्रश्न जागने लगे तो समझना चाहिए, उस व्यक्ति की चेतना जाग रही है। यहाँ कवि के मन में नाना प्रश्न हैं और वह उनका उत्तर पाना चाहता है।

उसे संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान हो रहा है, जीवन का अन्तर्विरोध दिखाई देता है, पंक्तियाँ देखिए लगते जो कठिन कभी/अस्तित्व, पिघल जाते/जो सरस, सुगम परिदृश्य/हृदय को छल जाते। कवि धरती, आकाश, प्रकृति, फूलों, रंगों आदि के बिंबों से जीवन के अन्तर्विरोधों को समझना चाहता है। छायावादी युग की रचनाओं का उन पर प्रभाव सहज ही समझा जा सकता है। यह भाव-दृश्य देखिए यह मधुर-मधुर चुम्बन/दृग पुलकित मृदु स्फार/वह आलिंगन के क्षण/आवेशित पर पसार।

कवि सहज मिलन के भाव-क्षणों का बिंब के रुप में अद्भुत चित्रण करता है और कुछ आकांक्षाओं के पूर्ण होने पर संतोष अनुभव करता है। वह अपनी जीवन शैली चित्रित करता है जो मिला, उसे बांहों में/सुखकर संग किया/जो बिछड़ गया उसका/मतवाला रंग लिया। उनके मन में नाना विचार उठते हैं जो उनके जीवन-दर्शन में सहायक होते हैं और उनका चिन्तन मन को प्रौढ़ता प्रदान करता है। शैशव की स्मृतियाँ कवि भूल नहीं पाता और उसमें से भी कोई जीवन राह पा लेता है, पंक्तियाँ देखिए कितने ही रुप कहाँ से/आये, चले गये/आकांक्षाओं के वशीभूत/मन छले गये। कवि की यह परिस्थिति देखिए कितना सोचा, कितना/प्रयास, कितना संयम/आकांक्षाओं का किन्तु/सदा रहता संगम।

कवि पूछता है क्यों आकांक्षाओं का है खेल/कठिन, चंचल/क्या यह आवश्यकता/है या कोई रोग प्रबल। उनके पास प्रश्नों की कमी नहीं है, वह नाना दृष्टियों के साथ आकांक्षा को समझना चाहता है। उसे महसूस होता है, आकांक्षाएँ मन को चंचल कर देती हैं और उनका यह चिन्तन देखिए वह मधुर कल्पनायें/भी होती महाकार/भटकाती खोल/कामनाओं के क्षितिज द्वार। कवि को शैशव काल के दिन याद आते हैं, भाव देखिए—भूलते नहीं वह क्षण/उमंग और आकांक्षा/जब बन्ध खोल उड़ने की/मन में थी इच्छा। भाव-बोध के साथ कवि का प्रश्न देखिए आकांक्षाओं के स्वाद/शोध में मौन नयन/खोलते विजन में/क्यों पागल सा चंचल मन। शैशव से तरुणाई तक और बाद के जीवन की इच्छाएँ, अनुभूतियाँ कवि के मनोचिन्तन में साकार रूप धारण करती हैं।

उनके जीवन में मिलना-बिछड़ना होता रहता है और उन्होंने हर परिस्थिति को पूरी जीवन्तता के साथ चित्रित किया है हिरनी सी चंचल चाल/मदिर से नयन युगल/अधरों पर मृदु मुस्कान/भाव अतिशय चंचल। कवि मुग्ध हो देखा करता है और उसके नैसर्गिक प्रभाव में है। मिलन के साथ उन्होंने सहजीवन का सुन्दर चित्र खींचा है वह ममता की प्रतिमूर्ति/लुटाती स्नेह प्रबल/देखते अचानक मन/हो उठता था चंचल। सारी आकांक्षाएँ मानो पूर्ण हुई हैं और वह कभी लहरों से, कभी हवाओं के साथ खेलता है और उनका बल खाता मन समय की बांहों में झूलने लगता है। मन कभी भरता नहीं और बार-बार इच्छाएँ जाग उठती हैं। उषा काल और सन्ध्या के दृश्य उभरते हैं, कवि कोई नूतन आकांक्षा करता है वह चंचल हिरनी सी चालें/उन्मत्त मस्त/हो जाता था मन आकांक्षा से/अधिक त्रस्त। कवि स्वीकार करता है लिखते-लिखते कितने/ही पल छिन बीतेंगे/पर कोष नहीं/आकांक्षाओं के रीतेंगे। अंत में उन्होंने लिखा इतिहास बन गई कुछ/कुछ आकांक्षाओं की छड़ियाँ/बन गई प्रेम की माला/की सुन्दर लड़ियाँ। इस तरह डॉ. संजीव कुमार की यह त्रयी तरुणाई, युवावस्था और प्रौढ़ावस्था को लेकर व्यापक चिन्तन करती है और चमत्कृत करने वाला प्रभाव छोड़ती है।

साहित्य समाचार-1

इंडिया नेटबुक्स द्वारा साहित्य के महाकुंभ में विश्व के 154 साहित्यकार सम्मानित हुए

सूर्यबाला, संतोष चौबे व प्रेम जनमेजय को बीपीए शिखर सम्मान

उत्तर प्रदेश के नोएडा के बीपीए फाउंडेशन एवं अग्रणी प्रकाशक इंडिया नेटबुक्स के तत्वावधान में आयोजित साहित्य की दुनिया के महाकुंभ उनके "छठवें साहित्यकार सम्मान समारोह" में विश्व के 154 साहित्यकारों

को सम्मानित किया गया, जिनमें 76 महिलायें हैं।

शिखर सम्मानों में वरिष्ठ साहित्यकार सूर्यबाला लाल को वेदव्यास, संतोष चौबे को महाकवि कालिदास एवं प्रेम जनमेजय को वागेश्वरी सम्मान से नवाजा गया।

नोएडा के समीप मयूर विहार स्थित होटल क्राउन प्लाजा में आयोजित इस कार्यक्रम का प्रारंभ डॉ. संजीव कुमार लिखित व सौम्या दुआ द्वारा प्रस्तुत सरस्वती वंदना से हुआ। न्यायमूर्ति एस. एन. श्रीवास्तव की अध्यक्षता में देश-विदेश से पधारे नामचीन साहित्यकार चित्रा मुद्गल, राहुल देव, विकास दवे, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, अमिता दुबे, प्रताप सहगल, राजेंद मोहन शर्मा, गिरीश पंकज, हरिसुमन बिष्ट, श्रुति गुप्ता चंद्रा, दिविक रमेश, मारवाह स्टूडियो के चेयरमैन संदीप मारवाह, डॉ. संजीव कुमार आदि के द्वारा 154 साहित्यकारों को साहित्य विभूषण, साहित्य भूषण, इंडिया नेटबुक्स साहित्य रत्न और बीपीए समाज रत्न सम्मान से अलंकृत किया गया।

लेखकों का सम्मान अभूतपूर्व

कार्यक्रम में भोपाल से पधारे साहित्यकार विकास दवे ने कहा कि रचना वो जो हृदय को प्रभावित कर दे। वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिया ने कहा कि लेखन कम हो रहा है, डिजिटल की दुनिया में आज भाषा चित्र भाषा हो रही है। लिखित पृष्ठभूमि में जा रहा है। चित्रा मुद्गल ने कहा कि लेखकों का सम्मान अभूतपूर्व है। साहित्यकार प्रेम जनमेजय व सूर्यबाला लाल ने इस समारोह को साहित्य का महाकुंभ कहा। कार्यक्रम की अध्यक्षता जस्टिस एस.एन. श्रीवास्तव ने की।

साहित्यकारों के उत्कृष्ट योगदान को बढ़ावा

इस मौके पर बीपीए फाउंडेशन एवं इंडिया नेटबुक्स के अध्यक्ष डॉ. संजीव कुमार ने कहा कि पुरस्कारों का उद्देश्य उन साहित्यकारों के उत्कृष्ट योगदान और उपलब्धियों को पहचानना है जिन्होंने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति के साथ अतुलनीय सेवाएँ दी हैं। संस्था 2016 से साहित्य के लिए समर्पित है। आयोजन में डॉ. मनोरमा, प्रो. राजेश कुमार, कामिनी, तनुज सिद्धार्थ, रणविजय राव, पूनम माटिया, मनीषा चौगांवकर आदि का सहयोग रहा।

गणमान्य लोग रहे मौजूद

साहित्यकारों में बनवारी लाल गौड़, सुरेश ऋतुपर्ण, दिविक रमेश, रमेश सैनी, लालित्य ललित, बसंत सिंह परिहार, सुगंधि सिंह, संतोष खन्ना, संतोष श्रीवास्तव, सिद्धेश्वर, सुरेश मिश्रा, प्रभात गोस्वामी, हरि सिंह पाल, मिताली, हिमांक कुंद्रा, कीर्ति काले, कार्तिका सिंह, अंजना संधीर, डॉ. राहुल, नीता टंडन, रीता मिश्रा, संजीव जयसवाल, उपेंद्रनाथ रैना, मृणाल वल्लरी, विनोद नागर, स्नेह ठाकुर, जय वर्मा, डी. एन. सिन्हा आदि विभिन्न साहित्यकार मौजूद रहे, जिन्हें पुरस्कृत किया गया।

साहित्य समाचार-2

आचार्य राजेश कुमार ग्रंथावली के पहले छः खण्डों का अनावरण

गत दिनों आचार्य राजेश कुमार ग्रंथावली के पहले छह खंडों का अनावरण संपन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्य राजेश कुमार के साथ-साथ सुप्रसिद्ध साहित्यकार और 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक प्रेम जनमेजय, सुप्रसिद्ध कवि और 'अनुस्वार' पत्रिका व इस ग्रंथावली के संपादक डॉ. संजीव कुमार और युवा कवि तथा व्यंग्यकार रणविजय राव मौजूद थे।

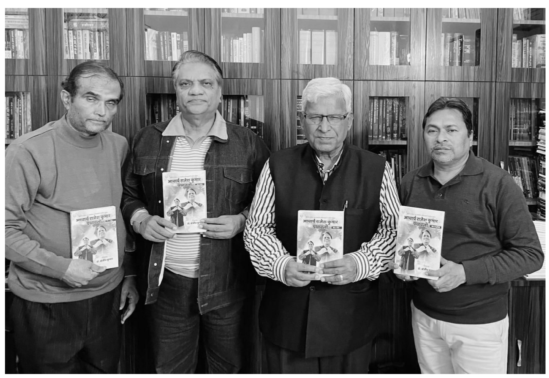

ग्रंथावली में दो खंड काव्य के, दो व्यंग्य के, और दो कहानियों के हैं।

इस अवसर पर डॉ. संजीव कुमार ने कहा कि राजेश कुमार की रचनाओं पर एक दृष्टिपात करते हैं तो जैसा कि पहले कहा है कि अलग ही वैशिष्ट्य सम्मुख आता है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उस वैशिष्ट्य पर एक नजर अवश्य डाली जाए। अब इसी बात पर चलते हैं, उनकी कविताओं पर एक नजर डालते हैं। जैसा कि पहले कहा है कि उनके दो काव्य संकलन हैं, पहला—अनचीन्ही, दूसरा—दोहावली।

सबसे पहले विषय वस्तु पर आते हैं। अनचीन्ही में राजेश जी की 105 कविताएँ संगृहीत हैं और दोहावली में दोहे। उनकी पहली कविता का शीर्षक 'ओ सदय हृदय' जो उनकी सदाशयता और संवेदनात्मकता का संकेत देती है।

वो अनेक विषयों पर अपनी अभिव्यक्ति देते हैं। जैसे "कहाँ भागे जा रहे हो", "होटल अशोका", ''गहरी नींद'', ''गर्मी सर्दी बरखा ओले'', ''दस बूँदें'', ''एक लहर उछली'', ''भोली है वो नहीं जानती'', ''मजबूरी'', ''यह पेड़'', ''तंत्र-गण-तंत्र'', ''उलटबाँसी'', ''वो नहीं मिलेगी'', ''सुलटबासी'', ''तुम्हारे लिए ये आसान होगा'' आदि से स्पष्ट करते हैं कि उनकी दृष्टि यथार्थ एवं संवेदनाओं के गहरे में कहाँ-कहाँ तक पहुँचती हैं।

इन शीर्षकों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि वे वैविध्य के धनी हैं और उनकी दृष्टि सामाजिक परिवेश के विभिन्न धरातलों पर सम्यक रूप से पड़ती है। किसी भी विषय पर उनकी अभिव्यक्ति में एक विशेषता जरूर मिलती है कि वे सूक्ष्म दृष्टि से एक अन्वेषक के रूप में किसी विषय पर लिखते हैं।

व्यंग्य खंडों में राजेश कुमार द्वारा लंबे समय में लिखे गई व्यंग्य रचनाओं का संकलन है, जो हमें व्यंग्य विधा पर उनकी पकड़ से परिचित करवाते हैं, और साथ ही व्यंग्य के क्षेत्र में उनके वैशिष्ट्य को भी रेखांकित करते हैं। इसी तरह कहानी खंड में संकलित राजेश कुमार की कहानियाँ हमें उनकी कथा बुनने की विशिष्ट शैली और अभिव्यक्ति क्षमता से रू-ब-रू करवाती हैं। उनके व्यंग्य और कहानियाँ दोनों ही समय के दस्तावेज़ हैं, जो हमारे समय और इसकी विभिन्न स्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करते है।

ये खंड न केवल सामान्य पाठकों के लिए, बल्कि शोधार्थियों और अध्यापकों के लिए भी विशिष्ट महत्व की सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

अंतत :

व्यंग्य के पारस पत्थर

गिरीश पंकज

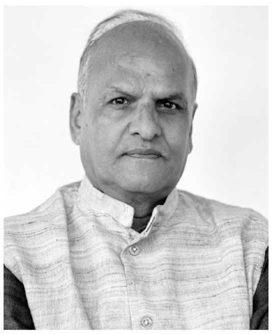

हम सबके चहेते बनकर प्रेम जनमेजयजी पचहत्तर साल के हो गए, उनकी हीरक जयंती मनाई जा रही है, एक अभिनंदन-ग्रंथ निकल रहा है; यह हम सबके लिए सुखद समाचार है। इस ग्रंथ के माध्यम से नई पीढ़ी के उदीयमान व्यंग्यकार एक पुरोधा व्यंग्यकार के व्यक्तित्व-कृतित्व से परिचित होंगे। प्रेम जी से मेरा पिछले तीन दशकों से ऐसा आत्मीय नाता रहा है, जिसके लिए कोई निश्चित उपमा देना संभव नहीं। प्रेम जी की अनेक पुस्तकों को मैंने ध्यान से पढ़ा है, कुछ पर समीक्षा भी लिखी। जब वह पचास साल के हुए, तब भी मैंने उन पर कलम चलाई थी। साठ के हुए, तब भी लिखा, अब जब वे पचहत्तर के हो गए हैं, तब भी लिख रहा हूँ। और जब वे शताब्दी पुरुष होंगे, तब भी (अगर मैं जीवित रह गया तब भी) लिखूँगा। बहुत कम ऐसे लोग होते हैं, जिनके लिए दिल से लिखने का मन होता है।

प्रेम जनमेजय जी अब व्यंग्य साहित्य के महत्वपूर्ण पर्याय हो गए हैं। ऐसे ही लोगों के लिए पुरानी कहावत है कि वह व्यक्ति नहीं संस्था हैं। प्रेमजी भी व्यक्ति नहीं, संस्था में तब्दील हो चुके हैं।

एक ऐसी संस्था, जो व्यंग्य साहित्य को निरंतर उन्नति के शिखर पर ले जा रही है। मैं उन चंद सौभाग्यशाली लोगों में हूँ, जिनको प्रेमजी का अद्‌भुत स्नेह मिला। इसकी बानगी के रूप में एक उदाहरण पर्याप्त है। वह यह कि जब प्रेम जी हिंदी शिक्षण के लिए चार वर्ष के लिए त्रिनिदाद (वेस्टइंडीज) गए हुए थे, तब भी उन्होंने मुझे याद रखा और वहाँ आयोजित किए गए अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में आमंत्रित किया। तब संकट था कि आने-जाने में एक लाख रुपये लगते, उसकी व्यवस्था कैसे हो? तब प्रेम जी ने छत्तीसगढ़ सरकार को पत्र भेजा सहयोग के लिए। उस वक्त छत्तीसगढ़ में अजीत जोगी की सरकार थी। सरकार ने प्रेम जी द्वारा भेजे गए पत्र का संज्ञान लेकर मुझे साठ हजार रुपये प्रदान किए और प्रेम जी ने विश्वविद्यालय की ओर से मुझे पाँच सौ डॉलर की राशि उपलब्ध करा दी और उसके बाद मेरे जीवन का ऐतिहासिक पल आया। मैंने जीवन में पहली बार रायपुर से सीधे वेस्टइंडीज की हवाई यात्रा की। रायपुर से पहले दिल्ली, दिल्ली से फिर लंदन हीथ्रो एयरपोर्ट और उसके बाद गेटविक एयरपोर्ट पहुँचा और गेटविक से सीधे त्रिनिदाद की हवाई उड़ान। लगभग बाईस घंटे में त्रिनिदाद पहुँचा। उस वक्त मेरे पास डॉलर नहीं थे। तब मैंने त्रिनिदाद एयरपोर्ट में मिले टैक्सी ड्राइवर खूबराम से टूटी-फूटी अंग्रेजी में यह निवेदन किया कि मुझे तुम वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय पहुँचा दो, वहाँ तुम्हें किराया दे दूँगा। खूबराम भी खूब था। उसने मुस्कुराते हुए मेरी बात मान ली और मुझे विश्वविद्यालय पहुँचा दिया। वहाँ अनेक भारतीय लेखकों को देखकर मन गद्‌गद हो गया। मैंने प्रेम जी को खोजा, वे मिल गए। उन्हें मैंने बताया कि ड्राइवर को पैसे देने हैं। प्रेम जी ने तत्काल बिना कुछ सोचे जेब से डॉलर निकाले और भुगतान कर दिया। मुझे देखकर चकित थे कि मैं अकेले इतनी लंबी यात्रा करके कैसे पहुँच पाया। मैं प्रेमजी को सूचित नहीं कर पाया था

कि मैं फलाँ तारीख को पहुँचूँगा। उस समय तक न ठीक से ईमेल करना आता था और न अंतरराष्ट्रीय कॉल लगाने में ही माहिर था। बस ऊपर वाले का नाम लेकर रायपुर से चला तो आखिरकार त्रिनिदाद पहुँच ही गया। (यह और बात है कि मेरा सामान लंदन में छूट गया), लेकिन तीसरे दिन वह सुरक्षित पहुँच गया। इस बीच पहली बार ऐसा हुआ कि मुझे गैर खादी वस्त्रों का सहारा लेना पड़ा। एक जींस खरीदी और एक टी-शर्ट। एक दिन लन्दन से पधारे तेजेंद्र शर्मा के कुर्ते से काम चलाया।

त्रिनिदाद के वे दस दिन...

त्रिनिदाद में दस दिन तक मैं विभिन्न आयोजनों में शरीक होता रहा। अंतिम चार-पाँच दिन तो प्रेम जी ने मुझे और अशोक चक्रधर को अपने घर पर ही रुकवा लिया। उनके साथ इधर-उधर के आयोजनों में भी शरीक होता रहा। मुझे अच्छे से याद है कि प्रेमजी हमें त्रिनिदाद के राष्ट्रकवि और प्रवासी भारत रत्न डॉ. हरिशंकर आदेश जी के आश्रम भी ले गए, जहाँ आदेश जी ने अन्य लोगों की तरह मुझे भी 'त्रिनिदाद हिंदी सेवाश्री' अलंकरण से सम्मानित किया। वहाँ हमने कविता पढ़ी और आदेश जी किस तरह हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, उसे देखने का भी मौका मिला। (दुखद है कि हिंदी के इतने बड़े सेवी आदेश जी का दो वर्ष पहले निधन हो गया।) प्रेमजी हमें वहाँ के भारतीय दूतावास में आयोजित कवि सम्मेलन में भी ले गए। सब से आनंदित कर देने वाला क्षण तब आया, जब रात को 9 बजे प्रेमजी हमें सागर के किनारे ले गए, जहाँ मैंने पहली बार विशालकाय कछुओं को देखा। देर रात को कछुए सागर से निकलकर आते और रेत को हटाकर काफी गहराई में अंडे देते। कछुओं द्वारा लगातार एक के बाद एक अंडे देने का यह लोमहर्षक नजारा भुलाए नहीं भूलता। आँखें बंद करता हूँ तो सीधे त्रिनिदाद के सागर तट तक पहुँच कर फिर वही नजारा देखने लगता हूँ। वह दृश्य ही ऐसा अद्भुत था। हम सब इस दृश्य को देखकर रोमाँचित थे। सभी उस पल का वीडियो बना रहे थे। प्रेमजी ने अपनी कार में बिठाकर हमें त्रिनिदाद की सैर कराई, फिर हमें दिवाली नगर ले गए, जहाँ होने वाले उत्सव में हम लोग भी शरीक हुए। दिवाली नगर त्रिनिदाद का एक ऐसा इलाका है, जहाँ प्रवासी भारतीय लोग एकजुट होकर विभिन्न त्योहार मनाते हैं। त्रिनिदाद में बीते मेरे दस दिन मेरे जीवन के अभूतपूर्व दिन थे। आज भी याद करता हूँ, तो प्रेमजी के प्रति कृतज्ञ ही होता हूँ। सोचता हूँ कि अगर प्रेम जी मुझे भूल भी जाते तो मैं उनका क्या कर सकता था। लेकिन प्रेमजी के मन में यह भाव था कि भले ही गिरीश रायपुर में है, लेकिन वह 'व्यंग्य यात्रा' का सहयात्री है। वह निरंतर लिख रहा है, इसलिए प्रेमजी ने मुझे बुलाया। नरेंद्र कोहली, कन्हैयालाल नंदन, निर्मला अग्रवाल, हरीश नवल, अशोक चक्रधर जैसे नरेंद्रकुमार वर्मा सहित कुछ अग्रज लेखकों के साथ मुझ नाचीज को भी उन्होंने याद किया, यह मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि रही।

जो जन्मजात प्रेम हों...

त्रिनिदाद की अविस्मरणीय यात्रा के बाद अब मैं प्रेमजी की भारत वापसी के समय को याद कर रहा हूँ। 2003 में मेरा उपन्यास 'माफिया' प्रकाशित हुआ था, जो साहित्य के माफिया पर एक तल्ख आख्यान था। तथाकथित साहित्यकारों ने तो उस उपन्यास को इग्नोर किया, लेकिन प्रेमजी जैसे पारखी ने उसे परखा और 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका में उस उपन्यास पर तीन लोगों से समीक्षा करवाई। पत्रिका के लोकप्रिय स्तंभ त्रिकोणीय में उसे स्थान दिया। समीक्षा को पढ़ने के बाद ही पंजाब के बड़े व्यंग्यकार के.एल.गर्ग को लगा कि इस उपन्यास का सम्मान होना चाहिए, इसलिए उन्होंने मुझे लुधियाना बुला कर 'लीलारानी स्मृति सम्मान' प्रदान किया। इस सम्मान के परिपार्श्व में कह सकता हूँ कि प्रेमजी का ही योगदान रहा। मैं उन सब भाग्यशाली लोगों में हूँ जो 'व्यंग्य यात्रा' के लगभग हर अंक में किसी-न-किसी रूप

में प्रकाशित होता रहा। एक अंतराल के बाद प्रेमजी ने फिर मुझे 'व्यंग्य यात्रा' में विस्तार के साथ प्रकाशित किया। जिसमें मेरी रचना प्रक्रिया, मुझसे लिए गए साक्षात्कार, मेरी व्यंग्य रचनाएँ, मेरी कविताएँ 'व्यंग्य यात्रा' में प्रकाशित हुईं। लगभग पच्चीस पेज मुझको दिए। लखनऊ का प्रतिष्ठित अट्टहास सम्मान हो या दिल्ली के हिंदी भवन का व्यंग्यश्री सम्मान, इन सबके पीछे आप की शुभकामनाओं का बड़ा योगदान रहा। जब कभी मौका आया, प्रेमजी ने मुझ पर स्नेह वृष्टि की। प्रेमजी के साथ देश के अनेक सेमिनारों में जाने का अवसर मिला। फिर चाहे वह दिल्ली हो, उत्तर प्रदेश हो, पंजाब हो, राजस्थान हो, मध्यप्रदेश हो या छत्तीसगढ़। हर कहीं प्रेमजी ने मुझे प्रमुखता के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की।

यह देखकर मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि प्रेमजी निर्मल हृदय के स्वामी हैं। और उनमें एक गहरी समझ इस बात की है कि किस व्यक्ति को उसकी प्रतिभा के अनुरूप कितना महत्व दिया जाना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि मुझमें व्यंग्य की प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई है, लेकिन व्यंग्य का लगनशील विद्यार्थी तो अपने आप को कह ही सकता हूँ। और ऐसे लगनशील विद्यार्थी को प्रेमजी जैसे शिक्षक ने समझा और उसे निरंतर प्रोत्साहित करने का काम किया।

प्रेमजी की अनेक कृतियों का पाठक रहा हूँ। कुछ की मैंने समीक्षाएँ भी की हैं। प्रेमजी को पढ़ते हुए मैं निरंतर समृद्ध भी हुआ हूँ। हर बार मैंने यही सोचा है कि मुझे भी इनकी तरह श्रेष्ठ लेखन करना चाहिए। ठीक है कि एक समय हरिशंकर परसाई और शरद जोशी-जैसे कालजयी व्यंग्यकार मेरे प्रेरणा स्रोत रहे, लेकिन उनके बाद की पीढ़ी में मैं प्रेम जनमेजय और हरीश नवल को आदर्श मानता रहा हूँ। और इन दोनों को राम-लक्ष्मण की जोड़ी की तरह भी देखता रहा हूँ। इन दोनों ने मुझे भरपूर स्नेह दिया और यह भी सुखद है कि दोनों रचनाकार एक ही अपार्टमेंट में रहते हैं, इसीलिए 'गोरस बेचन हरि मिले एक पंथ दो काज' होता रहा है। अगर साक्षर अपार्टमेंट में गया तो यह तय है प्रेमजी मिलेंगे फिर हरीश जी के यहाँ जाना है। और पहले हरीश जी के यहाँ गया, तो उसके बाद प्रेमजी के यहाँ तो जाना-ही-जाना है। इन दोनों दिग्गज व्यंग्यकारों ने मुझे जितना आगे बढ़ाया, उतना किसी ने नहीं बढ़ाया। दूसरे तो लगातार टाँग खींचते रहे, लेकिन प्रेमजी और हरीशजी के सहयोग से मैं कभी गिरा नहीं।

बहुत खुशी की बात है कि अब प्रेमजी पर अभिनन्दन ग्रन्थ निकल रहा है। वैसे तो साहित्य में माफिया तत्वों की कमी नहीं है। लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो माफिया के खिलाफ ताकत के साथ खड़े रहते हैं। यही कारण है कि मेरे 'माफिया' उपन्यास को प्रेमजी ने त्रिकोणीय में प्रकाशित किया। और जब कभी कहीं चर्चा होती है, तो इस उपन्यास का जिक्र भी करते हैं। यह बड़ी बात है कि एक अग्रज लेखक अपने अनुज लेखक के बारे में इधर-उधर चर्चा करे। वरना आज के समय में कौन किसको पूछता है? लेकिन प्रेम जी एक अपवाद हैं। जब भी व्यंग्य उपन्यासों की चर्चा हुई तो वे मेरे उपन्यासों का उल्लेख जरूर करते हैं। फिर चाहे वह मिठलबरा की आत्मकथा हो या माफिया। उनके नाम उल्लेख करने मात्र से मेरे जैसे लेखक को थोड़ा-बहुत सुकून मिल जाता है। प्रेमजी शतायु हों। निरंतर लिखते रहें। 'व्यंग्य यात्रा' का कुशल संपादन करते रहें। व्यंग्य नाटकों के मामले में उन्होंने शरद जोशी की तरह अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। अब हम सब की अपेक्षा यह है कि वे उपन्यास लिख कर भी इतिहास रचेंगे, हालाँकि 'व्यंग्य यात्रा' के रूप में तो उन्होंने इतिहास रच ही दिया है। समकालीन व्यंग्य परिदृश्य में भला ऐसा कौन शख्स होगा, जो 'व्यंग्य यात्रा' के नाम से परिचित न हो या 'व्यंग्य यात्रा' में छपना ना चाहता हो। और प्रेमजी ने ऐसे अनेक लोगों को व्यंग्यकार बना दिया, जिन्होंने कभी सिर्फ कविताएँ लिखीं। लेकिन ऐसे लोग अब कविता के साथ-साथ व्यंग्य भी लिखने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह कह सकते

हैं कि प्रेमजी व्यक्ति नहीं, संस्था तो हैं ही, व्यंग्य के अभिनव गुरुकुल हैं, जहाँ शिक्षा ग्रहण करते हुए कुछ अनगढ़ रचनाकार भी लायक बनते चले गए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा—'न बिनु सत्संग बिबेक न होई'। इनके साथ रह-रहकर जड़मति भी चेतन-से बन गए। यानी प्रेम जनमेजय एक पारस पत्थर है, जिसकी संगत में आने पर लोहा भी सोना बन जाता है। हाँ यह भी है कि जिन लोहों में बुरी तरह जंग लग चुका है, वे सोना नहीं बन पाए। लेकिन नकली सोने की तरह चमकने की कोशिश जरूर करते हैं। खैर!

यहाँ मैं तरसेम गुजराल द्वारा प्रेमजी पर संपादित एक पुस्तक 'प्रेम जनमेजय : एक शिनाख़्त' का भी लगे हाथ जिक्र करना चाहता हूँ, जिसमें प्रेमजी के अवदान पर विस्तार से चर्चा हुई है। इस ग्रन्थ में राजधानी में गंवार, बेशर्ममेव जयते, बर्फ का पानी भ्रष्टाचार के सैनिक, हँसो-हँसो, यार हँसो, कबीरा क्यों खड़ा बाजार में, आदमी के बच्चे, ईश्वर की मृत्यु जैसी बेहद लोकप्रिय व्यंग्य रचनाओं के साथ-साथ कुछ लघुकथाएँ भी दी गई हैं। प्रेम-जी की दो कहानियाँ भी इस पुस्तक में पढ़ने को मिलेंगी। जिस पर महेश दर्पण और हरीश पाठक ने विस्तार के साथ कलम चलाई है। प्रेमजी की कुछ कविताएँ भी बानगी के तौर पर दी गई हैं, जिसकी सार्थक मीमाँसा दिविक रमेश एवं नीरजकुमार मिश्र ने की है। 'स्मृतियन के घाट पर संतन की भीड़' जैसे रोचक उपशीर्षक के तहत भी कुछ रचनाकारों के आत्मीय संस्मरण दिए गए हैं। यहाँ सबका उल्लेख तो संभव नहीं, लेकिन प्रेमजी की जीवन-संगिनी आशा कुंद्रा का संस्मरण जरूर विशेष उल्लेखनीय है। 'तुम मोती मैं धागा' में आशाजी, प्रेमजी के साहित्य के व्यक्तित्व पर कम, उनके सामाजिक और पारिवारिक व्यक्तित्व पर अधिक प्रकाश डालती हैं। इस संस्मरण को पढ़कर पता चलता है कि वंस अपॉन ए टाइम प्रेम जनमेजय कुछ क्रोधी भी थे। आशाजी ने लिखा है कि—''आजकल तो कुछ ठीक हो गए हैं। अपने क्रोध पर कुछ काबू रख लिया है, पर जल्दी गुस्साने में ये अपने पिताजी पर गए हैं। कोई बात खराब लग रही है, तो चेहरा बता देता है। जहाँ गुस्सा नहीं कर पाते, वहाँ बोलना बंद कर देते हैं। चुप्पी द्वारा अपना आक्रोश व्यक्त कर देते हैं।'' उनके गैर साहित्यिक मित्रों के साथ उनके मधुर संबंधों का भी रोचक वर्णन इस संस्मरण से मिलता है। कुल मिलाकर प्रेमजी के सहज मानवीय व्यक्तित्व का बेबाक वर्णन आशाजी ने किया है। यह बहुत बड़ी बात है।

आरम्भ में आत्मकथ्य में प्रेमजी ने बड़ी विनम्रता के साथ लेखन और जीवन की अपनी विभिन्न पगडंडियों से परिचित कराया है। वे कहते हैं कि—''मेरा जीवन ऊबड़-खाबड़ रास्तों के बीच अपनी पगडंडियाँ बनाते हुए चलने का है। किसी राजमार्ग पर चलने का नहीं, इसलिए मेरे जीवन में छोटे-मोटे अनेक मोड़ मिलेंगे। राजमार्ग-जैसा सुशोभित, सुगम फव्वारों से सुसज्जित सपाट रास्ता नहीं। मेरे व्यंग्य लेखन की पगडंडियों में भी अनेक मोड़ हैं। जैसे मेरे देश के वंचित के जीवन में हैं।''

वंचित शब्द का उल्लेख करके लेखक अपने समग्र सरोकारों को स्पष्ट कर देता है। इसमें उन्होंने अपनी कमियों को, अपने संघर्ष को बताने में संकोच नहीं किया। धर्मवीर भारती-जैसे महत्वपूर्ण लेखक, सम्पादक से अगर कुछ स्नेह मिला, तो उसे भी बेहिचक बताया। कुल जमा यह कि 'प्रेम जनमेजय : एक शिनाख़्त' के माध्यम से पाठक ऐसे व्यक्तित्व से रू-ब-रू होगा जो अपने आप में एक शिक्षण केंद्र है। जिसे देखकर हम बहुत कुछ सीख-समझ सकते हैं। कम-से-कम मैंने तो सीखा है।

अंत में, एक बार फिर प्रेमजी के स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए चाहता हूँ कि उनकी 'व्यंग्य-यात्रा' (पत्रिका और लेखन) जारी रहे और साथ-साथ हम सबको उनका मार्गदर्शन भी मिलता रहे।

फॉर्म-5

समाचार-पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरणों सम्बन्धी उद्घोषणा, जिसे प्रत्येक वर्ष के प्रथम अंक में फरवरी के अन्तिम दिवस के बाद प्रकाशित किया जाना है।

1. प्रकाशन का स्थान : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

2. प्रकाशन का समय काल : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : बालाजी ऑफसेट,
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

4. प्रकाशक का नाम : डॉ. संजीव कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

5. सम्पादक का नाम : डॉ. संजीव कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

6. समाचार-पत्र का स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति और साझेदार या अंशधारक जो कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक धारित करते हों, का नाम और पता (100 प्रतिशत), डॉ. संजीव कुमार

मैं डॉ. संजीव कुमार, एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे संज्ञान एवं विश्वास में सत्य है।